गढ़ा-मण्डला के

गोंड़ राजा

उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत

लेखक
रामभरोस अग्रवाल, मण्डला

प्राक्कथन—प्राचार्य सन्तलाल कटारे,
एम. ए., पी. एच् डी, डी. लिट

प्रथम संस्करण] दिवाली, २०१८ [मूल्य चार रु०

गढ़ा-मण्डला के

गोंड राजा

उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत

लेखक—रामभरोस अग्रवाल, मण्डला

प्राक् कथन-प्राचार्य सन्तलाल कटारे, एम.ए., पी. एच् डी, डी.लिट्,

प्राप्ति स्थान (१) सुषमा साहित्य मन्दिर, जबलपुर,
(२) अग्रवाल सार्वजनिक पुस्तकालय, मण्डला
(३) जैन स्टेशनरी मार्ट, डिण्डौरी

प्रथम संस्करण,] दिवाली, २०१८ [मूल्य चार रुपया

प्रथम संस्करण दिवाली २०१८

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रकाशक— रामभरोस अग्रवाल, मण्डला

मुद्रक— प्रगति प्रेस, ७३ कल्यानी देवी, इलाहाबाद

ब्लाक— इलाहाबाद ब्लाक वर्क्स

समर्पण

भगवान् निंगोगढ़ को
अन्नदाता गोंड़ों को
जो अपने को किसान कहकर गौरव का अनुभव करते हैं
जो अन्न का उत्पादन करके संसार का यथाशक्ति प्रतिपालन करते हैं
जो जिन्दा दिल हैं
जिनके दिलों में बिजलियाँ कौंधती हैं
जिनकी उमंगों में ज्वालाएँ जलती हैं
जो सांसारिक सुखों को, स्वधर्म प्रेम की तुलना में, हेय समझते हैं
जो अपनी बिरादरी के बिछुड़े हुओं को अपनी बिरादरी में वापिस ले लेते हैं
नेताओं को
जो सेवा रत होकर भजन और भोजन को स्थगित कर देते हैं
जो समाज से कम से कम लेते हैं
जो समाज को अधिक से अधिक देते हैं
न कि उन मुर्दा दिलों को
जिनको अपनी बिरादरी की दुर्गति पर नैसर्गिक रोष नहीं आता
जिनमें उस रोष को पी सकने की नीति और सामर्थ्य नहीं है
जो सांसारिक सुख के लिये कुल्हाड़ी का बेंट बन जाते हैं
उनके करों में
ऐसे करों में
जिनमें कृषि से कठोरता और
सेवा के कारण मलिनता आ चुकी है
जिनको भगवान बड़ा देव समर्थ से प्रेरणा मिलती है
जातीय उद्‌बोधन के ये चार शब्द
सादर
सर्मपित

अभ्युदयाकांक्षी-राम भरोस अग्रवाल

प्राक्कथन

(लेखक—प्राचार्य, सन्त लाल कटारे, एम० ए०, पी० एच् डी०, डी लिट्)

"गढ़ा मण्डला के गोंड़ राजा" अपने ढङ्ग की एक अनूठी कृति है। पुस्तक का आधार केवल ग्रन्थ मात्र नहीं है। लेखक ने वर्षों तक लगन से उसके लिये सामग्री एकत्रित की है। जो दूसरी पुस्तकों से नहीं प्राप्त हो सकती। इस जिले के जन जीवन का यहाँ प्रचलित रीति रिवाजों का यहाँ के निवासियों के विचार व्यवहार, तथा उनके धार्मिक विश्वास और प्रवृतियों का सूक्ष्म अध्ययन का इस पुस्तक में समावेश है। ज्ञान, शोध और अनुभव के सहारे, यहाँ के इतिहास और यहाँ के मनुष्यों के जीवन का चित्रण है। जीवन का कौन सा पहलू है, जिस पर मौलिक सामग्री इसमें नहीं। पुस्तक में मनुष्य का चित्रण तो उतना शायद न मिले, जितना कि मनुष्य के मानस का मिलता है। वह मानस प्राकृतिक है, कृत्रिम, है विशाल है, उदार है, स्वाभिमानी है, तथा कहीं-कहीं अन्यायी, अत्याचारी, और शोषक है और कहीं-कहीं अज्ञान, गरीबी और विवशता का कठपुतला। विषय की भौमिक परिधि सीमित अवश्य है किन्तु इसमें जिस मनुष्य का वर्णन है वह सीमित नहीं है।

पुस्तक की महत्ता इसलिये अधिक है कि इसमें जो भी सामग्री का संकलन है वह दूसरे लेखकों के लिये, मूल आधार के रूप में होगी। पुस्तक की विशेषता है—जैसा देखा वैसा लिखा। भाषा सीधी सादी है. विद्वान् और अपढ़ दोनों समझ सकते हैं।

पुस्तक को लिखने का ढङ्ग मनोरंजक है। विचार मौलिक है अध्ययन स्वच्छन्द है। जिसका अर्थ है कि किसी वैचारिक परिपाटी या वैयक्तिक या किसी और ध्येय को सामने रखकर नहीं किया गया है। हो सकता है कि कुछ लोग श्री अग्रवाल जी के विचारों से कहीं-कह

सहमत न हों। मत भेद के लिये यदि वे स्वयम् अपने अन्तस को टटोलेंगे तो वे अपनी कठिनाई आसानी से हल कर सकेंगे।

मेरा तो विश्वास है कि भविष्य में मण्डला जिले पर तथा इस पुस्तक में लिखे गये किसी विषय पर चाहे वह इतिहास हो, चाहे समाज शास्त्र, चाहे अर्थ शास्त्र, चाहे धर्म सम्प्रदाय, चाहे नृतत्व शास्त्र, हो पुस्तक लिखने के लिये, "गढ़ा मण्डला के गोंड़ राजा" का आधार अनिवार्य होगा। इस पुस्तक ने इस जिले से सम्बन्धित किसी भी प्रकार के अध्ययन के लिये मार्ग दर्शन का कार्य किया है।

मण्डला
२८-१०-६१

सन्तलाल कटारे

चित्र-सूची

———

परिशिष्ट के स्थानों की सूची

अमरकण्टक
अमर पूर
अमोदा
इटावा
ओपद गढ़
ओंकार मान्धाता
कंचन पुर
कटंगा
कठौतिया
कनौजा
कबीर चबूतरा
करंजिया
करवागढ़
करिया पहार
करोला
कान्हा किसली
कारूबाग
कालपी
किकरझिर
किरंगी
किसलपुरीं
कुकर्रामठ
कुमारी
कुरबई
केदारपुर
कोहका
कोहानी देवरी
कौआ डोंगरी
खजर वार
खटोला
खड़देवरी
खमरिया
खलौड़ी
खलौटी
खिमलासा
गढ़ पहरा
गढ़ा
गढ़ा कोटा
गनौर
गाड़ा घाट
गुरगी
गोरख पुर
गौरझामर
घनसौर
घानामार
घुत्ररा
घुघरी
चटिया
चन्द्रगढ़
चमकीले दाने
चरगांव
चांदा
चिरई डोंगरी
चौकी गढ़
चौगान
चौरई
चौरागढ़
छतरपुर
जगनाथर
जहरमऊ
जामगांव
जुझारी
जूना मण्डला
जोगी टिकरिया
झनझन गढ़
झिरिया
झुलपुर
टीपागढ़
ठड़पथरा
डोंगरताल
डोंगर मण्डला
ढूटी डोंगर
त्रिपुरी
तुरुक खेड़ा
दक्षिणा वर्त्ति शंख
दमोह
दियागढ़
दिवारा

देई
देवगांव
देवर गढ़
देवरी
देवरी मिंगड़ी
देवहार गढ़
धनुवांसागर
धनौली
धामौनी
धुर्रा
धौरई
नर्मदा नदी
नरई
नरहर गंज
नारायन डीह
निंगो गढ़
निवास
निमुआ गढ़
निरन्द गढ़
न्यौसा
न्यौसा पोंड़ी
पचगांव रैयतवारी
पचेल गढ़
पंड़की
पंड़रिया डोंगरी
पदमी
पबई-करही
परासी
पाटन गढ़
पाठा
पिंडरई

पीपरपानी
पुरवा
पूनागढ़
पोंड़ी
फतहपुर
बंजर नदी
बन्दी छोह
बरगी
बांकागढ़
बाघमार
बावन गढ़
बारंगदा
बारी
बांसा
बिछिया
बिजौरा
बिझौली
बिरसिंहपुर पायली
बीजागढ़
बीरा गढ़
बैगा चक
भंवरगढ़
भवरासो
भलवारा
भीम कुण्डी
भीम डोंगरी
भीमा
भोपाल
मकराही
मगरदहा
मझियाखार

मड़फा
मड़ियारास
मधुपुरी
मनेरी
मवई
महाराजपुर
माड़ौगढ़
माड़ौताल
माँद
माधोपुर
मानगढ़ घाट
मानोट
मुकास
मुकुटपुर
मुढ़िया खुर्द
मुरता रैयतवारी
मुरतहाई टौरिया
मोहतरा
रजगढ़ी
रतनपुर
रसोई
रहली
रानगढ़
रावनकुण्ड
रामगढ़
राम्हेपुर
रायगढ़
रायसेन
राहतगढ़
रूसा
रैपुरा

लखनपुर	शहपुरा	सोंगन गढ़
लछमन मड़वा	सहस्त्र धारा	सीता रपटन
लान्जी	सारंग पुर	सुकुमगढ़
लापागढ़	शाहगढ़	सूर्यकुण्ड
लुटगांव	शाह नगर	शोभापुर
सकवाह	शाहपुर	हटा
शंख डोंगर	सिंगार सत्ती	हर्रा भाट
संग्राम पुर	सिंगौर गढ़	हरसिंगरी
सत्तावन परगना	सिघोली	हाट स्प्रिंग
सन्तागढ़	सिवनी नदी	हिरदैनगर
सहजपुरी	सिंगपुर	हीरापुर

———

विषय सूची

———

लेखक की कलम से

इस अंश को पाठक पहिले पढ़ता है। लेखक बाद में लिखता है। मेरी तरह बहुतों की स्थानीय इतिहास की अल्पज्ञता का दुःख रहता है। मैं कुछ जान पाया हूँ। उसी को लिखा है न लिखता तो मेरी जानकारी मेरे शरीर के साथ समाप्त हो जाती, पाप पड़ता। कुछ तथ्य दिये हैं, कुछ प्रमाण, मत कम, विवादों से बचने के प्रयत्न किये हैं। कहीं-कहीं मित्र भाव से सुझाव दिये हैं चाटु नहीं की। चाटु-कारिता देश द्रोह है। किसी को भड़काया नहीं। समाज सेवा की दृष्टि से लिखा है। समाज की सुप्त सरीखी चेतना को जागृत करना चाहता हूँ। जिनका अतीत उज्वल था उनका भविष्य भी उज्वल होना चाहिये।

मैं इतिहास या पुरातत्व नहीं जानता। जहाँ बौद्ध कालीन अवशेष लिखा है वहाँ मेरा अर्थ बहुत प्राचीन अवशेषों से है। तिथि आदि बारीकियों का निर्णय विशेषज्ञ करेंगे। मैं नहीं कर सकता। मेरे मत लचीले हैं। कुछ सामग्री वही है जो मैंने मण्डला जिला गजटियर के लिये शासन को दी है। शासन उसका उपयोग करे या न करे भविष्य की पीढ़ी खोज करेगी। मैंने केवल दिशा दर्शन किया है। इतिहास को समाज के अनुभवों का विश्वकोष कहना चाहिये। समाज के उत्कर्ष या पतन के अध्ययन में ऐतिहासिक घटनाएँ सहायक होती हैं। इतिहास के अध्ययन से उन्नति और रक्षा के मार्गों का दिग्दर्शन होता है। इस प्रकार इतिहास समाज की सेवा करता है।

इतिहास के अध्ययन में अंग्रेज विद्वानों ने अपने ज्ञान प्रेम के कारण बहुत परिश्रम किया। उनको भारत के वीरों की प्रशंसा करने की कोई गरज नहीं थी। उनमें सत्य प्रेम था और निर्भीकता थी। दूसरी

प्रकार के अभिमानी अंग्रेज. लेखक भी थे जिनने भारतियों को संसार के सामने तिरस्कृत करना चाहा। उनमें हुकूमत का अभिमान और कुरुचि थी। अंग्रेजों के अध्ययन और परिश्रम की तुलना में हम लोग बहुत कमजोर पड़ जाते हैं। प्रचलित इतिहास अंग्रेज विद्वानों पर आधारित है। जिनने फारसी के इतिहास कारों को प्रमाण माना था। फारसी के मुगलकलीन इतिहासकारों में अभिमान था, तिरस्कार की भावना थी। इस प्रकार प्रचलित इतिहास एक गलत बुनियाद पर कायम है। हर शासन में इस प्रकार की कुरुचि हो जाती है। मुगल इतिहास कारों ने छत्रपति महाराज शिवा जी की भरपेट निन्दा की। कलई खुल गई। स्वतन्त्र भारत ने छत्रपति महाराज शिवाजी को राष्ट्रीय मान्यता देकर उनके डांकटिकट चलाये। वे तलवार के धनी थे। उनके दरबार में वीर रस की कविता के धनी भूषण कवि थे। आज हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा किया गया, भूषण कवि का बहिष्कार कायम है। जागृति के कवि को भड़काने वाला कवि माना जा रहा है। राष्ट्रीयता की गलत भावना है। हर प्रकार की कुरुचियाँ धीरे-धीरे समाप्त होती जायेंगी। प्रवृत्ति सुरुचि की तरफ बढ़ती जावेगी। हमारे सामने दो प्रधान कार्य हैं। एक भारतीयता को गौरव प्रदान करने का और दूसरा हिन्दी साहित्य को सम्पन्न बनाने का। हम लोगों का आलस्य तो है ही। दलबन्दी को हम लोगों ने आवश्यकता से अधिक महत्व दे रखा है ये अच्छे लक्षण नहीं हैं

मैं समझ रहा था कि मैं साहित्य की प्रगति से तीस पैंतीस वर्षों सेबिछुड़ चुका हूँ। मेरे मित्र मुझसे अनुभव लिखवा लेने पर तुले थे। मैं डर रहा था। साहस बटोरा। जैसा बना वैसा लिखा। हर व्यक्ति अपने अनुभवों को, अवकाश में लिख सकता है।

इससे समाज सेवक लाभ उठा सकते हैं। शासकीय अधिकारियों को फाइलों में व्यस्त रहना पड़ता है। वे भी लाभ उठा सकते हैं विद्यार्थियों की सही इतिहास की खोज में प्रवृत्ति होगी। जबलपुर के आस-पास, प्राचीन इतिहास के अध्ययन के लिये अनन्त सामग्री बिखरी

पड़ी है। भूस्तर में, भूगर्भ में पुराने कुटुम्बों के पास और लोक साहित्य में। जबलपुर विश्वविद्यालय से आशा है कि स्थानीय अध्ययन में सहायता देगा। जो आचार्यगण और स्नातक गण, विदेशों की छोटी-छोटी बातों में विशेषज्ञ हो सकते हैं, वे स्थानीय अध्ययन में गजब ढा सकते हैं। मेरी सब से बड़ी उपलब्धि भगवान निंगोगढ़ की तलाश है। जबलपुर का इतिहास ही मण्डला जिला का इतिहास है। अभी तक अन्य प्रमाणों के अभाव में अबुलफजल को प्रमाण माना जाता था। अब उसका मत डगमगा जाना चाहिये। अन्ध भक्ति के स्थान में विवेक आप ही आप आ जायगा। वे अपनी रानी दुर्गावती का कर्ज अदा करना चाहेंगे।

गोंड़ अल्पज्ञ हैं। अज्ञान हैं। उनको अपनी जाति की विशालता का और अपने ऐतिहासिक स्थानों की भौगोलिक स्थिति का ज्ञान नहीं है। उनको उनके अतीत से अवगत कराना है। देश की आवश्यकताओं से भी अवगत कराना है। वे स्वतः की और देश की उन्नति अवश्य करेंगे। वे गरीब हैं। सीधे हैं, नेक हैं, ये ही गुण हैं, ये ही दोष हैं, तभी तो पिछुड़े कहे जाते हैं। गरीबी और नेकी के कारण श्रद्धा के पात्र हैं।

गरीबी में भी हँस पड़ती है, नेकी मालवालों पर।
मेरी खादी की चादर, थूक देती है दुशालों पर॥

मुद्रण, कागज, प्रूफ रीडिंग, गेटअप सब काम चलाऊ है। मोटा झोटा रूप है। गरीबों की पुस्तक है। बनाव सिंगार से लागत तथा कीमत बढ़ जाती। समझदार लोग बनाव सिंगार पर ध्यान न देकर भीतर की सामग्री देखते हैं। इसमें मुझे मुनाफा नहीं कमाना है। फोटो मेरे मित्रों ने लिये हैं। नक्शा मैंने बनाया है मुद्रण में कुछ बड़ी भूलें भी हैं। नक्शा का स्केल बत्तीस मील है, न कि पच्चीस मील, पेज संख्या २२५ से २४० की जगह १२५ से १४० छप गया है। पेज २२२ से परिशिष्ट आरम्भ होता है।

मैं सब पूर्व लेखकों का अतिशय आभार मानता हूँ। उनकी कृतियों का मैंने खुलकर प्रयोग किया है। खास कर अबुल फजल का

वे सर्वाधिक प्रसिद्ध हो गये। देश की लगातार परतन्त्रता उनको अनुकूल हुई। आभार मानना चाहिये अंग्रेज विद्वानों का। वे विदेशी थे। उनको भारतियों के लिये परिश्रम करने की कोई गरज नहीं थी। उनने विद्या प्रेम के कारण गजेटियर, ट्राइब्स एन्ड कास्टस आदि बहुत से ग्रन्थ लिखे। राय बहादुर हीरा लाल ने पुरातत्व और इतिहास के मार्गों का प्रदर्शन किया। उनने भीष्म पितामह सरीखा स्थान प्राप्त कर लिया है। सी० यू० विल्स की पुस्तक बहुत परिश्रम से लिखी गई है। स्थानीय लेखकों में मैं सब से पहिले राम नगर शिला लेख के शब्दकार जयगोविन्द बाजबेयी का और उस पर आधारित गढ़ेशनृपवर्णनम् के लेखक मैथिल रूपनाथ झा का आभार मानता हूँ। गजेन्द्रमोक्ष के कवि गंगा प्रसाद दीक्षित के सुन्दर वर्णनों की मैं कुछ बानगी ही दे सकता हूँ। पं० गणेश दत्त पाटक का मैं विद्यार्थी हूँ। उनके प्रति मेरे हृदय में भक्ति रहना स्वाभाविक है। इन सब लेखकों का मैं अतिशय आभार मानता हूँ।

आचार्य सन्त लाल कटारे ने मेरी कुलिपि को पढ़कर कई कीमती सुझाव दिये थे। उनके अनुग्रह से इस पुस्तक का रूप बदल गया। उनने प्राक्कथन लिखकर और अधिक अनुग्रह किया।

राम भरोस अग्रवाल
मंडला, २१.१०।६१
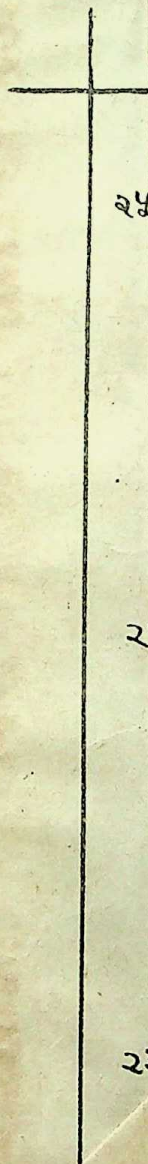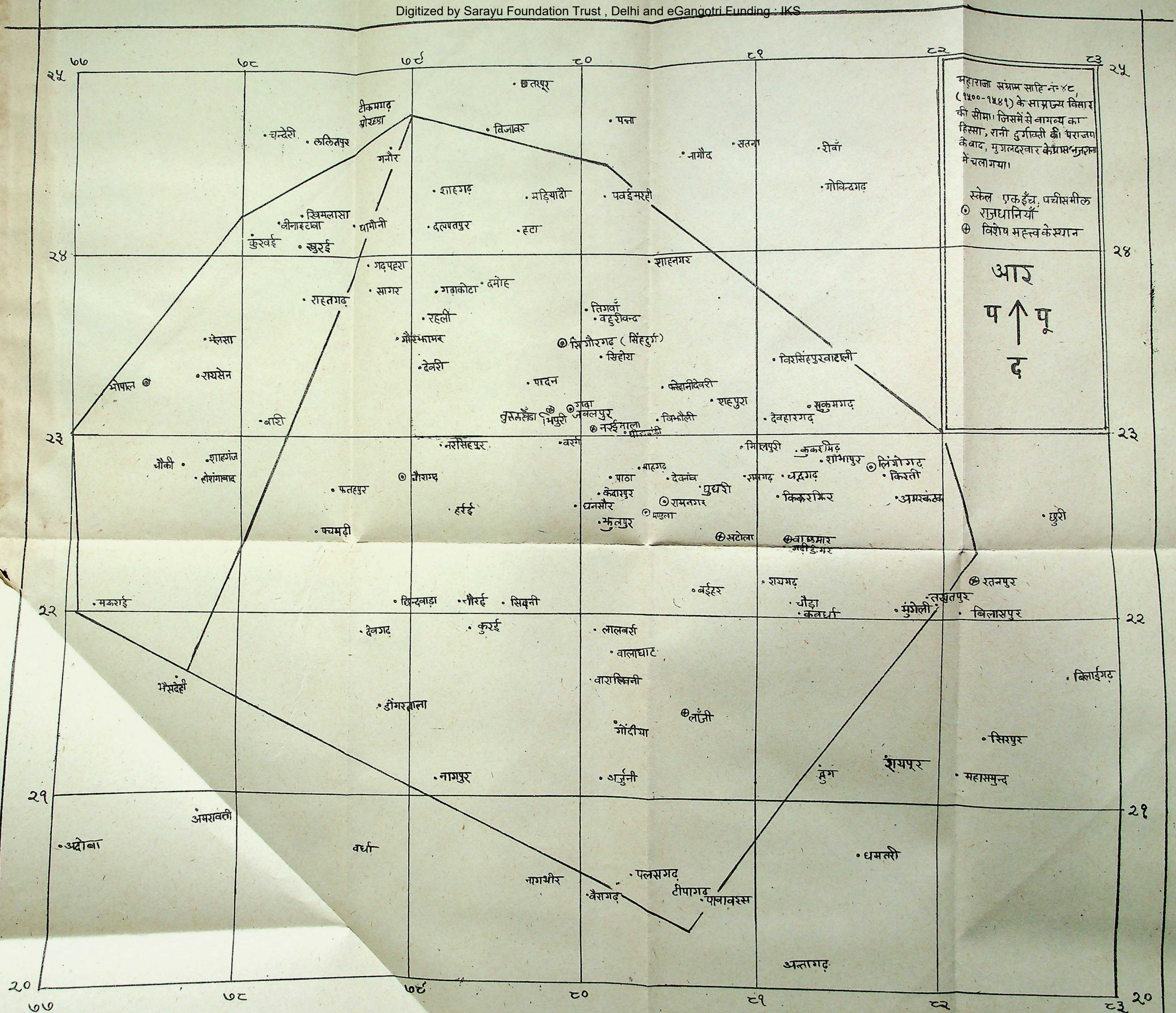
महाराजा संग्राम साहि नं. ४८,
(१५००-१५४१) के साम्राज्य विस्तार
की सीमा। जिसमें से वायव्य का
हिस्सा, रानी दुर्गावती की पराजय
के बाद, मुगलदरबार के पास नजराना
में चला गया।
स्केल एक इँच, पचीस मील
राजधानियाँ
विशेष महत्त्व के स्थान
प
पू
द
छतरपुर
टीकमगढ़
ओरछा
विजावर
पन्ना
चन्देरी
ललितपुर
गनौर
नागौद
सतना
रीवाँ
शाहगढ़
मड़ियादौ
पवईमरही
गोविन्दगढ़
खिमलासा
धामौनी
दलपतपुर
हटा
कुरवई
खुरई
शाहनगर
गढ़पहरा
सागर
गढ़ाकोटा
दमोह
राहतगढ़
रहली
तिगवाँ
बहुरीबन्द
भेलसा
गौरझामर
सिंगौरगढ़ (सिंहदुर्ग)
सिहोरा
विरसिंहपुर
भोपाल
रायसेन
देवरी
पाटन
जबलपुर
शहपुरा
देवहारगढ़
बारी
नरसिंहपुर
नर्मदा
शाहगंज
चौकी
होशंगाबाद
चौरागढ़
पाठा
केदारपुर
रामनगर
मण्डला
लिंगोगढ़
किरती
फतहपुर
हर्रई
धनसौर
फूलपुर
अमरकंटक
पचमढ़ी
छुरी
रतनपुर
बईहर
चौड़ा
कवर्धा
मुंगेली
तखतपुर
बिलासपुर
छिन्दवाड़ा
सिवनी
देवगढ़
कुरई
लालबर्रा
बालाघाट
वाराशिवनी
बिलाईगढ़
भैंसदेही
डोंगरताला
लाँजी
गोंदीया
सिरपुर
नागपुर
अर्जुनी
दुर्ग
रायपुर
महासमुन्द
अमरावती
वर्धा
धमतरी
पलसगढ़
वैरागढ़
टीपागढ़
अन्तागढ़

घुघरा का शिलाखण्ड जिसमें वृत्त बने हैं। शिला खण्ड के ऊपर कलचुरि काल के मुकुट वाला सिर रख दिया है। इस शिलाखण्ड के वृत्तों से अनुमान होता है कि यह शिलाखण्ड किसी श्मसान का है।

वैगाकुटुम्ब-मण्डला जिला

कुकर्रमठ का कलचुरी कालीन जैन मन्दिर

मण्डला जिला के दो गोंड़

मण्डला किले में सतखण्डा महल
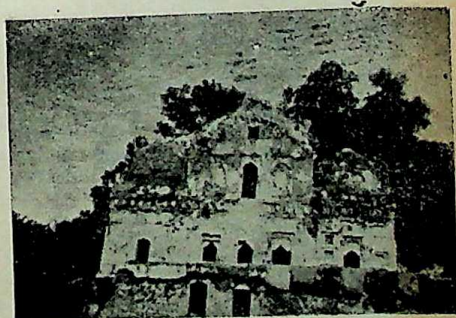
महावीर तीर्थंकर, मण्डला में प्राप्त

मण्डला-किलेकी दीवाल में "पुतरिया"
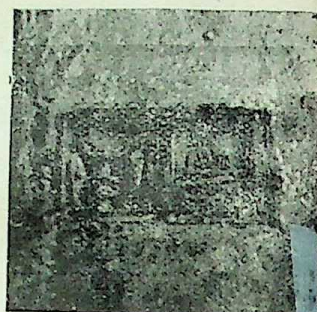
मण्डला, किले में सूर्य नारायण मूर्ति

मण्डला, किले में नर्मदामाई की मूर्ति

मण्डला, किले में, पञ्चमुखी महादेव, डाढ़ीवाले ।
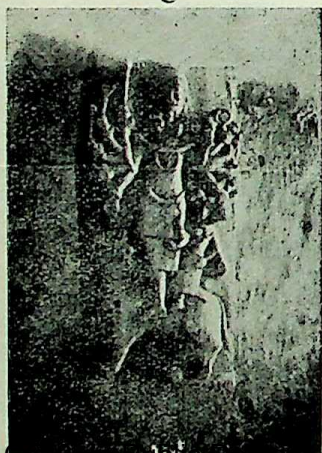
मण्डला, किले में कोपीन, लंगोटी वाले विष्णु नीचे का पंखवाला मनुष्य, गरुड़ है

रामनगर में कलचुरि काल की सरस्वती मूर्ति

रामनगर में मंत्री भगवत राय का "राय महल"
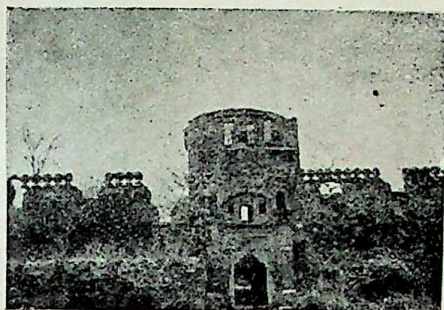
रामनगर का मुख्यमहल, भीतर के आंगन से
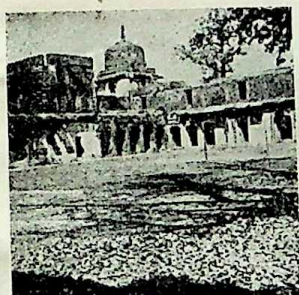
रामनगर का मुख्यमहल, नर्मदा तट से। इस महल में शिलालेख है
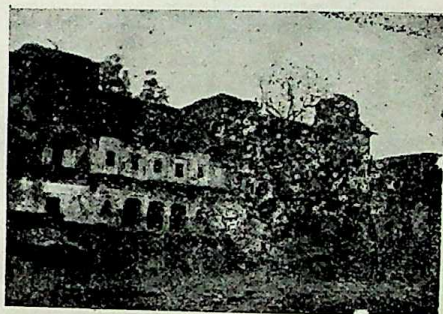
रामनगर के मुख्यमहल की खिड़की से नर्मदा का रमणीय दृश्य
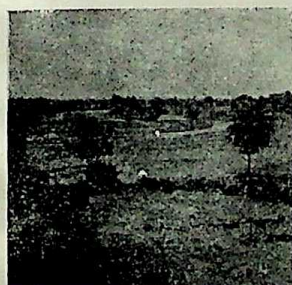
रामनगर का बेगम महल
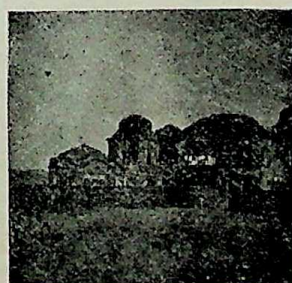
रामनगर बेगम महल का स्नानागार
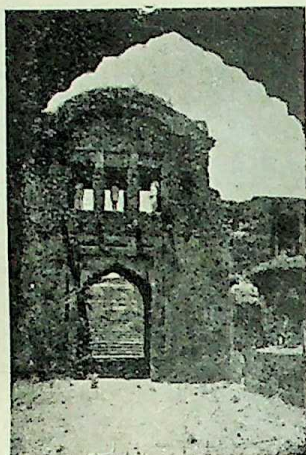
मण्डला रंगरेजघाट धर्मशाला
में नाग मूर्ति

हिरदैनगर, खेरमाई, मूर्त्तिखण्ड,
ऊपर बीच में सारनाथ
सरीखी मूर्ति (सिर) है

हिरदैनगर में एक गुफा
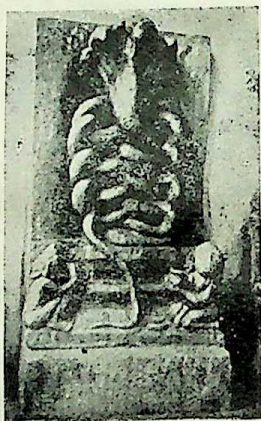
गढ़ा में संग्रामसागर, बीच का द्वीप आमखास है।

गढ़ा के पास जैन तीर्थ पिसन हारी की मढ़िया।

ाला
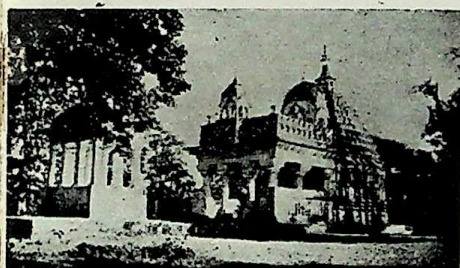
जबलपुर, भेड़ा घाट में कलचुरि कालीन गौरीशंकर मन्दिर। संलग्न इमारत अर्वाचीन सी जँचती है।

गढ़ा के पास पहाड़ी पर, तुलीसी शिला

गढ़ा-प्रसिद्ध मदन महल
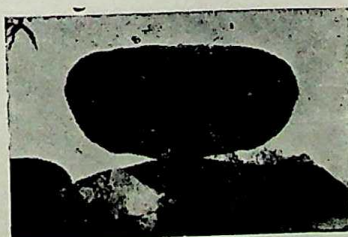
पहिला अध्याय

विषय प्रवेश

(१) विवेक से संस्कृति

विवेक—विवेक से वैभव होता है। वैभव से संस्कृति पनपती है। वैभव के समय, विवेक की कमी हो जाने से उन्माद होता है। उन्माद से कुरुचि। कुरुचि से संस्कृति पर आघात होता है। बुद्धिनाश से सवनाश होता है। वैभव की सही कसौटी संस्कृति है। संस्कृति का सिंगार अनुशासन है। अनुशासन या संस्कृति को खरीदी, धन से नहीं हो सकती। संस्कृति और धन को पर्यायवाची नहीं माना जा सकता। विदेशों में धन है, पर संस्कृति नहीं। दो-तीन सौ वर्षों के धन में संस्कृति नहीं बन जाती। महल, पिरामिड, किले या भवनों से संस्कृति सिद्ध नहीं होती। ये तो पराजितों के या क्रीत दासों के खून और पसीना से गारा सनवा कर भी बनवाये जा सकते हैं। आसफुद्दौला का इमामबाड़ा अपवाद है। उसको संतुष्ट मजदूरों ने बनाया है।

मूर्ति और चित्र अत्याचार से नहीं बनते। छैनी और तूलिका भूख और लाचारी से नहीं चलतीं। भावपूर्ण चित्र या मूर्त्ति में, कलाकार के कोमल भाव, कलाकार का संतोष मूक भाषा में व्यक्त हुआ करते हैं और इतिहास की अज्ञात कड़ियों का पता उनसे मिल जाता है। वह मूक-भाषा, संस्कृति और वैभव को सिद्ध करती है।

नर्मदा क्षेत्र में आजकल धन नहीं है। संस्कृति अभी भी है। दो-

चार सौ वर्षों में संस्कृति बिगड़ नहीं पाई है। शादी, व्याह, चुनाव आदि प्रदर्शनों में विवेक, वैभव, उन्माद, कुरुचि आदि सभी प्रकार की वृत्तियों के उभार के अवसर आ जाते हैं।

(२) खण्डित मूर्ति

प्राचीन मूर्तियाँ जलवायु आदि के असर से या अन्य प्राकृतिक कारणों से भी खण्डित हो जाती हैं। कभी-कभी किसी उन्मत्त भैंसा की खुजाल से भी मूर्ति गिरकर खंडित हो जाती है। मनुष्य द्वारा तोड़ी गई मूर्ति, तोड़नेवाले का वैभव नहीं सिद्ध करती, कुरुचि और अत्याचार सिद्ध करती है। चौंसठ जोगन की तोड़ी हुई मूर्तियों को देखकर समझदार मुसलमान लोग लज्जित होते हैं। मण्डला जिला की सीमा में, एक भी ऐसी मूर्ति नहीं दिखी, जो धर्मान्ध मुसलमानों द्वारा तोड़ी गई हो। भक्त लोग टूटी मूर्तियों, को खण्डित—अतएव पूजा के लिए बेकाम समझकर जलप्रवाह करा देते हैं। कला की दृष्टि से, जो टूटी मूर्त्ति उपयोगी सिद्ध हो सकती थीं वह जलप्रवाह के कारण लापता हो जाती है। कहीं-कहीं उत्साही ग्रामीण युवक मूर्ति-खण्डों को किसी देवस्थान में, मढ़िया या खेर माई में, इकट्ठा कर देते हैं। उस उपयोगी से अध्ययन में सहायता मिल सकती है। पुरातत्व के अधिकाधिक स्थानों को देखने से कहीं-कहीं शिलालेख, सती-लेख या भूगर्भ में किसी अवशेष की आशा बँध जाती है। इसी ध्येय से परिशिष्ट में बहुत स्थानों का वर्णन दिया गया है। अभी इतिहास अज्ञात अवस्था में है। परिशिष्ट में वर्णन न देने से परिचय भी अज्ञात रहा आता।

(३) खोजने के तरीके

प्राचीन अवशेषों को देखते-देखते, प्राचीन मूर्तियों को देखने से—(चाहे वे खण्डित मूर्तियाँ ही हों) पुरातत्व में रुचि उत्पन्न हो जाती है। साधारण जन का पुरातत्व विषयक ज्ञान अपरिपक्व है। समय की नाप सैकड़ों नहीं, हजारों वर्षों की होती है। शिक्षा की वृद्धि से जनता का ध्यान, प्राचीन गौरव को जानने की उत्सुकता के प्रति खिंच रहा है। शासन ने हर जिला में शासकीय पुरातत्व संग्रहालय की स्थापना का आरम्भ किया है। जिस किसी को कोई भी महत्वपूर्ण मूर्ति, शिलाखण्ड या अन्य वस्तु प्राप्त हो जावे, उसको चाहिए कि शासकीय संग्रहालय में रख दे। कलाकृति की रक्षा की और कोई युक्ति नहीं है। कलाकृति को व्यक्तिगत

सम्पत्ति मानने की, या किसी विदेशी को या किसी को भी बेचकर रुपया इकट्ठा करने की प्रवृत्ति निन्दनीय और दण्डनीय है।

सन् १५६४ ई० में रानी दुर्गावती की पराजय के बाद, गोंडवाना क्षेत्र में, मूर्ति निर्माण कर सकने की स्थिति, कमजोर हो चुकी थी। समाप्तप्राय हो चुकी थी। अतः गोंडवाना के अधिकांश अवशेष दुर्गावती से पहिले के, अर्थात् हजार दो हजार वर्ष पुराने हैं। जब गढ़ामण्डला के गोंड़राजा, मुगलों के करद हो गये, तब हिरदैसाहि और निजामसाहि के समय में कुछ निर्माण कार्य हुआ होगा।

खोज कभी पूरी नहीं होती। सदैव नई बातों का पता चला करता है। कभी भी सम्पूर्णता नहीं आयेगी सदैव अपूर्णता रहेगी। "अगर जाना तो यह जाना, कि न जाना कुछ भी।" फिर भी गाँवों की तलाश इस प्रकार होती है कि जिन गाँवों के नाम में देव, ईश्वर आदि शब्द हों, वे गाँव प्रायः महत्वपूर्ण होते हैं। जैसे देवरी, देवलपुर, नारायणपुर, ईश्वरपुर आदि। ऐसे गाँवों के देवस्थानों में कुछ अवशेष मिल ही जाते हैं। देवस्थान भी कई प्रकार के होते हैं। जैसे शीतलामाई, खेरमाई, मरंहाई, हरदौल आदि। कुछ प्राकृतिक स्थानों में भी अवशेषों की सम्भावना रहती है। जैसे, पहाड़वाली, दर्रा, नदी के उद्गम स्थान, संगम आदि। ऐसे तरीकों से खोज में रुचि उत्पन्न होती है। स्थानीय सूचना और किम्वदन्ती कहीं सहायक होती है। कहीं नहीं। किम्वदन्ती से कुछ भी सिद्ध नहीं होता। इतना ही सिद्ध होता है कि इस प्रकार की किम्वदन्ती है। फिर भी किम्वदन्तियों का तिरस्कार नहीं किया जा सकता। शायद उस तिरस्करणीय किम्वदन्ती के ऊपर से भविष्य में कभी कुछ प्राप्त हो जावे।

स्थानीय किम्वदन्तियों में हर अवशेष में "पांडव" या "पण्डा" या "पण्डवा" का सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। इस सम्बन्ध को सुनने में और समझने में सावधानी की आवश्यकता है। मुफस्सिल वालों को, पौराणिक कथाओं का या इतिहास के तथ्यों का ज्ञान या तो रहता नहीं है या परिमित रहता है। फिर भी हर देहाती "पण्डा" का आभार मानना पड़ता है। क्योंकि पण्डा ने अपनी मढ़िया में अवशेषों की रक्षा की है। चाहे दैवी भय के कारण चाहे चढ़ोत्तरी के लोभ के कारण। प्राचीन स्थान, तीन प्रकार के होते हैं—ऐतिहासिक देवस्थान और सिद्धस्थान। देवस्थानों में त्रिशूल चढ़ाये जाते हैं। सिद्धस्थानों में चमीटे चढ़ाये जाते हैं। राजा करन शब्द भी बहुत प्रचलित है। मोटे हिसाब से महाभारत के दानी कर्ण का ही बोध होता है। कर्ण नाम के और कई राजा भी हुए हैं। एक

कर्णदेव कलचुरि थे, एक गोंड राजा करन थे। दानी कर्ण और कलचुरि कर्णदेव दोनों के बीच में चार हजार वर्ष का अन्तर है। सभी कर्णों को एक नहीं समझ लेना है।

शासन से कुछ आशा नहीं। आशा से सदैव दुःख होता है। आत्म-निर्भरता अच्छी। आत्मनिर्भर रहने वाला परमुखापेची नहीं हो जाता। शासन की शक्ति, शासकों के हाथ में रहती है। आत्मनिर्भर रहने वाला कई स्थानों से सामग्री संचय करता है। देहाती बाजारों में जाने वाले बीड़ी-पत्ती संग्रह करने वाले, नोटिस संमन आदि तामील करने वाले आदि हर प्रकार के व्यक्ति आत्मनिर्भर रहने वालों के सहायक बन जाते हैं। पूछ-ताछ और अवलोकन से ज्ञान वृद्धि होती है। मूर्तियों को उठा लाकर अपना महत्व बखारने की प्रवृत्ति निन्दनीय है। मूर्तियों को शासकीय संग्रहालयों में रख देना ठीक होगा।

इतिहास का अंश पुस्तकों से लिया गया है। किसी पुस्तकस्थ कृति को किसी दूसरी पुस्तक में रख देने से वह लेखक की कृति नहीं बन जाती ऐसा कहना प्रसिद्ध विचारक जान रस्किन का है। कि लेखक की बुद्धि और परिश्रम से ही कृति बनती है फिर भी ऐतिहासिक तथ्यों का केवल संकलन हो पाया है। पुस्तकें अप्राप्य होती जा रही हैं। सो जितना भी ज्ञात हो सका है, संकलन किया है, ताकि भूल में न पड़ जाय। यह परिश्रम आगे खोज करने वालों को सहायता देगा।

पूज्यचरण पंडित गणेशदत्त पाठक की इतिहास पुस्तक सन् १६०५ में प्रकाशित हुई थी। उसकी प्रति अप्राप्य हो चुकी हैं। उस पुस्तक की सामग्री का मैंने खुलकर उपयोग किया है। उन्हीं दिनों, अंग्रेज सरकार गजटियरों के लिए सामग्री जुटा रही थी। मण्डला जिला का गजटियर सन् १६१२ में छपा। गजटियर में विलायती दृष्टिकोण है। पाठक जी के दिए हुए तथ्य अधिक मान्य हैं।

(४) आजादी का असर

आजादी का अर्थ है "उन्नति का अधिकार" "आत्महत्या का अधि-कार" नहीं। उन्नति के उन्माद में उन्नति के बाह्य आडम्बर को भ्रमवश उन्नति समझ लेना ही आत्महत्या है। भारत को अमरीका और रशिया बनाने के प्रयत्न में भारत भारतनहीं रह जायगा। भारत न तो अमरीका बन जायगा और न रशिया बन जायगा। संस्कृति की रक्षा करते हुए जो

उन्नति हो वही उन्नति कहलायेगी । भारत की संस्कृति नष्ट करने पर जो उन्नति-सी दिखेगी वह उन्नति नहीं उन्नति का आभास होगी। ऐसा न हो कि उन्माद शांत हो चुकने पर हम अपने को ऐसी स्थिति में पावें कि जो था सो नष्ट हो चुका, जिसकी आशा की थी वह नहीं प्राप्त कर सके। अर्थात् कहीं के न रहे कुछ नहीं बचा कुछ नहीं मिल सका। उन्नति और संस्कृति के अर्थों में कोई मतभेद नहीं हो सकता । उन्नति का अर्थ एक ही हो सकता है वह यह कि अधिक अन्न उपजाया जाय। जितने अन्न उत्पन्न करने वाले जिले हैं वे उन्नति के उदाहरण हैं । गाँवों में उन्नति है । देश की आत्मा गाँवों में है । संस्कृति का अर्थ एक ही हो सकता है कि सब लोग खूब परिश्रम करें । ऐसा परिश्रम जिसमें श्रद्धा हो, स्वार्थ न हो, अंधभक्ति न हो । ऐसी संस्कृतिपूर्ण-उन्नति से देश का कल्याण अवश्य होगा नेतागिरी और कालाबाजारी इस परिभाषा से अलग रह जाती है।

विदेशी लेखकों ने भारत को हर प्रकार से बदनाम किया । बदनामी १८३५ के लार्ड मैकाले के शिक्षा आन्दोलन से आरम्भ हुई। १८५७ के स्वतन्त्रता आन्दोलन के विफल होने से पनपी। १९४७ की आजादी में समाप्त हुई या यों कहें कि बदनामी ने चापलूसी का रूप ले लिया । बदनामी यहाँ तक हुई कि राष्ट्रीयतावादी टीपू सुलतान के नाम से, अंग्रेजों ने अपने कुत्तों का नाम टीपू रखना शुरू कर दिया । भारतीयों ने नकल की । वे भी अपने कुत्तों को टीपू कहने लगे। भारतीयों की सब प्रकार की बदनामी का एक ही ध्येय था कि प्रत्येक भारतीय स्वराज्य के लिए योग्य नहीं है । नब्बे वर्ष तक जो गन्दे साहित्य का प्रचार होता रहा उसका यह असर हुआ कि अभी भी भारतीय अपनी हीनता का अनुभव करते हैं । पढ़े-लिखे भारतीयों में कुछ ऐसे भी हैं जिनके सोचने का तरीका भारतीय नहीं बल्कि पश्चिमी है । स्वतंत्रता के बाद से भारतीयों के दिल और दिमाग से हीनता की भावना और सोचने के पश्चिमी तरीके निकल जाना चाहिये ।

अब विदेशी लेखकों ने भारतीयों की बढ़ी-चढ़ी प्रशंसा का रुख अपनाया है । इतनी अधिक प्रशंसा कि चापलूसी कही जा सकती है । इस चापलूसी का भी असर खराब होता है । भय है कि हम लोग कहीं अपने को आवश्यकता से अधिक योग्य न समझने लगें । न तो अपने को हीन समझकर दिल ओछा करना है और न प्रशंसा के मिथ्याभिमान में फूल जाना है क्योंकि दोनों प्रकार की कुवृत्तियों का असर विष प्रयोग जैसा

होता है। देश को वैसा साहित्य चाहिए जो इन दोनों प्रकार की कुप्रवृत्तियों से बचकर लिखा गया हो, जिस साहित्य में देशनिर्माण, पुनर्निर्माण का दृष्टिकोण हो वही रचनात्मक साहित्य होता है। ऐसे साहित्य की आवश्य-कता को राष्ट्रीय सरकार अच्छी तरह समझती है। इतना तो हो ही सकता है कि ग्रीस और रोम की कथाओं के तथा देवी-देवताओं के बदले में, या उनके साथ रानी दुर्गावती, महाराजा संग्रामसाहि और हिरदैसाहि के पुरुषार्थ, प्रजापालन, वीरता आदि की कथाएँ पढ़ाई जावें। संस्कृत-साहित्य वालों के लिए रामनगर शिलालेख का परिचय पढ़ाया जाय या गजेन्द्रमोक्ष का।

(५) पिछड़ी जाति

पश्चिमी तरीकों से सोचने वालों का (चाहे वे भारतीय हों या चाहे विदेशी) भ्रम है कि भारत की सब पिछड़ी जातियाँ सदैव से असभ्य हैं। विदेशियों की सभ्यता और असभ्यता की परिभाषा उन्हीं को मुबारक हो। यूरोपियन राष्ट्रों ने कई सौ वर्षों तक दासों का व्यापार किया। वे तब भी अपने को सभ्य समझते थे और अत्यन्त अमानुषिकता का तथा नृशंसता का प्रदर्शन करते थे। यूरोपियनों की परिभाषाएँ अभी कल की ही हैं। गढ़ामण्डला का गोंड़ों का राज्य सन् १७८१ में समाप्त हुआ। उसके ८५ वर्ष बाद, सन् १८६५ तक यूरोपियन लोग दासों का व्यापार करते थे।

प्राचीन काल में गोंड़ जाति अति सभ्य थी। आज गरीब है। आज के सभ्यों को गोंड़ों से बहुत-कुछ सीखना है। गोंड़ों को भी बहुत सीखना है। परस्पर आदान-प्रदान की आवश्यकता है। यह मिथ्याभिमान त्याग देना है कि जिसने अंग्रेजी पढ़ ली जिसने मूँछ मुड़ा ली जो पश्चिमी तरीकों से सोचने लगा जो विदेशों में हो आया वही सर्वज्ञ और सभ्य हो गया। पूरा दृष्टिकोण बदल देना है। प्रचलित विचार-धारा है कि जो देश एटम बम या जहरीली गैस बना सकते हैं वे देश ही सभ्य हैं। जो गोंड़ खेती करके संसार का पालन करते हैं वे असभ्य और पिछड़े हुए हैं। क्या सभ्यता केवल सर्वनाश के साधनों में रहती है ? क्या असभ्यता संसार के पालन में है ? यह कैसी भक्ति है कि ध्वंसकारी वीरभद्र के प्रति अनुराग है और पालनकर्ता विष्णु से द्रोह है।

एक विचार से समूचा भारत पिछड़ा हुआ है जो विदेशों से अन्न

मगाकर अपनी भोजन समस्या हल करता है। उस दिन तक भारत पिछड़ा रहेगा जब तक विदेशों से अन्न मँगाया जायगा।

(६) पिछड़ा मानने के कारण

अंग्रेज चले गये। साहित्य छोड़ गये। उसमें उनका विषमय साहित्य भी है। हमारी दिमागी गुलामी है जो हम अंग्रेजों के विषाक्त साहित्य को भी प्रमाण मानकर अपने को हीन समझने लगे हैं। सच बातें सभी की मान्य होती हैं। झूठ और द्रोहपूर्ण बातें चाहे किसी की हों, चाहे अंग्रेजों की भी हों नहीं माननी चाहिये। देश के सामने यह काम है कि अपने सामाजिक और साहित्य के जीवन को विषरहित बनावे। आदिवासियों के विशाल क्षेत्र को "सदैव से असभ्य" कहने और सिद्ध करने में अंग्रेजों की राजनीति की चाल थी। उस चाल को समझना आसान है। चाल ऐसी कि—अंग्रेजों ने मिशनरी पादरी लोगों को निमन्त्रित किया कि ईसाई पादरी "असभ्य" भारतीयों को ईसाई बनाकर सभ्यता सिखावें। और भारतीय ईसाइयों के बल पर अंग्रेजों का विदेशी राज्य भारत पर कायम रहा आवे। अंग्रेज-शासकों ने इस ध्येय से विषमय साहित्य का निर्माण किया। अंग्रेज लेखकों को मुगल इतिहासकारों में प्रमाण मिले। मुगलकाल के इतिहासकार भी ऐसे ही राजनैतिक साँचे में ढले थे। मुगल इतिहासकार समस्त हिन्दुओं को और गोंड राजाओं को भी "काफिर" मानते थे। मुगल-इतिहासकारों ने मुगल बादशाहों की साम्राज्य लिप्सा, अत्याचार और अनाचार, सबका औचित्य निरूपण किया। मण्डला जिला के गजेटियर में मण्डला जिला के बारे में लिखा है—"The Uttima thule of civilization, the dreaded home of the tiger, the Gond, and the devil."

यह उक्ति गजेटियर लेखक की खुद की नहीं है। कैप्टन वार्ड से उधार ली हुई उक्ति है।

देश की स्वतंत्रता आ जाने पर भी दिमागी गुलामी कायम है। उपरोक्त उक्ति का प्रभाव है कि जिन्होंने मण्डला जिला कभी नहीं देखा, वे मण्डला जिला का नाम सुनते ही नाक-भौं सिकोड़ने लगते हैं। तबादला का नाम सुनते ही मनौतियाँ मनाने लगते हैं। उनकी मनोवृत्ति कुछ ऐसी बन चुकी है कि मण्डला जिला के हर चौथे-पाँचवें मकान में भूत लीला होती होगी। हर गोंड़ डाकू और हर गोंड़नी टुनही होगी। हर गाँव में

शाम होते ही शेर के बोलने की आवाज सुनाती होगी। नित्यप्रति मलेरिया के कारण लाशों की परेडें निकलती होंगी। ऐसे विचारों से भयभीत होकर मण्डला के तबादला को रद्दी कराना चाहता है। आना ही पड़ता है तो कालापानी की सजा समझकर आता है। ऐसे अनर्गल विचार ही दिमागी गुलामी को सिद्ध करते हैं।

जो मण्डला जिला में आ चुकता है वह वापिस नहीं जाना चाहता। उसे आत्म-संतोष होता है। उसे अनुभव होता है कि अंग्रेजों की पुस्तकों से उसने जो विचार प्राप्त किये वे विचार गलत हैं। इस अनुभव से, मेरा कथन सिद्ध होता है कि अंग्रेजों ने विषमय साहित्य लिखा और हम लोग दिमागी गुलामी के कारण उस असत्य और विषमय साहित्य को सत्य और अमृतमय मानकर भूल कर रहे हैं। अंग्रेजों के साहित्य का प्रभाव केवल उन पर है जिनको मण्डला जिला का व्यक्तिगत अनुभव नहीं है। व्यक्तिगत अनुभवों से रहित ऐसे बहुत व्यक्ति हैं। उनमें कई उच्च-पदस्थ भी हैं।

सबों को नहीं मालूम कि कुक्करमठ का समास-विग्रह कुक्कुर + मठ नहीं है बल्कि कोक्कल + मठ है या कि देश की आजादी के बाद ऐसी स्थिति नहीं रही कि बीमार हो जाने पर चार-छः दिन हवा-पानी में चलकर ही डाक्टर-वैद्य से मुलाकात के बदले मृत्यु से मुलाकात होगी। अब स्थिति बदल गई, अब चन्द घंटों में डाक्टर सुलभ हो सकते हैं। हर रोगी को आत्म-विश्वास रहता है कि मनचाही दवा मोटर से चार-छः घंटों में आ जावेगी। सड़कों में हर साल तरक्की हो रही है। हर साल नई सड़कें बनती हैं, हर साल दुर्गम स्थान सुगम होते जा रहे हैं।

गोंड़ और बैगा जाति के सम्बन्ध में बहुतों के ये ही अनुभव हैं कि शासन को और विद्वानों को, इन जातियों का जो भी इतिहास या नृतत्व शास्त्र है, उसकी गलत और भ्रमोत्पादक जानकारी है सही जानकारी नहीं है। गलत पृष्ठभूमि होने के कारण गलत भावनाएँ बन चुकी हैं। अतः जो भी इलाज होता है सब गलत इलाज होता है।

गोंड़ और बैगा जाति में एक प्रकार का नैराश्य छाया हुआ है। जिसकी रूपरेखा इस तरह है—"कल हमारे खेत हमारे पास से निकल जावेंगे। वनों में हमारी स्वतंत्रता समाप्त हो जावेगी। कल हमको मजदूरी नहीं मिलेगी। हम भूखों मरेंगे।" देश के इस विशाल अंग को देश की स्वतंत्रता का जो रसास्वादन होना चाहिये उसमें यह नैराश्य बाधक हो रहा है। उनके समक्ष ऐसे प्रचार किये जाते हैं कि—"तुम

जंगलों में अपने पशुधन को मुफ्त में चरा सकोगे। तुमको भूदान की जमीन मुफ्त में मिल जायगी। तुमको शासन मुफ्त में छात्रवृत्ति देगी। तुमको शासकीय नौकरी में प्राथमिकता और रिजर्वेशन मिलेगा।" ऐसे प्रचारों से इन जातियों की दैवी-सम्पत्ति और सात्विक वृत्ति कम होती जा रही है। अर्थात् नैराश्य में वृद्धि होती जा रही है। प्रचारक अपने स्वार्थ के आवेश में भूल जाता है कि गोंड़ और बैगा जाति मुफ्तखोर या भिक्षुक नहीं है जो दाता की खैर मनाता रहे जो पुरुषार्थ से हीन हो जाना पसन्द करता हो। वे परिश्रम चाहते हैं। पसीना की कमाई खाना चाहते हैं। उनको अनुदान नहीं मजदूरी चाहिये। स्वाभिमानी जाति को पर-मुखापेक्षी बनाना सेवा नहीं है कुसेवा है। लेने और देने वाले की दोनों की तौहीनी है। इस नीति पर गम्भीरता से पुनर्विचार करना आवश्यक है।

मण्डला जिला को पिछड़ा मानने का एक कारण—शासन का मंडला जिला के साथ सौतेली माँ जैसा व्यवहार है। शासन के अधिकारियों का तर्क इस तरह है—"शासन में मण्डला जिला की आवाज बुलन्द करने वाला कोई मन्त्री आदि नहीं है। सरकार तो बहरी है। जोर से चिल्लाओ तब कहीं शासन को सुनाई देता है। माँग रे मुँह तो खा।" इस अनर्गल तर्क पर कुछ कहना वृथा है। स्वराज्य के दिनों में भी क्या इस प्रकार का अन्याय और पश्चाताप संभव है? जनता सत्य और अहिंसा के नाम पर चलने वाले शासन से न्याय की आशा करती है।

वनों का आधिक्य भी एक प्रधान कारण है। न रेलें हैं, न सड़कें। जिला से जंगल की आमदनी अधिक है और भूराजस्व से कम है। रेल कम होने से, दौरा करने वाले अफसरों को माइलेज मिलता है। उनके लिए मण्डला स्वर्ग समान हैं।

एक हिसाब से पिछुड़ा होना आशीर्वाद स्वरूप है। यदि चरित्र की निरंकुशता या पश्चिमी बुद्धि का नाम ही उन्नति है तो मण्डला जिला पिछुड़ा ही अच्छा। मण्डला जिला को "कालापानी" बने रहना ही अच्छा है। जिला को केवल बारहमासी सड़कें चाहिए।

गुण और दोष सभी में होते हैं। एकांगी वर्णन से वास्तविकता छिप जाती है। अंग्रेजों के गजेटियरों में, सर्वव्यापी कमजोरी यह है कि समाज के दोषों को मुख्य स्थान मिला है और गुणों के वर्णन में कृपणता की गई है। मण्डला जिला गजेटियर में पेज ५१ में गाँवों के नाम की एक

कथा, असत्य कथा, एक बैगा के मुह में रख दी गई है। कथा को श्रवण-कुमार की पौराणिक कथा पर आश्रित किया गया है। जिन गाँवों के नाम बताये गये हैं उन नामों के गाँव मण्डला जिला में हैं ही नहीं। नामों को तोड़-मरोड़कर लिखा है। जैसे "देवरी-दादर" को "दौरी-दादर" लिखकर देव की जगह दौरी (टोकनी) का अर्थ लगाया है। पूरा उदाहरण इस प्रकार है :—

"In connection with village nomenclature the Baigas relate a curious story. A certain Sarwan had ordered his wife to treat his old, blind parents with the same care and kindness as himself, but discovered one day that, where as she fed him and herself with nirmal khir (pure milk, rice and sugar), she was in the habit of giving the inferior food of mehari (rice and curds) to his parents. As soon as he had realised the deception, he picked up a stick to teach her better manners, but she snatching at some, kudai (kodon porridge), Which was lying in a basket, and a large spoon (chatwa) took to her heels. When she was struggling up a steep hill, the man began to gain on her, and she had to throw away the kudai, from which the name of that place is now known as Kudai-dadar. A little further on she had to lighten her load again, and threw away her basket (daori), thus giving a name to Daori-dadar. Her chatwa or spoon, went next at Charwapat, but Sarwan finally caught her up and cut off her breast at Chichimatta. Further on, at Benipat, he cut off her hair and lastly at Nakti-ghatia, her nose......"

Extrat copy of page 56 at page 51 of Mandla District Gazetteer.

यह तो हुआ मण्डला गजटियर से। अब एक और नमूना है बंगाल

के चौबीस परगना जिला के गजटियर के पेज २४२ (दो सौ ब्यालीस) में शीर्षक हेंकेलगंज (HENCKELL GANJ) में लिखा है :—

"The place is called after Mr. Henckell, Magistrate of Jessore, who was appointed Superintendent for cultivating the Sunderbans. In 1784.........the work of reclamation was interrupted by tigers, which made constant attack on work-men. The overseer, therefore, called the place Henckell-ganj in the belief that the tigers would be over-awed by the name and would cease to molest his men. This name adhered to the village, until the Survey authorities, in mapping out the district, took the native pronunciation and entered it in the maps as Hingul-gunge, So blotting out its history."

इस उदाहरण में एक तरफ तो अंग्रेज जाति का अभिमान है कि अंग्रेज अधिकारी के नाम का उच्चारण सुनते ही डर के मारे शेर भाग जाया करते थे और दूसरी तरफ हिंदुस्तानी ओवरसियर की चापलूसी का वर्णन करके भारतीयों का भयंकर अपमान है। अंग्रेज लेखकों ने ऐसी गलत परम्परा डालने के बहुत से प्रयत्न किए। हर क्षेत्र में ऐसे प्रयास हैं। गजटियरों में, इतिहासों में, नृतत्व शास्त्र में, सर्वत्र ! कहीं-कहीं ईमानदारी बरतने पर भूल भी हो जाया करती है जो अपवाद है।

मण्डला जिला को बदनाम करने का एक और उदाहरण है कि विज्ञान के नाम से कैसा भ्रमपूर्ण प्रचार होता था। मार्च १९४० की The Geographical magazine, London, Volume 10 No. 5, पेज ३४८-३५६ में 'The land of the Baigas' शीर्षक लेख है। उसमें दो तरुणियों के नग्न वस्त्र फोटो हैं, कि बैगा देश में तरुणियाँ इस प्रकार रहती हैं। उन दो तरुणियों में से एक भी बैगा जाति की नहीं हैं। दोनों जीवित हैं। वे इस प्रकार अर्धनग्न नहीं रहती। न बैगा जाति की तरुणियाँ ऐसी रहतीं। भारतीय विद्वानों को इस प्रकार के प्रचार का पता न जाने है या नहीं। इस प्रकार के साहित्य को विज्ञान नहीं समझना चाहिए। गलत और भ्रमोत्पादक साहित्य से पढ़े-लिखे भारतीयों के हृदय में आदिवासियों के प्रति नफरत और हीनता की भावना जम चुकी है। उस गलत भावना के कारण स्थिति समझने में कठिनाई होती है।

दूसरा अध्याय

प्राक् ऐतिहासिक काल

१—भूगर्भशास्त्र

२—गुजराती सैलानियों का पुरुषार्थ

३—हिन्दू मुसलिम मान्यता

४—रामायण और महाभारत काल के अवशेष

५—माहिष्मती नगरी, ओंकार मान्धाता, महेश्वर, मण्डला-गजटियर की गलतफहमी, अनुमानों की धारणा, मण्डला में मूर्त्तियाँ, अप्रकाशित पुस्तकें।

६—स्थानीय प्राचीनता के और तथ्य

७—इतिहास ग्रन्थ—गढ़ेश नृप वर्णनम्

---

(१) भूगर्भ शास्त्र

गोंड़वाना का मण्डला जिला नर्मदामाई का बालक्रीडा स्थल है। उमर में नर्मदामाई गंगा जी से जेठी हैं। भूगर्भशास्त्र के सर्वमान्य विद्वान् आस्ट्रिया निवासी एडुअर्ड सुएस (Eduard Suess) के अनुसार, गोंडवाना क्षेत्र का अस्तित्व आज से पैंतीस करोड़ वर्ष पहिले भी था। यह क्षेत्र दक्षिण अफ्रिका और आस्ट्रेलिया से भूमि में संलग्न था। जहाँ आज हिन्द महासागर लहरा रहा है वहाँ भूमि थी। अर्थात् नर्मदा माई की उम्र पैंतीस करोड़ वर्ष से भी अधिक है उन्हीं विद्वान के अनुसार आज से केवल सात करोड़ वर्ष पहिले हिमालय पर्वत बना। अर्थात् गंगा जी की उम्र सात करोड़ वर्ष से अधिक नहीं। वे कहते हैं कि Tertiary Era की तीसरी Stage में हिमालय के बनने से गोंड़वाना क्षेत्र में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। परिशिष्ट में दक्षिणावर्ति शंख, करिया पहार, रैपुरा की समुद्री सीपें, चिरई डोंगरी का वायुकुण्ड, सहजपुरी का शैलोदक, आदि विषय विशेष अध्ययन के लिये उपयुक्त हैं।

डिंडौरी हाई स्कूल के विद्यार्थियों ने स्फटिक सरीखे पत्थर का एक चौकोर खण्ड प्राप्त करके अपने भूगोल विभाग में रखा है। आर्य संस्कृति के बहुत पहिले गोंडवाना क्षेत्र में आबादी अवश्य रही होगी। पैंतीस करोड़ वर्षों में न जाने कितनी बेर, और न जाने कितने प्रकार के प्रलय हुए होंगे। फिर भी शैलों की स्थिति और नर्मदा माई की धारा कायम है।

स्वर्गीय रविशंकर शुक्ल अभिनन्दन ग्रंथ में लिखा है, कि येल (Yale) विश्वविद्यालय के पर्यटकों ने जबलपुर के आस-पास प्राक् ऐतिहासिक काल के प्राणियों के अवशेष प्राप्त किये। नर्मदा क्षेत्र में प्रस्तर युग के औजार मिलते हैं। छिन्दवाड़ा जिला में कर्दम और महाक्षत्रपों के सिक्के मिले। सिवनी और बैतूल जिलों में चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के सिक्के मिले।

सिवनी और छिन्दवाड़ा के बीचो-बीच मौजा मरका हांड़ी के पास मौजा मोहगांव में प्रस्तरीभूत वनस्पति के बहुत अवशेष मिलते हैं। कोई आश्चर्य नहीं होगा यदि मण्डला जिला में हर प्रकार के प्राचीन अवशेष मिलें। भूगर्भीय सर्वेक्षण से खनिज पदार्थ, भूगर्भशास्त्र, और इतिहास की सम्पत्ति मिलने की पूरी आशा है।

(२) गुजराती सैलानियों का पुरुषार्थ

प्रसिद्ध अंग्रेजी दैनिक, दि टाइम्स आफ इण्डिया के अट्ठाइस फरवरी १९६० के रविवासरीय अंक में श्री सवीन कुवँ का एक लेख, नर्मदा माई की प्रवाह यात्रा के सम्बन्ध में प्रकाशित हुआ है। वह यात्रा अमरकंटक से भड़ौच तक इक्यावन दिनों में पूरी हुई। साथ में रबर की नावें थीं। तेरह साहसी गुजराती युवक थे जिनमें दो युवतियां भी थीं। बारह सौ मील की यात्रा के नेता श्री ध्रुवकुमार पंडया थे। यात्रा १९।११।५९ को अमरकंटक से आरम्भ हुई और १०।१।६० को भड़ौच में समाप्त हुई। यात्री दल ने एक जर्मन पर्यटक का उद्धार किया, जिसका सर्वस्व लूटा जा चुका था। उक्त लेख में एक जगह लिखा है :—

"The troupe leader has two suggestions for the Madhya Prabesh and Bombay Governments. He says there are valuable archeological and architectural relics lying abandoned on the Narmada water-front. It is the Government's duty to preserve them." एक फोटो के नीचे लिखा है—

"In their 1200 mile trip down the Narmada, the students found abandoned, and exposed to the ravages of the elements, ancient stone carvings and statues such as these, and relics of the Pre-historic Indus valley civilization, and of Moghul and Maratha conquests."

(३) हिन्दू मुसलिम मान्यता

धार्मिक मुसलमान नर्मदा माई को अतिपूज्य मानते हैं। नर्मदा माई का प्रवाह पवित्र काबा की तरफ है। नर्मदा माई हज यात्रा का मार्ग दर्शन कराती हैं। जबकि भारत की अन्य नदियाँ पूर्व की तरफ बहती हैं। सिवायं नर्मदा माई के संसार भर में और किसी नदी की परिक्रमा नहीं होती। भक्त लोग भिचा मांगते हुए दोनों तटों की पैदल यात्रा को परिक्रमा कहते हैं।

(४) रामायण और महाभारत काल के अवशेष

नर्मदाखण्ड का अस्तित्व हिमालय से पहले का है। हिमालय के जन्म के पहले भी नर्मदा खण्ड में मनुष्य रहते थे। कृषि, राज्य व्यवस्था, सभ्यता, सब किसी न किसी प्रकार से रही होगी। हिमालय के जन्म के बाद गंगा, सिन्धु आदि नदियों का उद्भव हुआ। इन नदियों के किनारे आर्य संस्कृति फली-फूली। नर्मदा खण्ड की सभ्यता प्राचीन है और गंगातट की सभ्यता उस हिसाब से नवीन है। आर्य सभ्यता के समय में रामायण और महाभारत के काल हुए। रामायण काल में सहस्रबाहु और रावण का युद्ध हुआ। उस युद्ध का चेत्र नर्मदातट का माहिष्मती नगरी नामक सहस्रबाहु की राजधानी में था। इस काल का परिचय देने वाले स्थान कान्हाकिसली में सरसन ताल, तूर्सा ताल, तथा रावनकुण्ड, सहस्रधारा और सहस्रबाहु की मूर्तियां हैं।

महाभारत काल में द्रोणाचार्य हुए। उनके शिष्य एकलव्य थे। द्रोणाचार्य ने गुरुदक्षिणा में एकलव्य से दोनों हाथों के अंगूठे ले लिये। गोंड़ बैगा, भील आदि उसी आन को मानकर तीर चलाने में हाथ के अंगूठा का प्रयोग नहीं करते। वे मध्यमा और तर्जनी के बीच में बाण को दबा कर तब छोड़ते हैं। वे आज भी द्रोण पात्र (पत्तों का बना हुआ दोना) में और पत्तलों में भोजन करते हैं। उस काल की स्मृति स्वरूप भीम-

लाट, भीम डोंगरी, भीमकुण्डी, गोटेगांव के पास का बरहटा आदि स्थान हैं। महाभारत युद्ध में जिस शिशुपाल का वर्णन मिलता है वे चेदि वंश के राजा थे। चेदि वंश को कलचुरि वंश ही माना जाता है। विद्वानों ने चेदि संवत् का आरम्भ—न कि चेदि वंश का—सन् २४८ ई० से माना है।

महाभारत काल में नागवंशी क्षत्रियों का सितारा चमकने लगा था। नागवंशी क्षत्रिय और नाग कहे जाने वाले सर्प। इन दोनों शब्दों की एकता से लोगों ने सर्प पूजा को महत्व दिया। जो वास्तव में नागवंशियों के पराक्रम की पूजा है। नागवंशियों का पराक्रम महाभारत काल में बहुत बढ़ चुका था। पाँच पाण्डवों में से एक का नाम "नकुल" था। नकुल का अर्थ नेवला होता है जो सर्प या नाग का जन्म से शत्रु है। नागवंशियों के भय से राजा परीक्षित भागकर जल में छिपने पर भी नहीं बच सके। जनमेजय के सर्प यज्ञ का अर्थ भी नागवंशियों से युद्ध का है।

नागवंशी मनुष्य योनि में हैं। देवयोनि भी हैं क्योंकि मंत्र के वश में हैं। मनुष्य योनि में पराक्रमी हैं। जब युद्ध में अजेय सिद्ध हुए, तो मित्र और पूजा के पात्र बनाये गये। इसी से सर्वत्र नागों की प्रार्थना, स्तुति, पूजा होती है। शास्त्रीय कल्पनाओं में नागों की स्थिति सर्वत्र है। पृथ्वी को धारण करने वाले शेष नाग हैं। शेषशायी विष्णु को आश्रय देने वाले शेषनाग हैं। शिवजी के भूषण रूप में नाग हैं। समुद्र से चौदहरत्नों का अविष्कार भी नाग ने किया। अर्थात् महाभारत काल में जिन नागवंशियों के पराक्रम का वर्णन है वे नाग हिन्दू सभ्यता और संस्कृति में सर्वत्र व्याप्त हैं। जैन तीर्थंकर पार्श्वनाथ भी नागवंश के थे। उनका समय ८७७ से ७७७ बी. सी. निर्णय किया गया है। विष्णु के वाहन गरुड़, तथा कार्त्तिकेय का वाहन मयूर, दोनों सर्पों के शत्रु हैं।

मण्डला के राजा धानूशाह या धानू पंडा भी नागवंश के थे। मुसलमानी प्रभाव के कारण आधुनिक लोग धानूशाह कहने लगे। महाभारत काल के पाण्डव शब्द के प्रभाव के कारण और स्थानीय पण्डा शब्द के प्रभाव के कारण धानूपण्डा कहने लगे। परिशिष्ट में पीपर पानी देखिये। धानू पण्डा की महत्वपूर्ण कथा दब सी गई है। क्योंकि धानू पण्डा की कथा में स्थानीयपन है। गजटियर लेखक ने मखौल उड़ाया है। मखौल का एहसान मानना चाहिये। उस मखौल से सामग्री मिलती है। धानू

पण्डा की स्मृति में "जस" नामक लोकगीत गाये जाते हैं। लोकगीत के जस का भाव इस प्रकार है—"धानू पण्डा देवी के दर्शन के लिये बारह वर्ष बाद गये। देवी ने परीक्षा ली। धानू पण्डा से सिर मांगा। उसने सिर उतार कर देवी के चरणों में चढ़ा दिया। देवी प्रसन्न हो गई। सिर जुड़ गया। देवी ने जीवनदान दिया वरदान दिया।" ऐसी कथा है जिसमें नागवंशी राजा धानू पण्डा का परिचय मंडला के गजटियर में और लोकगीत में मिलता है।

धानू पण्डा मण्डला के प्रथम नागवंशी राजा माने जाते हैं। मंडला जिला गजटियर ने उनका समय सन् १५० ई० माना है। निंगोगढ़ का राज्य भी पहिले नागवंश का रहा होगा। नागवंशियों में धुर्वे गोत्र के गोड़ों के कबजा में आया। गढ़ा में गोंड़ राज्य के संस्थापक कन्छवाह या दौराय ने जिन राजा से राज्य और कन्या प्राप्त की उन राजा को कहीं कलचुरि लिखा है और कहीं नागवंशी लिखा है। इस प्रकार गोड़ों का कई स्थानों में नागवंशियों से सम्बन्ध स्थापित होता है। ये सब बातें प्राचीन हैं। आधुनिक बातों में नाग (सर्प) का उपद्रव या पुरुषार्थ जानने के लिये, परिशिष्ट में बरंगदा के वर्णन में फागू अहीर का हाल देखने लायक है। पंद्रह-बीस वर्ष पहिले मण्डला में एक सपेरे के पास, तीन-तीन चार-चार इंच के सर्प दिखे थे। उसका कहना था कि ये सर्प पूर्ण अवस्था को प्राप्त हो चुके हैं, अत्यन्त जहरीले हैं, और ऐसी कई दुर्लभ जातियों के सर्प, केवल मण्डला जिला में मिलते हैं। ऐसे ही छोटे शरीर वाले सर्प ने फूल में छिपकर राजा परिक्षित को डँसा था।

नागवंशियों के वैभव और पराक्रम को सिद्ध करने वाले कई स्थान हैं। जैसे नागपूर, नागौद, नागा पहाड़, नागदमन, आदि। नागवंशियों का वैभव सर्वत्र व्याप्त, नाग मूर्तियों से और अन्य देव मूर्तियों से जिनमें नागमूर्ति की छाप है, प्रगट होता है। बालाघाट शहर के बीच में नाग-मूर्ति है। मण्डला के रंगरेजघाट धर्मशाला में एक कलापूर्ण नागमूर्ति है। अमरकन्टक में कई नाग मूर्तियाँ हैं। और कई देव मूर्तियों के नीचे नाग बने हैं। मण्डला किले की सीतलामाई की मढ़िया में, विष्णू मूर्ति के नीचे दो नाग बने हैं। नागा पहाड़ में रानी दुर्गावती की समाधि में एक नागमूर्ति रखी है। जबलपुर, पाटन आदि स्थानों में बहुत सी नाग मूर्तियां हैं। नागवंशी क्षत्रियों का परिचय देने वाली बहुत सी जातियाँ हैं। जैसे असम की नागा जाति, नागा साधु, मध्यभारत के नागा योद्धा,

बंगाल के बहुत से नागवंश। छोटा नागपूर का पूरा प्रदेश नागवंशी क्षत्रियों से भरा है। आज चाहे कई को आदिवासी कहते हों। उनकी उपजातियाँ और वंश नाम भी सर्पों के समान नाम की हैं। जैसे कर्कोटक, तक्षक, नाग आदि। गोंड़ और बैगा जातियों में कई कुलों की "कुरी" का सम्बन्ध नाग या सर्प से माना जाता है।

इस प्रकार का कुछ परिचय मण्डला जिला का गोंड़ राजाओं के पहिले का मिलता है। एक और परिचय मिलता है। विद्वानों ने माना है कि आर्यो के आने के पहिले भारत के मध्यम में एक "भर" नामक जाति राज्य करती थी। काशी के आस-पास अभी भी भर जाति है। मण्डला जिला में दो जातियाँ, भरिया और रजभर हैं। भरिया जाति समनापूर के आस-पास है और रजभर जाति मण्डला के आस-पास। रजभर अपने को रघुवंशी कहते हैं। कहना कठिन है कि प्राचीन भर जाति से भर नामधारी, रजभर और भरिया जातियों से कोई सम्बन्ध है, या नहीं है। पर प्राचीन जातियों में बैगा, अगरिया तथा धोबा भी मंडला जिला में हैं। इन सब जातियों के रस्मो रवाज का अध्ययन करने से बहुत बातें समझ में आवेंगी। फिर निर्णय चाहे जैसा निकले।

मण्डला जिला गजटियर के पेज तेईस में प्राचीनता की एक और झलक मिलती है। लिखा है :—"So great did they become, that in the year 612 A. D., they (Chalukyas) were able to repulse from the banks of the Nerbudda, the greatest warrior of the age, Harsh a whose arms had relieved Hindustan of the horrors of Hun occupation."

इस उक्ति के समकक्षीय, स्थानीय परिचय इस प्रकार हैं :—

गोपालशाह (नं० १०) ने अपनी राजधानी गढ़ा से पैंतीस मील दक्षिण, सारूगढ़ की विजय, सन् ६३४ ई० में की। हर्ष वर्धन की मृत्यु सन् ६४७ ई० में हुई। भलवारा में रानी बवेलिन नामक मूर्ति है। कलचुरि वंश के कर्णदेव की रानी हूणवंश की अबला देवी थीं। इस सब तथ्यों का सामञ्जस्य, विशेष अध्ययन से स्थापित हो सकेगा।

बौद्ध और जैन काल के अवशेष पूरे मण्डला जिला में फैले हैं। सर्वत्र हैं। सभी अज्ञात हैं। मुझे थोड़े स्थानों का ही पता लग पाया है। उनका वर्णन यथा स्थान है। और बहुत स्थानों का पता लगने की आशा

है। कुकर्रामठ की स्थिति त्रिपुरी और रतनपुर के बीचों-बीच है। विंझौली की स्थिति रूपनाथ से केवल ४५ मील दक्षिण है। रूपनाथ की अशोक प्रशस्ति प्रसिद्ध है। कलचुरि राजाओं की प्रगति त्रिपुरी से पूर्व दिशा में हुई। रतनपुर का महत्व त्रिपुरी के बाद हुआ। त्रिपुरी का शिला लेख ८८३ का है। कलचुरि राजाओं का अन्तिम शिलालेख सन् ११९६ का है।

गोंड़ जनता की प्रगति चाँदा, लाँजी आदि से गढ़ा होकर भोपाल तरफ हुई। गोंड़ राजाओं की प्रगति गढ़ा से चारों दिशाओं में हुई। गढ़ा नाम का अपना महत्व है। गढ़ा नाम ही अनोखा सा है। गढ़ और गढ़ी सर्वत्र सुने जाते हैं। पुल्लिग गढ़ा एक हा है।

जैन मत की प्रगति दमोह के कुण्डलपुर से दक्षिण तरफ हुई। शहपुरा (मण्डला जिले का) विंझौली, कुकर्रामठ, हिरदेनगर, झुलपुर, आदि सब दिशाओं में जैन मत के अवशेष मिलते हैं।

सिहोरा के पास की जैन मूर्ति, खनुवाँ देव नामक प्रसिद्ध हो चुकी है। उस जैन मूर्ति पर लोग थूकते हैं। जूता मारते हैं। मत-मतान्तर के नाम पर इस हद दरजे की पशुवृत्ति का प्रदर्शन होता है। दोनों तरफ दो प्रकार की सीमा हैं। एक तरफ द्रोह की और पशुवृत्ति की चरम सीमा है। दूसरी तरफ सहन-शीलता की चरम सीमा है। जैन समाज ने चाहा और प्रयत्न किया कि वर्तमान स्थान से खनुवांदेव की मूर्ति को स्थानान्तर कर दें। शुद्धि करके पूजा करने लगें। गांव वालों ने कानून और अधिकार का प्रदर्शन किया। कि हम अपने गांव की चीज नहीं ले जाने देते। हमारे गांव का रक्षक यह देव इसी प्रकार की पूजा में सन्तुष्ट रहता है। कुण्डल पुर की जैनमूर्ति अनुकूल वातावरण पाकर प्रसिद्ध हो चुकी है। विंझौली की शान्तिनाथ की मूर्ति आजकल अप्रसिद्ध है। जनता का झुकाव जैसा जिस तरफ हो जाय।

मण्डला के बूढ़ी माई वार्ड में एक जैन मूर्ति मिली है। जिला संग्रहालय में सुरक्षित है। विग्रह के आस-पास दो शेर पीछे के दो पैरों के बल खड़े हैं। शेरों के सींग हैं। शार्दूल कहलाते हैं। शेर के सींग नहीं होते। कल्पना में माने जाते हैं। शेरों के कारण महावीर स्वामी की मूर्ति कह सकते हैं। अलंकार नहीं है, इससे बुद्ध मूर्ति नहीं मानी जा सकती। सतवहनी (सप्त मातृका) की मूर्ति मण्डला के किले में है। और कई स्थानों में भी हैं। विभिन्न मतों के और भिन्न-भिन्न समयों के अवशेष एक ही स्थान

पर मिलते हैं। चाहे सह अस्तित्व रहा हो। चाहे एक के बाद एक आते गये और अपने-अपने अवशेष छोड़ते गये। सब स्थान अज्ञात रहे आये। किसी ने कल्पना भी नहीं की, कि मण्डला जिला में भी कुछ प्राचीन सभ्यता के अवशेष हो सकते हैं। गजेटियर की "सदैव से असभ्य" उक्ति का प्रभाव सब पर रहा।

(५) माहिष्मती नगरी

माहिष्मती पुराना नाम है। माहिष्मती के राजा सहस्रार्जुन उर्फ सहस्रबाहु उर्फ कार्तवीर्य ने लंकाधिपति रावण को हराया था। माहिष्मती में आदि शंकराचार्य और मण्डन मिश्र का शास्त्रार्थ हुआ था। कलचुरि राजाओं की प्रथम राजधानी माहिष्मती थी। दूसरी त्रिपुरी हुई। तीसरी रतनपूर हुई। माहिष्मती की स्थिति नर्मदा तट में मानी जाती है। मैसूर का दावा नहीं जम सकता। सन् १९५७ में प्रयाग विश्वविद्यालय के डाक्टर अमरनाथ झा का मेमोरियल वोल्यूम प्रकाशित हुई। उसमें डा० झा की संक्षिप्त डायरी है। पेज १४४ में तारीख २३ मई १९२३ का हाल लिखा है। वे लिखते हैं :—"मैं सहारिया से बसआरी राज के हाथी में बैठकर महिषी—प्राचीन माहिष्मती गया। वह हमारे कुटुम्ब का प्राचीन निवास स्थान है। मकान का पुराना स्थान और सामने का पोखरा अभी भी हमारे कुटुम्ब के नाम से जाहिर हैं।"

माहिष्मती कहलाने के गौरव की लालसा करने वाले नर्मदा तट में तीन स्थान ज्ञात हैं। महेश्वर, ओंकार मान्धाता, और मण्डला। महेश्वर और ओंकारमान्धाता का कुछ अनुशीलन हो चुका है। मण्डला का अध्ययन अभी विद्वानों द्वारा नहीं हुआ। जिस विद्वान ने जिस स्थान का पक्ष लिया, उसे ही माहिष्मती सिद्ध किया। तीनों स्थानों की जानकारी सामने रखकर तीनों स्थानों का तुलनात्मक अध्ययन अभी तक किसी ने नहीं किया। अतः अभी तक के सब निर्णय इक तरफा और अपूर्ण हुए। तीनों स्थान अलग-अलग हैं। तीनों माहिष्मती नहीं हो सकते। एक ही स्थान माहिष्मती है। बाकी दो माहिष्मती नहीं हैं। प्रश्न इतना ही है कि तीन में से कौन स्थान माहिष्मती है। तीनों स्थानों का वर्णन इस प्रकार है।

ओंकार मान्धाता—खण्डवा से चालीस मील उत्तर। ज्योतिर्लिङ्ग है। मन्दिर की दीवाल में ग्यारहवीं शताब्दी का पुण्य दन्तकाचार्यकृत, शिव

महिम्न स्तोत्र टंकित है। मण्डला जिला गजेटियर में लिखा है कि डाक्टर फ्लीट ने ओंकार मान्धाता को माहिष्मती सिद्ध कर दिया है। १६५७ में मध्यप्रदेश सरकार ने "मध्यप्रदेश दर्शन" नामक ग्रन्थ प्रकाशित किया। उस ग्रन्थ में ओंकारमान्धाता का वर्णन है। यह कहीं नहीं लिखा कि ओंकारमान्धाता माहिष्मती कहलाने का दावा करता है। या कोई किम्वदन्ती या प्रमाण है। मध्यप्रदेश दर्शन में मण्डला का वर्णन नहीं है। वर्णन होता, और लिखा होता कि मण्डला माहिष्मती है या नहीं है, तो बात दूसरी थी। सरकारी चूक से कोई निष्कर्ष नहीं निकलता।

महेश्वर—ओंकार मान्धाता से ३५ मील पश्चिम और इन्दौर से ६० मील दक्षिण है। रानी अहिल्याबाई की राजधानी थी। महेश्वर उत्तर तट में है। दक्षिण तट के स्वर्णद्वीप में शालिवाहनेश्वर मन्दिर है। महेश्वर से आठ मील पूर्व में मण्डलेश्वर है। मण्डला और मण्डलेश्वर ये दोनों नाम मिलते-जुलते हैं। अतः पूर्ण सम्भावना है कि पौराणिक या आधुनिक अध्ययन में कोई गड़बड़ी हो गई हो। पौराणिक वर्णन, वायुपुराण के रेवाखंड में, स्कन्द पुराण के, रेवा खंड में, वसिष्ठ संहिता में, नर्मदा रहस्य में आदि ग्रंथों में मिल सकता है। १६४६ में, महेश्वर के श्री अमृत पंडया ने पत्थर के टुकड़े और मिट्टी के चित्रमय वर्तन प्राप्त किए। धनवेदी और नवदा टोली में खोज हुई। पुरातत्व के विद्वान् डा० संकलिया ने बहुत खोज की। वड़ौदा, बम्बई और पूना इन तीनों विश्वविद्यालयों का प्रबल सहयोग रहा। खूब खुदाई हुई, वस्तुएँ मिलीं, प्राचीनता सिद्ध हुई, पुरातत्व के विद्वानों की सहानूभूति मिली। प्राचीनता नर्मदाखण्ड के रज-रज में है। प्राचीनता सिद्ध होने से माहिष्मती होना सिद्ध नहीं होता। महेश्वर की प्राचीनता से इन्कार नहीं करना चाहिए। प्राचीनता का एक और प्रमाण है। सी० यू० विल्स आई० सी० एस० की पुस्तक के पेज ११४ में महाराजा संग्रामसाहि के ५२ गढ़ों के विषय में लिखा है :—

"The source of this legend of '52 forts' is recorded in Tod's Rajasthan. In the first chapter of his annals of Haravati, he quotes a long extract from Chand, the bard of Chouhans" which tells how in the Dwapar or silver age, the kshattriya race was extirpated by Parasram having provoked him by the "Impious avarice of Sahastra-Arjun of the Haihaya

race, king of Maheshwar on the Nerbudda." And how, when the warrior race was regenerated, Chaturbhuj Chouhan was given Macawati Nagri or Garha Mandla as his territory." इस उद्धरण के मूल में कवि चन्द-बरदाई हैं। जिनसे कर्नल टाड ने लिया। इस एक ही उक्ति में महेश्वर को सहस्रबाहु की माहिष्मती मानते हुए, गढ़ामण्डला को चतुर्भुज चौहान की माशावती माना है। दो मान्यताओं में से एक ही सच है। एक में भूल है। नहीं मालूम कि परशुराम का कोई स्थान महेश्वर के पास है या नहीं। मण्डला के पास देवगांव को परशुराम का और जमदग्नि का स्थान अवश्य मानते हैं। कैप्टेन वार्ड ने देवगाँव को बहुत महत्व दिया है।

मण्डला-गजटियर की गलतफहमी—मण्डला में अभी तक कोई खुदाई नहीं हुई। गजेटियर ने मण्डला का तिरस्कार किया। उसी का मत पुज रहा है। खुदाई न होने से या अभी तक कोई प्रमाण प्रकाश में न आने से, ऐसा सिद्ध नहीं हो जाता कि मण्डला माहिष्मती नहीं है या माहिष्मती है ऐसा असिद्ध नहीं हो जाता। प्रमाणों को खोजना पड़ता है। गजेटियर के मत ने ताली पीटने का या जिन्दाबाद और मुर्दाबाद के नारे लगाने का काम किया है। गजेटियर १९१२ में छपा। इससे पचहत्तर वर्ष पहिले १८३७ में अंग्रेज स्लीमैन ने गढ़ा मण्डला के राजाओं के इतिहास में लिखा है :—

"......Mandla was added to their dominions by Gopal Shah the tenth in descent from that prince (Yadorai) about the year AD 634, in conquest of the district of Marugarh from the Gond chiefs, who had succeeded to the ancient Haihai-banshi sovereigns of Ratanpur and Lanji.........How and when the Gonds succeeded this family in the sovereignty of Mandla, we are never likely to learn, not would it be very useful to enquire. This family of Haihai-banshis ruled over Lanji formerly called Champanattu, Ratanpur formerly called Manipur; Mandla formerly called Mahishmati; and Sambal-pur........."

गजेटियर में इतना भी नहीं लिखा है कि पचहत्तर वर्ष पहिले मण्डला को माहिष्मती मानने की किम्वदन्ती थी। किम्वदन्ती से किम्वदन्ती का अस्तित्व केवल इतना ही सिद्ध होता है। किम्वदन्ती प्रमाण नहीं हो जाती। स्लीमैन के पास प्रमाण थे। उसने कोरी किम्वदन्ती नहीं लिखी। १८३७ में स्लीमैन ने लिखा। आठ वर्ष पहिले १८२५ में गढ़ामण्डला के संस्कृत लेखों वाला निबन्ध प्रकाशित हुआ था। गजेटियर की चाल इतनी थी कि स्लीमैन के वचनों को दबा दिया। जाहिर नहीं किया। कैपटेन वार्ड की अल्टिमा थ्यूल वाली उक्ति को महत्व दिया और डाक्टर फ्लीट के ओंकार मान्धाता वाले मत को प्रमाण माना। चाल काम कर गई। प्रचार वाली गलत परम्परा को लोग प्रमाण मानने लगे।

मण्डला अनुमानों से धारणा—नर्मदामाई के आदि रूप, में पर्वतीय क्षेत्र होने-से धारा के प्रवाह में अन्तर नहीं पड़ा है। मण्डला सरीखे स्थान में समय-समय की बाढ़ से, बहुत से अवशेष मिट्टी में दब गए होंगे। पर्वतस्थ अवशेष यथास्थान हैं। उनको जान चुकने पर निर्णय में सहायता मिलेगी। पौराणिक ग्रन्थों से भी कुछ सहायता मिल सकती है।

मण्डला-शब्द, मण्डला-शब्द पर से बना है। मण्डल का अर्थ है वृत्त या सर्किल। मण्डला में नर्मदामाई ने मण्डल सरीखा बनाया है। पश्चिम वाहिनी नर्मदामाई मण्डला में दक्षिण वाहिनी और उत्तर वाहिनी होकर अचानक बारीक मोड़ (hair pin bend) लेती हैं।

कलचुरि राजाओं ने अपनी राजधानी माहिष्मती से हटाकर त्रिपुरी में बनाई। साधारण विचार से यही बात मन में जमती है कि महेश्वर या ओंकार मान्धाता से उन दिनों इतनी दूर राजधानी नहीं ले गए होंगे, मण्डला से ही राजधानी त्रिपुरी गई।

विद्वानों में प्रचलित है कि मण्डन मिश्र मैथिल ब्राह्मण थे और मण्डला में रहते थे। दरभंगा जिला गजेटियर में लिखा है कि महाराजाधिराज दरभंगा के पूर्वज मिथिला में जाने से पहिले जबलपुर के पास में रहते थे। उनके पूर्वज का वर्णन रानी दुर्गावती के प्रसंग में है। उनका नाम महेश ठक्कुर था। मण्डन मिश्र का समय लगभग आठवीं शताब्दी में था और महेश ठक्कुर का सोलहवीं शताब्दी में। मैथिल ब्राह्मणों का गोंडवाना में आवागमन बहुत प्राचीनकाल से इस प्रकार सिद्ध होता है। मण्डन मिश्र के मैथिल होने का प्रमाण पं० गणेशदत्त पाठक ने बतलाया।

कि कुछ दिन पहिले मलारा के पास, पदमी संगम में एक मैथिल विद्वान् साधु रहते थे। उन्होंने भी मण्डन मिश्र के मैथिल होने का समर्थन किया। मण्डन मिश्र मिथिला के मिसरौली गाँव के थे। मैथिल ब्राह्मणों में वंशावलि के प्रमाण पञ्जिकारों के पास रहते हैं। पञ्जिकारों के पास प्रमाण है कि मण्डन मिश्र मिसरौली गाँव के मैथिल ब्राह्मण थे। मण्डन मिश्र की संतान का कोई प्रमाण किसी भी पञ्जिकार के पास नहीं मिलता। वे शास्त्रार्थ में हारकर संन्यासी रूप में सुरेश्वाचार्य हो गए थे। सन्यासी को संतान का प्रमाण मिल ही नहीं सकता। अभी इस विषय की खोज नहीं हुई है।

माहिष्मती का पाठांतर महिषावती भी मिलता है। महिष का अर्थ भैंसा होता है। मण्डला जिला में कई स्थानों में जंगली भैंसे पाए जाते हैं। जैसे कान्हा-किसली, डुंगरिया, मवई के पास की बुकरा मुंडी आदि। ओंकार मान्धाता या महेश्वर के पास भी जंगली भैंसे शायद रहे हों या अभी हों। पता नहीं है ?

प्राचीनता के अवशेष, मण्डला के आस-पास भी मिलते हैं। लोगों में संग्रह करने की प्रवृत्ति नहीं है। मण्डला के किले में चमकीले दाने मिला करते हैं। एक छिद्र रहित दाना मुझे मिल चुका है।

मण्डला में मूर्तियाँ—मण्डला के बहुत-सी मूर्तियां नागपुर, रायपूर और लन्दन के अजायब घरों में जा चुकी हैं। चाहे जो भी ले जाया करता है। जो बची हैं, उन पर एक चलती नजर डालना है। मण्डला के किले में, सीतलामाई के पास, हनुमान के पास की बुर्ज के नीचे, पश्चिम तरफ जो खण्डहर दीखते हैं, वे गोंड़ राजाओं के श्मशान के खण्डहर हैं।

व्यास नारायण किले में शिवलिंग है। ऐसा एक शिवलिंग विंझौली में है। मधुपुरी के ऐसे शिवलिंग को मार्कण्डेय कहते हैं। व्यास नारायण का स्थान पहिले नर्मदा के दक्षिण-तट में था। अब उत्तर तट में है। किसी प्राचीन राजा ने नर्मदा का और बंजर का संगम जो पहिले जेल-घाट के करीब था, उसे महन्तबाड़ा से पुरवा तक खाईं खोदकर पुरवा में संगम कर दिया। बिना हटाये व्यास नारायण दक्षिण तट से उत्तर तट में हो गये। कैपटेन वार्ड ने धारा परिवर्तन का उल्लेख किया है। वशिष्ठ संहिता के अध्याय १०।११ में तथा स्कन्द-पुराण रेवाखण्ड के अध्याय १०६ में धारा परिवर्तन का वर्णन है। राजराजेश्वरी मन्दिर में तीनों महा-

शक्तियों के तीन छोटे-छोटे मन्दिर हैं। मूर्तियाँ बहुत प्राचीन हैं। परिक्रमा की मूर्तियाँ १९२४ के करीब जमाई गई थीं। सहस्त्रबाहु की दो मूर्तियाँ हैं। काली मूर्ति अधिक प्राचीन है। सफेद मूर्ति बाद की मालूम होती है। सहस्त्रबाहु की दो मूर्तियों से आभास मिलता है कि मण्डला को सहस्त्र-बाहु की राजधानी माहिष्मती समझा जाता था। नर्मदामाई की मूर्ति में बहुत बारीक और कलापूर्ण खुदाई है। विष्णु की एक प्राचीन, अत्यन्त कलापूर्ण मूर्ति, कलचुरि काल की या और पहिले की है। हाथ में दक्षिणा-वर्ति शंख रखा है। एक काले पत्थर की सूर्य-मूर्ति बहुत अनोखी और बहुत प्राचीन है। बाहर की कला-रहित विष्णु-मूर्ति, गोंड़ और बैगा की तरह, कोपीन (लँगोटी) लगाए हुए हैं। आदि वासियों ने विष्णु के शृंगार में से पीताम्बर अलग करके विष्णु को अपनी तरह लंगोटधारी बना डाला। कई देवी मूर्तियों के कानों में गोंड़ों की तरह तरकी आभू-षण है। गोंड़ और बैगा पहिले अपने को पूरी तौर से हिन्दू समझते थे। मूर्ति प्राचीन है। आदिवासियों को अहिन्दू कहने का प्रचार नया है। इस मूर्ति का प्रमाण आधुनिक प्रचार को ढह देता है। शीतलामाई की मढ़िया में विष्णु मूर्ति के नीचे बने हुए दो नाग, मूर्ति को नागवंश के समय की सिद्ध करते हैं। एक चित्र-मूर्ति में सिंह और वराह का युद्ध हो रहा है। एक तपस्वी मूर्ति के कान बुद्ध भगवान की तरह नीचे लम्बे हैं और चुग्गी डाढ़ी भी है। किले घाट में पैसा वसूल करने वाले की झोपड़ी के पास "पुतरिया" नामक मूर्ति है। माना जाता है कि नर्मदा के पूर का जल यदि पुतरिया को स्पर्श करले, तो होशंगाबाद बह जायगा। पुतरिया के दो हिस्सा है। आधे में जैन-मूर्ति है या जैन-मूर्ति की तरह मुद्रा में कोई और ऋषि हैं। अमरकंटक के मार्कण्डेय की तरह। बाकी आधे में खड़े स्त्री और पुरुष दो व्यक्ति एक शिवलिंग का अभिषेक कर रहे हैं। जैन-मूर्ति मानने से सह अस्तित्व सिद्ध होता है। मण्डला का किला नरेन्द्रशाह (१६९५-१७३२) ने बनवाया, और प्राचीन मूर्ति को दीवाल में जड़वा दिया। पुतरिया के सामने नीले पत्थर की आदमकद पंचमुखी शिव-मूर्ति है। बैल पर शिव-पार्वती खड़े हैं। भेड़ाघाट की गौरीशंकर मूर्ति बैठी मुद्रा में है। शिवजी के हर मुख में नुकीली डाढ़ी है। शिव-मूर्तियाँ प्रायः क्लीनशेव मिलती हैं। किले की एक दीवाल में सत-बहनी (सप्तमातृका) हैं। एक पत्थर में सातों मूर्तियाँ खड़ी मुद्रा में हैं,

सब हाथ जोड़े हैं, कई के सिर में पगड़ी हैं। जिस समय में स्त्रियाँ पगड़ी पहनती थीं उसी प्राचीन समय की यह मूर्ति है।

उर्दू वावू घाट की सिंहवाहिनी मूर्ति अति प्राचीन है। नानाघाट की विशाल-मूर्ति के ऊपर "नर्मदामाई की जय" लिखा होने से लोग उसे नर्मदा-मूर्ति समझे हैं। वह लक्ष्मी-मूर्ति है। बावा घाट भारतीय बावा का बनवाया है। स्वप्न में धन खोदने का आदेश पाकर एक साधु ने धन खोदा, उसी धन से घाट बनवाया जो बाबा घाट कहलाता है। धन खोदते समय, सब्बल की प्रबल चोट शिवलिंग पर पड़ी जिस चोट का करीब एक इंच गहरा गोल निशान है। वह शिवलिंग आज भी बाबाघाट में मन्दिर के बाहर रखा हुआ है। चोट का निशान अति स्पष्ट दीखता है। आचार्य भावे के मत से बाबाघाट बनवाने वाले रूपनाथ झा थे। हो सकता है कि गढ़ेशनृप-वर्णनम् और रामविजय काव्य के लेखक रूपनाथ झा, बाद में भारती बाबा हो गए रहे हों।

पास का नायक घाट पूरा संगमर्मर का बना है। बहुत पुराना नहीं है। संगमर्मर का इतना बड़ा घाट, और वह भी सार्वजनिक प्रयोग के लिए देश में शायद ही और कहीं हो। हम लोग लड़कपन में वहीं नहाया करते थे। अब मिट्टी में दब चुका है। किले की खाई खुद जाने से ही मिट्टी बह जाने की आशा है।

कबीर मतानुयायी, बालपीर साहब के समय से महन्तबाड़ा प्रसिद्ध है। केकरे वकील के मकान के पीछे बैयाबाई के मन्दिर में कृष्ण भगवान की अतिभव्य मूर्ति, गोंड़ राजाओं के पूजा करने की है। मण्डला के किले से लाई हुई मूर्ति है।

अभी तक के तथ्य या तर्क प्रमाणों की तलाश में, सहायक चाहे हो जावें, पर स्वयं प्रमाण नहीं है। जितने अधिक स्थानों को मण्डला जिले में देखा उतने अधिक प्रमाण प्राचीनता के मिले। मेरे वश में है ही क्या? खुदाई नहीं करना चाहता, करा भी नहीं सकता, राजभय है। कानून के विरुद्ध है। अध्ययन की अवस्था नहीं रह गई। मण्डला के पक्ष में जो अनुमान हैं उनका पद धारणा (Presumption) तक पहुँचता है। केवल अनुमानों से प्राइमाफेसी केस बन जाता है। धारणा से और अधिक बनता है। मण्डला का दावा इतना हीन नहीं है कि चुटकियों में उड़ा दिया जाय या दावा का पूरा तिरस्कार करके इकतरफा फैसला कर दिया जाय। महेश्वर, ओंकार मान्धाता और मण्डला इन तीनों दावेदारों

का तुलनात्मक अध्ययन करने के लिए सब तथ्यों पर और सब प्रमाणों पर विचार होना चाहिए। तभी उचित निर्णय होगा।

सचमुच में आश्चर्य है कि ऐसी कोई संस्कृत पुस्तक नहीं मिली जिसमें मण्डला का वर्णन हो। यद्यपि मण्डला में कई संस्कृत पुस्तकें लिखी गईं हैं पर किसी में मण्डला नाम नहीं आया।

क्या ऐसा भी हो सकता है कि किसी समय में किसी स्थान को माहिष्मती मानते रहे हों और समयान्तर में दूसरे स्थान को माहिष्मती मानने लगे हों, ऐसा सिद्ध होने पर सबका दिल मान जायगा।

अप्रकाशित पुस्तकें

आचार्य भावे ने एक लेख (हितवाद, अंग्रेजी, नागपुर तारीख चार नौ चालीस) में कुछ अप्रकाशित ग्रन्थों का परिचय दिया है। जिनकी प्रतिलिपियाँ उन्होंने मण्डला में देखा था।

(१) वाजपेयी संहिता—यह ग्रंथ संवत् १५६६ का है। जब महाराजा संग्रामसाहि का राज्य था। ग्रंथ चालीस अध्यायों में है। आचार्य भावे को आखरी के बीस अध्याय देखने को मिले थे। ग्रन्थ के अन्त में स्थान का नाम "वीर नगरपुर" दिया है जो किसी "राम" के शासन में था।

(२) सौदामिक प्रबन्ध—आचार्य भावे (विनोबा भावे नहीं, जी० व्ही० भावे, एम० ए० बी० टी० काव्यतीर्थ, उन दिनों मण्डला हाईस्कूल में शिक्षक थे) ने लिखा है कि इस ग्रंथ के वर्णन को वे सी० पी० रिसर्च सोसायटी की किसी सभा में पेश करेंगे।

(३) गजेन्द्र मोक्ष—अति सुन्दर कविता का ग्रंथ नौसर्ग हैं। प्रथम, द्वितीय और नवम्, केवल तीन सर्ग देखने को मिल सके।

ग्रंथकार लक्ष्मीप्रसाद के प्रपितामह विष्णुशर्मा दीक्षित दक्षिण से महाराज प्रेमसाहि के समय में आये। उन्होंने गंगाधर वाजपेयी को वेद पढ़ाया। ग्रंथकार के पितामह वैद्यनाथ ने हिरदैयशाह के समय में शिष्यों को धर्मशास्त्र, पुराण, काव्य और व्याकरण पढ़ाया। ग्रंथकार के पिता हरि थे। ग्रंथकार हरि की चौथी और अन्तिम संतान थे। हरि नित्य महाराज शाह को पुराण सुनाते थे। हरि ने सबके सामने नर्मदा में शरीर छोड़ा। ग्रंथकार लक्ष्मीप्रसाद की माता का नाम लक्ष्मी था और लक्ष्मी (माता) के पिता का नाम वासुदेव था। ग्रंथकार कश्यप गोत्र के

थे। गजेन्द्रमोक्ष के पहले सर्ग में ४२ श्लोक हैं। जिनमें त्रिकूट का वर्णन है। त्रिकूट के वर्णन में विन्ध्य-पर्वत और मण्डला के जंगलों के पशु और वनस्पतियों का वर्णन है। दूसरे सर्ग के ५२ श्लोकों में त्रिकूट पर्वत के अंतर्गत वरुण के बगीचा का वर्णन है। अन्तिम सर्ग में (नवें) ४५ श्लोक हैं। उनमें आठ राजाओं का वर्णन है। प्रेमशाह से लेकर निजाम-शाह तक। ग्रंथकार निजामशाह के समकालीन तथा आश्रित थे। ३६वें श्लोक (अंतिम नवें सर्ग) में कवि ने लिखा है कि विष्णु भगवान निजामशाह की रक्षा करें। कहीं कोई तिथि संवत् नहीं दिया है। ग्रंथकार ने निजामशाह के दान की बहुत प्रशंसा की है। इसी सर्ग को बारीकी से देखने पर राजमहल के भीतरी प्रपंचों का भी पता चलता है। गजेन्द्रमोक्ष काव्य में कई प्रकार के छन्द हैं। जैसे उपेन्द्रवज्रा, वसन्त तिलका, शार्दूल-विक्रीड़ित, द्रुतविलम्बित, मालिनी, रथोद्धता, स्रग्धरा, अनुष्टुप् आदि। आचार्य भावे ने संवत् १८८२ की लिखी प्रति देखी थी। "गजेन्द्रमोक्ष" काव्यग्रंथ के लेखक कवि लक्ष्मीप्रसाद ने विजयादशमी संवत् (सन् १७८५) के दिन यह ग्रंथ निजामसाहि को अर्पित किया था। यह अर्पण मण्डला में हुआ था। निजामसाहि की राजधानी मण्डला थी। ग्रंथ मण्डला में लिखा गया।

(४) कुछ फुटकर श्लोक और मिलते हैं। संग्रह का नाम "गणेश-नृप वर्णन श्लोक संग्रह" है। उसके दो श्लोक, दुर्गावती के प्रसंग में हैं। एक में दुर्गावती के विवाह का समय और दूसरे में उमरखान रुहिल्ला द्वारा हमले का वर्णन है। इतिहास में ऐसे किसी प्रसंग का पता नहीं।

(६) स्थानीय प्राचीनता के तथ्य

(१) आदि शंकराचार्य के कारण वेदांतवाद और शैव मत को बल मिला। बौद्ध और जैन मतों का ह्रास हुआ। उनका समय सन् ८०० के लगभग माना जाता है। उनके समय तक यादवराय के वंश के २० राजा राज्य कर चुके थे। यशःकर्ण (नं० २०) का राज्यकाल स्लीमैन के अनु-सार ८३६-८७२ था और पं० गणेशदत्त पाठक के अनुसार संवत् ८७३ से ६०६ था।

(२) स्मार्तमत मूर्तियों में कलचुरिकाल की स्पष्ट छाप है। वे इतनी अर्वाचीन नहीं हैं कि गोंड़ काल की कही जा सकें। कुछ प्राचीन मूर्तियों का वर्णन इस प्रकार है—रामनगर की सरस्वती, और नृत्य गणेश, धनौली

की विष्णु-मूर्ति, नारायन डीह की पद्मासन मूर्ति, बिंझौली की अनगिनती मूर्तियाँ, धुधरी की नकटी देवी, भलदारा की रानी वहोलिन, मधुपुरी की सीतला, देवगाँव की विष्णु-मूर्ति आदि।

(३) सन् १६२६ के पूर में मण्डला में एक पुराना घाट निकल आया था और एक शिलालेख मिला था। रायबहादुर हीरालाल ने शिलालेख का वर्णन किया है कि नहीं पढ़ा जाता।

(४) महात्मा कबीरदास (१३८०-१४२०) के गुरु रामानन्द (१४००-१४७०) थे। कबीरदास ने कबीर-चबूतरा में रहकर समाज-सेवा की। खानपान के आचरणों को सुधारा। गोंड़ तो शैव हैं ही। कबीरदास के अनुयायी कबीरपन्थी कहलाते हैं। वैष्णव कहलाने से सम्भव है कि शैव और वैष्णव का झगड़ा यहाँ भी खड़ा हो जाता। आजकल कबीरपंथी लोग कपड़ा बुनने का धंधा पसन्द करते हैं।

(५) पं० गणेशदत्त पाठक ने जो गढ़ामण्डला का इतिहास लिखा है उसमें भी मण्डला को ही माहिष्मती माना है। वे कहते हैं—"अनेक प्रमाणों से यह निश्चित हुआ है कि मण्डला ही को माहिष्मती पुरी कहते हैं।

(६) उन्होंने एकलव्य कथा का एक और मत बताया है कि एकलव्य को हैहयवंश का गड़ा धन प्राप्त हुआ। एकलव्य ने सेना संगठित की। युद्ध में हैहयवंश के अन्तिम राजा मित्रसह को हटाकर राज्य प्राप्त किया। सहस्रार्जुन की नगरी माहिष्मती पुरी में निषाद का रहना कठिन हुआ। इसलिए एकलव्य ने अपनी राजधानी गढ़ा में हटाई। एकलव्य का वंश ही नागवंश कहलाता है। एक सर्प के मुँह में मछली खाने के कारण काँटा धँस गया था। एकलव्य ने काँटा निकालकर सर्प की प्रसन्नता प्राप्त की। सर्प ने धन दिया। यह वंश नागवंश कहलाने लगा। इस वंश ने बहुत दिन तक राज्य किया। नागदेव वंश की कन्या रत्नावली मिली और राज्य भी मिला। यादवराय के सहायक सर्वेपाठक मंत्री हुए। यादवराय अपने घर से झगड़ा करके नौकरी की तलाश में दक्षिण से लाँगी आए थे। उनका पहिला विवाह हो चुका था। यह दूसरा विवाह था। यहाँ रहकर राजा बनकर यादवराय ने अपने कुटुम्ब को भी बुलवा लिया। नागदेव की कन्या रत्नावलि से संतान नहीं हुई। पहिली स्त्री से संतान माधवसिंह का जन्म हुआ। ऐसा पं० गणेशदत्त पाठक ने लिखा है।

(७) कई विद्वानों ने मण्डला को माहिष्मती मानने से इंकार किया

है। वे इतना तो मानते हैं कि माहिष्मती के पद के लिए एक दावेदार मण्डला भी है। पर वे मण्डला के दावा को किसी भी कारण से नहीं मानते हैं। इतने पर भी उनका धन्यवाद मानना चाहिए।

(८) कालिदास के रघुवंश काव्य में वर्णन है कि राजा अज को नर्मदा-तट में वन्य गज मिला, जो गन्धर्व था। उसने राजा अज को सम्मोहन मंत्र दिया जिससे राजा अज को इन्दुमती के स्वयंवर में सहायता मिली। राजा अज अयोध्या से कुण्डनपुर जा रहे थे। दोनों स्थानों को जोड़ने वाली सीधी लाइन में, नर्मदा का हिस्सा मण्डला में पड़ता है। अतएव वन्यगज वाला प्रसंग मण्डला में ही घटा होगा या पदमी घाट के पास कहीं घटा होगा। राजा अज ने शृंगवेर पुर के पास गंगा पार किया होगा फिर पार करके नर्मदा पार किया तब विदर्भ गए। जिस प्रकार पम्पासर (वर्तमान हाम्पी, जिला विलाभारी) राम और सुग्रीव के मैत्री के कारण प्रसिद्ध है उसी प्रकार राजा अज और गन्धर्व की मैत्री का कोई स्थान प्रसिद्ध नहीं हो पाया। पहिला काम तो स्थान निर्णय का है। स्थान निर्णय करने में वही स्थान ठीक माना जायगा जहाँ नर्मदा इतनी गहरी हो कि बड़ा हाथी मजे में डूब सके। ऐसा गहरा स्थान मण्डला और रामनगर के बीच में ही है। माहिष्मती की प्रशंसा में "त्रिगुण संवलिता माहिष्मती" लिखा है। ऐसा स्थान मण्डला ही है।

मण्डला की स्थिति ही कुछ ऐसी जगह में हैं, कि मण्डला, प्राचीन सभ्यता के कुछ केन्द्रों के मार्ग में पड़ता है। और नर्मदा तट में है। अतएव दो सभ्यतामय स्थानों में आवागमन मण्डला के ऊपर से रहा होगा। और सभ्यता के पुजारियों की दृष्टि से मण्डला ओझल नहीं रह सका होगा। ऐसे दो स्थानों का लांजी और त्रिपुरी का वर्णन हो चुका है। इसके सिवाय मण्डला का स्थिति पाटलिपुत्र और अजन्ता के मार्ग में है। पुरी (पुरुषोत्तम मठ, जगन्नाथ धाम जहाँ उदयगिरि की गुफा वा कोणार्क मन्दिर है) और सांची के मार्ग में मण्डला है। वाराणसी और अमरावती के मार्ग में मण्डला है। अर्थात् मण्डला दुहरे हिसाब से मार्ग में है। उत्तर और दक्षिण के मार्ग में तथा पूर्व और पश्चिम के मार्ग में।

आधुनिक सभ्यता की दृष्टि से भी, मण्डला, दिल्ली और विशाखा-पट्टन के मार्ग में है। तथा रेलवे की दृष्टि से लोहरडागा और चिरमिरी का मिलान हो जाने पर जो कोयला क्षेत्र की लाइन बन जाती है, उसी

लाइन को अनूपपुर से मण्डला मिलाने पर अनूपपुर का कोयला क्षेत्र बरकुही पराशिया के कोयला क्षेत्र से मिल जावेगा। यदि भूगर्भ शास्त्री, मण्डला और अनूपपुर के बीच में, कोयला की खोजकर सकें तो चिरमिरी का कोयला क्षेत्र और बरकुही का कोयला क्षेत्र लगातार सिद्ध हो सकेगा।

इतिहास की सामग्री पुराने कुटुम्बों में और सरकारी रिकर्ड रूमों में भी मिल सकती है। गढ़ामण्डला राज्य के आश्रितों के कई कुटुम्ब गढ़ा के और मण्डला के आस पास फैले हुए हैं। कई कुटुम्बों में कुछ न कुछ मिल सकने की आशा है। जो भी सामग्री मिलेगी। उससे इस पुस्तक में लिखे हुए तथ्यों को या तो बल मिलेगा या विरोध मिलेगा। हर हालत में नई खोजें होंगी। ऐसी ही धुन में, मैंने सितम्बर १९६० के मध्य में, पं० गणेशदत्त पाठक के चरणों के दर्शन किये। शरीर की ऐसी स्थिति में भी, उनने मेरे अपराध पर ध्यान न देकर मुझे बहुत कुछ बताया। उनके उपदेश का सारांश इस प्रकार है :—

"यादवराव दक्षिण के कच्छवाह क्षत्रिय थे। मैंने अपनी इतिहास पुस्तक में जो भी लिखा था, अपने पास की प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकों के आधार पर लिखा था। रामनगर के शिला लेख में, राजाओं के नामों में, क्षेपक का नाम भी नहीं है। सब राजाओं का सशरीर अस्तित्व था। गढ़ेशनृप वर्णनम् में यादवराय का समय संवत् २१५ लिखा है। मूलपाठ है 'बाण एक अक्षि', इसका पाठान्तर भी है, शरइन्दु अक्षि। दोनों का अर्थ वही २१५ होता है। यादवराय के मन्त्री सर्व पाठक[१] थे। और पुरोहित मैथिल केशव झा थे। केशव झा का वंश इस प्रकार चला। केशव, हरिलाल, किशोर, रघुनन्दन, रामसेवक, रामभद्र, नारायण, विष्णुदत्त, हरिकृष्ण, रामनाथ, शिवदास, शिवचरण, महादेव, रुद्रदत्त, देवदत्त, दुर्गादत्त, देवीदत्त, शीतलादत्त, सदाशिव, शम्भूनाथ, भोलानाथ, भोजेश्वर, सदानन्द, नित्यानन्द, रूपनाथ आदि। इस प्रकार बत्तीस पीढ़ी तक ओझा वंश में पुरोहिती रही। और बाद में दौहित्र ठक्कुर वंश में पुरोहिती चली गई। ठक्कुरों के चौदह पीढ़ी वालों ने पुरोहिती की। महेश ठक्कुर के राजा बनकर मिथिला चले जाने के बाद उनके छोटे भाई

---

(१) आधुनिक पुस्तकों में गलत नाम सुरभि पाठक लिखा जाता है।

दामोदर ठक्कुर ने राजा मधुकर साहि का तिलक[1] करने से इंकार कर दिया। तब वे पुरोहिती के पद से अलग कर दिये गये। उनकी बारह हजार सलाना की माफी बन्द हो गई। वे भी मिथिला चले गये। बाद में कोई प्रेमनिधि ठक्कुर अन्तिम पुरोहित थे।

आधार सिंह कायस्थ के दीक्षा गुरु महेश ठक्कुर थे, जो दरभंगा नरेश होकर चले गये। महेश ठक्कुर के शिष्य, रघुनन्दन राय ने रानी दुर्गावती से असन्तुष्ट होकर बस्तर के राजा को प्रसन्न किया था। और वे बस्तर से पचास हाथी का हलका लाये थे। इन्हीं रघुनन्दन राय ने शतरंज की चाल मुगल बादशाह को सुझाकर बादशाह को खेल में जिताया था। और बादशाह से दरभंगा का राज्य प्राप्त किया था। इनने अपने गुरू महेश ठक्कुर को गुरु दक्षिणा में राज्य दे दिया। महेश ठक्कुर का वर्णन रानी दुर्गावती के प्रसंग में है।

इसी प्रकार बाजपेयी वंश के बारे में बताया। कि बाजपेयी लोग मौजा बिलथरा के निवासी हैं। सर्वे पाठक उनके पूर्व पुरुष थे। बाजपेय यज्ञ करने वाले तीन भाई थे। माधव, गुसाईंदास और गयाचन्द। उनमें से माधव पाठक ने बाजपेय यज्ञ किया। और गुसाईंदास की सन्तान चली। इस प्रकार गुसाईंदास से चूड़ामणि, कामदेव, रामकृष्ण, कृष्णाकर, और रघुवंश बाजपेयी हुए। रघुवंश बाजपेयी ने, निजाब साहि के बाद महिपाल सिंह (दासी पुत्र) को गद्दी मिलने पर रानी विलास कुँवरि का क्रोध प्राप्त किया। तब रानी विलास कुँवरि ने बाजपेयी वंश के कत्ले आम की आज्ञा दी।

इन दोनों वंशों का हाल मैथिल और बाजपेयी, पाठक जी ने, संस्कृत की हस्तलिखित पद्यमय पुस्तक से देखकर बताया। पुस्तक देखते-देखते, एक बहुत सुन्दर श्लोक पर नजर पड़ी। कोई कवि रानी दुर्गावती से कह रहे है। कि दुर्गावती आपके दरबार में एक कवि आये हैं। उनकी विदाई के लिये आप चिन्तित हो रहीं। कि क्या देकर कवि को विदा किया जावे। यदि आप हाथी देती हैं, तो दिग्गजों ने पृथ्वी को धारण किया है, अतः पृथ्वी पाताल में चली जावेगी। यदि आप घोड़ा (वाहन)

(१) दुर्गावती के समय के दामोदर ठक्कुर शायद ही मधुकर साहि के समय तक जीवित रहे हों। या तो वे ही रहे हों, या कोई दूसरे दामोदर रहें हों, या कोई और रहे हों।

देती हैं, तो सूर्य के रथ के सात घोड़े हैं, सूर्य का रथ चलना बन्द हो जायगा। यदि आप सोना देती हैं, तो देवों का सुमेरु पर्वत समाप्त हो जायगा। तब पृथ्वी पर देव लोग किस प्रकार रह सकेंगे। सो हे दुर्गादेवी आप चिन्तित हैं। आप विषाद को त्याग दीजिये। मूल श्लोक का पाठ इस प्रकार है।

दीयतां दिग्गजाश्चेत् सकल वसुमती याति पातालमूलम्।
वाहाश्चेत् सप्तसप्तेः त्रिजगदभिभवेत् अन्धकारस्तमोभिः॥
स्वर्णादि दीयते चेत् कथमवनितले संचरेयुः सुरेन्द्राः।
किं दत्वा प्रेषणीयं कविरीति हृदये, मुञ्च दुर्गे विषादम्॥

इस श्लोक को कहीं-कहीं पुरोहित लोग दायजा सौंपने के समय उपयोग में लाते हैं। ऐसी उक्तिओं ने अबुलफ जल का मत दृढ़ किया, कि रानी दुर्गावती हमेशा चापलूसों से घिरी रहती थी।

(७) इतिहास-ग्रन्थ—"गढ़ेशनृप-वर्णनम्"

इतिहास के विद्वानों को इस ग्रंथ की बहुत तलाश थी। रायबहादुर हीरालाल ने १९२६ के संस्कृत हस्तलिखित ग्रंथों के केटलग के पेज १११ में इसका वर्णन किया है। इस ग्रंथ को आचार्य जी० व्ही० भावे, एम० ए०, बी० टी काव्यतीर्थ ने १९४० के नागपुर यूनिवर्सिटी जर्नल नं० ६ पेज १८१ से २०१ तक में प्रकाशित किया है।

अन्य परिचय इस प्रकार है।

ग्रन्थ रचना का समय नहीं दिया। नहीं जाना जा सका। सागर मराठों की तरफ से मंडला में, सरदार गोराजी, नाम के शासक तैनात थे। उनकी मृत्यु १७९६ में हुई। उनसे ग्रन्थ लेखक, मैथिल रूपनाथ झा से किसी कर्मकाण्ड के सम्बन्ध में मुलाकात हुई थी। इस ग्रंथ में गढ़ा-मण्डला के अन्तिम शासक, सुमेदसाहि (जो १७७८ में राज्य-भ्रष्ट हुए) का वर्णन है। सुमेदसाहि का देहान्त सन् १७८९ में हुआ। अतः इस ग्रन्थ का रचना-काल सन् १७९० से सन् १७९९ तक के करीब में रहा होगा।

ग्रन्थकार का नाम "मैथिल रूपनाथ" लिखा है। इन कवि का एक और ग्रन्थ है। इससे बड़ा, इससे अधिक सरस। नाम "रामविजय-काव्य" जिसके पहिले के केवल दो सर्ग ही आचार्य भावे को देखने मिल सके। कहीं मुद्रण को भेजा था। लापता हो गया। ग्रन्थकार दरभंगा के रहने

वाले थे। घर छोड़कर सीधे पूना गये और वहाँ कुछ दिन ठहरे। तीर्थ-यात्रा में हरद्वार चले गये। वहाँ से मण्डला आ गये। मण्डला में स्थायी रूप से रहने लगे। मण्डला में मठ और घाट बनवाया जो बाबाघाट कहलाता है।

"गढ़ेशनृप-वर्णनम्" संस्कृत भाषा में इतिहास का ग्रंथ है। शैली, कविता और विचार सब रूखे हैं। कवि ने राजाओं के नाम और उनके शासन वर्ष दिए हैं। रूखे ऐतिहासिक तथ्यों में विचारों के उड़ान की या सुन्दर शैली की गुञ्जाइश नहीं हो सकती। केवल ५४ श्लोकों की पुस्तिका है जिसमें ६३ राजाओं के नाम दिये गये हैं। शासन वर्षों की संख्या सूखी गिनती में न होकर काव्य की परिपाटी के अनुसार है। ऐसी स्थिति में, कवि क्या काव्य करे, कैसे वर्षों की संख्या दे, इतने थोड़े से कलेवर में क्या-क्या लिखे ? कवि ने रामनगर के शिला-लेख से अवश्य सहायता ली है। यह कृति शिलालेख के सवा सौ वर्ष बाद की है। इसमें कोई शक नहीं कि कवि ने बहुत पुरुषार्थ से यह पुस्तिका लिखी है। एक उदाहरण है—यादवराय के राज्य आरम्भ का संवत् कवि ने २१५ लिखा है। कवि ने बाण, एक, आँखें, इन तीन शब्दों से २१५ का बोध कराया है। बाण (कामदेव के) पाँच माने गये हैं। एक स्पष्ट लिखा है। आँखें दो होती हैं। तब २१५ हुआ। संवत् में उल्टे लिखने की परम्परा है।

मैथिल रूपनाथ कवि ने अपनी कविता का चमत्कार "रामविजय-काव्य" में दिखाया है। इतिहास-ग्रंथ में कविता का चमत्कार दिखाने का क्षेत्र नहीं रहता। इतिहास लिखने का पहला प्रयत्न रामनगर के शिला-लेख में है। दूसरा प्रयत्न इस गढ़ेशनृप-वर्णनम् में है जो कि रामनगर के शिलालेख पर आधारित है। जिन दिनों गढ़ेशनृप-वर्णनम् लिखा गया उन दिनों भारत में अंग्रेजी राज्य की जड़ें जम रही थीं। मानना पड़ता है कि भारत में इतिहास-ग्रंथों का भयंकर अभाव है। पूरी पुस्तक के ५४ श्लोकों का यह अनुवाद मेरा है। यदि अशुद्धियाँ हों तो मेरा उत्तरदायित्व है। हिन्दी अनुवाद में आचार्य भावे के अंग्रेजी अनुवाद से सहायता ली है।

गढ़ेशनृप-वर्णनम् का हिन्दी में अनुवाद

श्री गणेशायनमः ! ।यादवराय खानदेश के कच्छवाह राजपूत थे। उन्होंने नागवंश में प्रतिष्ठा पाई। उनको राम, लक्ष्मण, सीता और वायु-

सूनु ने गढ़ा का राज्य दिया ॥१॥ जिनके लिए कीर छोड़ा गया था उनको जो रेवा की तरफ से आये थे पहिले के पिता राजा ने कन्या और राज्य दिया। वे गढ़ा में राजा हो गये ॥२॥ वे संवत्-बाण एक आँखें (२१५) में वैशाख शुक्ल पूर्णिमा को राज्यासन पर बैठे। उनके मंत्री सर्व पाठक थे। उनके पुरोहित भौरवासी ठक्कुर थे ॥३॥ पाँच वर्ष राज्य करके शत्रुओं से प्रजा की रक्षा करके, अनन्तकाल तक भोगों को भोग करके, पुण्य के जालों को अर्जित करके वे विष्णु लोक को प्राप्त हुए ॥४॥ उनके पश्चात् गढ़ा में माधव राजा हुए। उन महात्मा ने अपने सुखों से तैंतीस वर्ष राज्य किया। उसके बाद जगन्नाथ नाम के भूपाल हुए। जिन्होंने बाण और आँखों के (२५) वर्ष तक राज्य किया ॥५॥ तब रघुनाथ ने युगशैलक (७२) वर्षों तक राज्य किया। उसके बाद रुद्रमुखदेव नामक ने वसुनेत्र (२८) वर्ष तक जगती के तल में राज्य किया। वे जन-मनोहर थे ॥६॥ बिहारीसिंह ने इकतीस वर्ष राज्य किया। उनके बाद अमरसिंह देव ने तैंतीस वर्ष राज्य किया ॥७॥ महामति सूर्यभान ने उन्तीस वर्ष राज्य किया। उसके बाद महीपति वासुदेव ने अठारह वर्ष राज्य किया ॥८॥ गोपालसाहि राजा बयालीस वर्ष वाले (हुए)। भूपालसाहि ने साठ वर्ष और गोपीनाथ ने मुनि त्रि (३७) वर्ष ॥९॥ उसके पश्चात् महीपति रामचन्द्र ने तेरह वर्ष और पृथ्वी पर सुतनिसिंह उन्तीस वर्ष राजा रहे ॥१०॥

जगत् में हरिहर देव सत्रह वर्ष राजा रहे। उसके पश्चात् कृष्णदेव वेदशर (५४) वर्षों तक राजा रहे ॥११॥ जगतसिंह ने रंध्र (९) वर्षों तक। महासिंह ने त्रिनेत्र (२३) वर्ष भोग किया। दुर्जनमल्ल नव एक (१९) वर्ष और यशः कर्णनेषट्त्रि (३६) वर्ष भोग किया ॥१२॥ प्रतापादित्य चौबीस वर्ष राजा रहे। यशःचन्द्र चौदह वर्ष राजा रहे ॥१३॥ सिंहमनोहर भूमितल में नववेद (४९) वर्ष राजा रहे। गोविन्दसिंह शरत्रि (३५) वर्ष तक नरपाल थे ॥१४॥ उनके बाद नृप रामचन्द्र नामक शशिनेत्र (२१) वर्ष भोक्ता रहे। उनके बाद कर्ण के समान कर्ण-रसचन्द्र (१६) वर्ष भोक्ता रहे ॥१५॥ रत्नसेन नाम के राजा एकत्रि (३१) वर्ष भोक्ता रहे और उनके पश्चात् भूमिप कमलनयन चालीस वर्ष भोक्ता रहे ॥१६॥ नरहरदेव रस-नेत्र (२६) वर्ष भूपाल (होकर) भोक्ता हुए। सात वर्ष तक वीरसिंह मही-पाल रहे ॥१७॥ उनके बाद त्रिभुवनराय वसुत्रि (३८) वर्ष भोगकारी रहे। उनके बाद बहुत कीर्ति वाले पृथ्वीराज एकाक्षि (२१) वर्ष भोक्ता रहे ॥१८॥ पृथ्वी में भारतिचन्द्र ने नेत्रगुण (३२) वर्षों तक भू का पालन किया।

उनसे मदनसिंह बीस वर्ष तक भोक्ता रहे ॥१६॥ उनके बाद उग्रसेन नामक राजा थे जिन्होंने छत्तीस वर्ष राज्य किया। इसके पश्चात् रामसाहि राजा आकाशतीन (३०) वर्ष भोक्ता रहे ॥२०॥ ताराचन्द्र महीपाल देवत्रि (३३) वर्ष भोक्ता थे और फिर उदयसिंह, शरशशधर (१५) वर्ष भोक्ता थे ॥२१॥ इसके पश्चात् भानुमित्र जो रसविधु (१६) वर्ष भोक्ता थे। उनके बाद भवानीदास नेत्र शशांक (१२) वर्ष राजा थे ॥२२॥ शिवसिंह नाम के राजा रसनेत्र (२६) वर्ष भोक्ता थे। हरिनारायण राजा कोष में धनवान छः वर्ष तक राजा थे ॥२३॥ और सबलसिंह जो नवगुण (३९) वर्ष भोक्ता थे। राजसिंह नामक द्विजराज वेद (४१) वर्ष तक राजा थे ॥२४॥ दादीराय राजा सैंतीस वर्षों को समाप्त करने वाले थे। राजा गोरक्षदास रसवेद (४६) वर्षों तक राज्य-भोक्ता थे ॥२५॥ राजा अर्जुनसिंह युद्धक्षेत्र में अर्जुन सरीखे शूर थे। वे बत्तीस वर्ष भोक्ता थे (राजा थे)। उन्होंने अपने प्रताप से अपने शत्रुओं को तपाया ॥२६॥

उनके संग्रामसाहि नामक पुत्र हुए। जिन्होंने संग्रामों में राजचिन्ह सम्पादित किया। उनको भैरव से वर प्राप्त था। वे राजा आकाशवाण (५०) वर्षों तक परिभोग भोक्ता थे ॥२७॥ जिन राजा (संग्रामसाहि) ने राजाओं की भूमि को जीता। उन भूमि पर पहाड़ों की तरह ऊँची चहारदीवारी वाले और जलपूर्ण खाइयों वाले बावन मुख्य दुर्गों का निर्माण किया ॥२८॥ उनके बाद दलपतिसाहि राजा और भूमि भोक्ता हुए। उन अरिजेता ने वसुशशधर (१८) वर्ष राज्य किया। वे विविध विभवों से युक्त थे। यज्ञ कर्ता थे, दानी थे, कुलकभव दिनेश थे। वे अपनी कीर्ति में चन्द्रमा से बढ़कर थे ॥२९॥ वे सैन्यसमेत स्वयंवर में गये जहाँ अच्छे-अच्छे राजा आये थे। उन्होंने राजा के समूहों को अच्छी तरह जीता। उनने कामवती दुर्गावती का हरण किया ॥३०॥ उनके पुत्र श्री वीरनारायण नामक, तीन वर्ष मात्र के राजा ने, बाणचन्द्र (१५) वर्ष राज्य किया। अपनी माता के और सुबुद्धि मन्त्रीवरों के साथ, अतिशय अच्छी तरह राज्य किया ॥३१॥

उनके चाचा राजा चन्द्रसाहि बलवान ने, त्रिनेत्र (२३) वर्ष राज्य किया। वे कीर्त्ति में शशांक चन्द्रमा के समान थे! वे प्रताप में इस प्रकार थे, जैसे पृथ्वी में सूर्य ॥ ३२ ॥ इसके बाद मधुकरसाहि ने गढ़ा में राज्य प्राप्त किया। पाप के कारण उनकी देह मलिन थी। उन्होंने अट्ठाइस वर्ष राज्य व्यतीत किया। उन्होंने अपने शरीर को, सूखे पीपल के वृक्ष की

खोखट में, आग लगवा कर जला दिया। इस आशा से कि स्वर्ग में सुख मिलेगा ॥ ३३ ॥ उसके बाद, नृपति प्रेमसाहि हुए। वे वैष्णव थे। विविध धर्मों के विधाता थे। पृथ्वी में जहाँ उनका राज्य था, वहाँ प्रजा को आधि व्याधि कुछ भी नहीं थी ॥ ३४ ॥ वे चौरा गढ़ में जाकर अपने विक्रम से सदैव पृथ्वी का पालन करते रहे। उन्होंने यज्ञों से अपनी इच्छानुसार इन्द्र सहित देवताओं को सन्तोष दिया। उन्होंने सर्वदा आदरयुक्त दानों से, ब्राह्मणों के समूहों का सन्मान किया। उन्होंने अपनी इच्छानुसार रन्ध्र एक (१६) वर्ष राज्य किया ॥ ३५ ॥

उनके पुत्र हृदयेश महीश ने, उस नगर में स्थिति प्राप्त की जहाँ पहिले राम शब्द है (राम नगर) जिनकी सभा इन्द्र सभा ही थी। वे उस सभा के पण्डितों में, इन्द्र सभा के मध्य में, परिमण्डित थे ॥ ३६ ॥ चना के एक खण्ड में बहुत होशियार कारीगर द्वारा बावन हाथियों को लिखा हुआ देखकर जनता का समूह उनको श्रीहरि के समान मानता था। वे राजा नाना शास्त्र जानने वाले थे। कलाओं में कुशल थे। स्त्री संघ के मध्य में स्थित होकर क्रीड़ा करते थे। कमनीय मूर्त्ति थे। सदैव काम की प्रभा के समान थे और कामुक थे ॥ ३७ ॥ पृथ्वी को नयन और तीन (३२) वर्षों तक पालन करके, बहुत से यज्ञों को करके वे दयालु राजा सुरलोक के भोगों को अधिक विचार, सुरधाम के काम के वश में होकर चले गये ॥ ३८ ॥ उनके सुत छत्रसाहि धरणी पति थे। वे विविध यज्ञों के विधाता थे। पृथ्वी को सात वर्ष तक परिरक्षा करके वे बहुत बड़े सुरधाम को चले गये ॥ ३९ ॥ उनके अन्त के बाद उनके सूनु ,केसरीसाहि (राजा) हुए। वे प्रकृति से सुचारु थे और महान् थे। तीन वर्ष तक पृथ्वी का पालन करके उन्होंने स्वर्ग सौख्य की इच्छा की। वे इन्द्र के समान थे और कला में धनी थे ॥ ४० ॥

उनके अन्त के बाद नरेन्द्रसाहि राजा हुए। जो इन्द्र के समान थे। जिनके बालकपन के कारण राज्य चला गया था। उन्होंने वेर-वेर अपने वश में किया ॥ ४१ ॥ उनका तेज सूर्य के समान था। उन्होंने बाणाद्रि (२५) वर्षों तक पृथ्वी का पालन किया। दो पुत्रों को जन्म दिया। बहुत से यज्ञों का विधान किया। विविध भोगों का भोग किया और सुरों के घर में चले गये ॥ ४२ ॥ उनके मरने के बाद महाराज साहि नृपाल हुए। उनकी इच्छा सदैव युद्ध करने की रहती थी। वे अति क्रोधी थे। प्रजा पालन में सदा दत्तचित्त थे और धनुष के धारण में वे अर्जुन

के ही समान थे ।। ४३ ।। उस युवा (राजा) ने आदर पूर्वक मही का शासन द्विचन्द्र (१२) वर्ष किया । वे शत्रु के हनन कर्त्ता थे । वे रण में राम के धाम को चले गये ।। ४४ ।। इसके पश्चात् शिवराज साहि नरपति थे । जिन्होंने अपने प्रजाजन के रक्षण में कीर्त्ति लाभ की । जिनके संरक्षण के कारण यह धरणी तल धनधान्य से पूर्ण होकर स्वधन्य हो गया ।। ४५ ।। पृथ्वी का धर्मपूर्वक पालन करके धन, सुवर्ण पृथ्वी और गौओं का दान करके पाप हरण करने वाले हरि का नाम जपते हुए वे हरि लोक को गये । उन्होंने गिरि (७) वर्षों तक राज्य किया ।। ४६ ।। उसके बाद दुर्जन साहि नाम के राजा हुए । जिन्होंने रात दिन लोगों को तपाया । छः माह का यथेष्ट भोग करते हुए, वे शशि शेखर के लोक को चले गये ।। ४७ ।।

उनके चाचा निजाम साहि भूपति हुए । वे समस्त कार्यों में होशियार थे । प्रजा के प्रिय और प्रतापवान् थे ।। ४८ ।। उन्होंने "साहि" के चिन्हों को सफलता पूर्वक धारण किया । उनके आशय महान् थे । वे साहसिक थे । अप्रमादी थे । शिकारी थे । यंत्रों के प्रयोग में दक्ष थे । तलवार के युद्ध में नकुल के समान थे ।। ४९ ।। उनके अनन्त मार्ग में प्रयाण के समय हाथी और घोड़ों के समूह से धूल उठी । उस धूल ने सूर्य के किरणों के जाल को अन्तर्धान कर दिया । वे राजा प्रभाव और मन्त्रणा के अध्यवसाय की शक्ति वाले थे ।।५०।। बाजपेयी कुल के दक्ष मंत्रियों से सलाह लेते हुए और होशियार ठक्कुर की सलाह लेते हुए समय को जानने वाले राजा ने सब कामों को पूरा किया और साढ़े छब्बीस वर्ष राज्य किया ।।५१।।

उनके बाद नरहरि साहि राजा हुए । उन्होंने पाँच वर्ष राज्य किया । वे सदैव खराब मन्त्रियों से सेवित थे । वे जल्दी राज्य भ्रष्ट हो गये ।।५२।। सुमेदसाहि राजा हुए । वे क्षिति मण्डल का तीन वर्ष तक भोग करके पूरी तौर से भ्रष्ट हो गए । वे समुद्र में चले गए फिर हरि मन्दिर में चले गए ।।५३।। इतने ही गढ़ा के राजा हैं । उनके पद्यों को बुद्धि से विचार करके श्रीमान् रूपनाथ ने रचा ।।५४।। इति श्री मैथिल रूपनाथ कृत, गढ़ेश नृप-वर्णनम् सम्पूर्ण हुआ । शुभमस्तु ।।

इतिहास लिखने का प्रथम प्रयत्न गोंड़ों के राज्य समय में रामनगर के शिलालेख में है । यह पुस्तक दूसरा प्रयत्न है । जब कि गोंड़ों का राज्य समाप्त हो चुका था ।

———

तीसरा अध्याय

गढ़ा मण्डला का राजवंश

(१) संग्रामसाहि से पहिले

यादवराव (नं० १) से अर्जुनसिंह (नं० ४७) तक सैंतालीस राजाओं ने ११२२ वर्षों तक संवत् ४१५ से संवत् १५३७ तक राज्य किया। वंश परम्परा की सूची बहुत लम्बी हुई तथा समय भी बहुत लगा। इतने राजाओं के बारे में कुछ विशेष बात नहीं ज्ञात है। सिवाय इसके कि इतनी लम्बी सूची का कोई-कोई विद्वान् ने विश्वास नहीं किया है। उनका मत ऐसा है कि इतने अधिक राजाओं का सशरीर अस्तित्व नहीं था, केवल प्राचीनता लाने के लिये बहुत से नाम लिख दिये गये हैं। शंका करने वाला मत ठीक नहीं। सब का सशरीर अस्तित्व था।

बात इतनी पुरानी हो गई है कि कोई प्रमाण नहीं प्राप्त है। हम लोगों की विचारधारा भी ऐसी हो गई है कि तीन-चार सौ वर्ष की प्राचीनता को प्राचीनता की हद मान लेते हैं। इन राजाओं के विषय में ऐतिहासिक प्रमाण इतने कम हैं कि नहीं के बराबर। अनुमान अधिक हैं। दन्तकथाएँ और अधिक हैं। सब के मिश्रण से निष्कर्ष कुछ भी नहीं निकलता। दन्तकथाओं से कुछ भी नहीं सिद्ध होता। दन्तकथा का अस्तित्व ही सिद्ध होता है। दन्तकथाओं का तिरस्कार नहीं किया जा सकता, सम्भव है कि कोई ऐतिहासिक कड़ी मिल जावे।

मण्डला में कलचुरियों का राज्य था। नागवंशियों के राज्य का पता धानू पण्डा की कथा से मिलता है। लाँजी में कलचुरियों का राज्य था, उसके बाद गोंड़ों का राज्य हुआ। कलचुरि लाँजी से रतनपुर चले गये। लाँजी वाले गोंड़ राजाओं के अधिकार में, मण्डला, मारूगढ़ और गढ़ा भी आ गया। अर्थात् गोंड़ राज्य का विस्तार, जिस क्षेत्र में हुआ, उस क्षेत्र में कलचुरि चन्देल, और नागवंशी तीनों का कहीं किसी का और कहीं किसी का राज्य था। गोंड़ राज्य ने कोई संगठन नहीं प्राप्त किया था। बहुत से छोटे-छोटे राजा लोग थे। जैसे, बरंगा, देवहार गढ़, देवरगढ़, हर्राभाट, पाठा, सगरदहा अन्य और बहुत से गढ़ आदि। अर्थात् गोंड़ जाति का खूब विस्तार था। उनके छोटे-छोटे राज्य कायम हो चुके थे। ऐसे समय में यादवराय ने सर्वेपाठक की सहायता से गढ़ा में एक छोटे राज्य की नींव डाली। यादवराय ने न कोइ बगावत की थी न कोई पुरुषार्थ किया था। भाग्य से राज्य मिला और कन्या भी। चाहे नागदेव राजा से मिला हो चाहे कलचुरि राजा से। सो राज्य स्थापित

हो गया। राजा बनने के पहिले यादवराय लाँजी वाले गोंड़ राजा की नौकरी में गढ़ा में तैनात थे। अर्थात् इस समय तक लाँजी के गोंड़ राज्य का विस्तार गढ़ा तक था। लाँजी से गढ़ा तक सीधी लाईन खींचने पर उसी लाईन में मारूगढ़ और मण्डला पड़ते हैं। अतएव लाँजी राज्य में मण्डला, मारूगढ़ तथा गढ़ा भी था।

यादवराय की तिथि के सम्बन्ध में विवाद होना स्वाभाविक है। विवाद नहीं मतभेद कहना चाहिये। 'गढ़ेश नृप वर्णनम्' के तीसरे पद्य में लिखा है कि वे वैशाख शुक्ल पूर्णिमा संवत् २१५ के दिन गद्दी में बैठे। एच्-एच् विल्सन सन् ६२७ मानते हैं। डाक्टर हाल ने अपने लेख (जिसका हवाला शिलालेख के अध्याय में है) की भूमिका में एक ताम्रा-पत्र का वर्णन करते हैं जो निजाम शाह (नं० ६१) के शासन काल में मिला था, उस ताम्रपत्र से यादवराय का समय, संवत् २०१ (सन् १४४) निर्धारित होता है। इतने पुराने तथ्य का समय निश्चित करना, बहुत कठिन और निरुपयोगी प्रतीत होता है।

गढ़ा का राज्य बहुत छोटा था। छोटे रूप में ही अर्ज्जुनसिंह (नं० ४७) तक टिमटिमाता रहा। इतना छोटा रूप कि मारूगढ़, जो गढ़ा से केवल ३५ मील है, की विजय का वर्णन किया गया है। राजवंश की प्राचीनता कम करने के, या राम नगर के शिलालेख को असत्य बनाने के इरादे से मण्डला गजटियर में यादवराय का समय सन् ११८१ माना गया है, जब हैहय कमजोर हो चुके थे।

एक बात और ध्यान देने योग्य है। गढ़ा और त्रिपुरी के बीच में केवल चार-पाँच मील की दूरी है। इतनी थोड़ी दूरी के दो स्थानों में दो साम्राज्यों ने अलग-अलग उन्नति की। दोनों साम्राज्य होकर रहे। त्रिपुरी के कलचुरि साम्राज्य का विस्तार पहिले हुआ। गढ़ा के साम्राज्य का विस्तार बाद में हुआ। आश्चर्य है कि चार-पाँच मील की दूरी में दो साम्राज्यों का उत्थान हुआ। न जाने किस आशीर्वाद की भूमि है या नर्मदा माता की कोई विशेष कृपा है।

यादवराय से अर्ज्जुनसिंह तक, सैंतालीस राजाओं में से जिनके बारे में कुछ उल्लेखनीय हैं, उनका वर्णन इस प्रकार है।

गोपालसाहि (नं० १०) ने मारूगढ़ में विजय की। मारूगढ़ की घाटी में एक ब्राह्मण को चोरों ने लूट लिया था। गोपालसाहि ने उसे धन देकर विदा किया। मारुगढ़ अपने अधिकार में

किया। वहाँ थाना किया। और गोपालपूर नामक गाँव बसाया।

भूपालसाहि (नं० ११ के नाम से भोपाल का नामकरण किया गया जो आजकल मध्यप्रदेश की राजधानी है।

कर्ण (नं० २६) ने कर्णवेस (तेवर के पास) बसाया। महाभारत के दानी कर्ण अन्य थे। कलचुरि वंश के कर्णदेव अन्य थे। एक अंग्रेज लेखक ने तीनों कर्णों में गड़बड़ी कर दी है। जबलपुर के पास कर्ण का शिलालेख सम्वत् ६४३ (ईस्वी सन् ८८६) का है।

पृथ्वीराज (नं० ३२) का राजस्थान कटंगा किला था। जो ग्वारी घाट के रास्ते में सड़क के पूर्व में था।

मदन सिंह (नं० ३४) ने मदन महल बनवाया। बरगी परगना में मदनपूर कटरा बसाया। मन्दिर बनवाया। राज्य-विस्तार किया, परताप गढ़, अमर गढ़, रान गढ़, पाटन देवहार गढ़ तक अपने नाम का पुरवा बसाया। मदन महल पहाड़ी के ऊपर एक विशाल गोल पत्थर पर बना है। बुनियाद की जरूरत नहीं।

दादीराय (नं० ४६) दादी शब्द आदर सूचक है। पुरुषों के लिये व्यवहृत होता है। दादी शब्द को स्त्रीलिंग नहीं समझना है।

गोरक्षदास (नं० ४६) ने गोरखपूर बसाया। दूसरा गोरखपुर बरगी में बसाया। एक और गोरखपूर डिंडौरी अमरकण्टक रोड में है।

रामनगर शिलालेख से अस्सी वर्ष पहिले इनके बारे में अबुल फजल ने लिखा है कि :—"संगनिदास उर्फ सुखमदास ने, अपने पौत्र संग्रामशाह के पराक्रम के लिये क्षेत्र तयार किया। पाँच सौ सवार और साठ हजार पैदल भरती किये। उसके दो मुख्य सहायक थे। एक हमीरपुर का करचुलि (?) और दूसरा परिहार क्षत्रिय। संगनिदास उर्फ सुखमदास के बाद पुत्र अर्जुनदास ने चालीस वर्ष की अवस्था में गद्दी प्राप्त की।"

यहाँ पर कई इतिहासकारों को भ्रम हो गया है। कि अर्जुन सिंह के पिता का नाम गोरक्षदास (शिलालेख के अनुसार) था या कि संगनिदास उर्फ सुखमदास (अबुलफजल के अनुसार) था। सो इलियट

ने अपने इतिहास की छठीं पोथी के इकतीसवें पेज में, इस भ्रम का निराकरण कर दिया है कि एक ही व्यक्ति के कई नाम थे। गोरखदास संगनिदास, सुखम। इतना सब इसलिए खुलासा करना पड़ा कि सुकुम-दास के नाम से सुकुमगढ़ का वर्णन परिशिष्ट में है। एक ही व्यक्ति की कीर्ति अलग-अलग नामों से है। कहीं गोरखपुर कहीं सुकुमगढ़।

यादवराय से अर्जुन सिंह तक के सैंतालीस राजाओं का वर्णन, केवल नामावलि रामनगर के शिलालेख में भी है। बारह अनुष्टुप् में सैंतालीस नाम गिना डाला है।

(२) महाराजा संग्रामसाहि (नं० ४८)

१५००-१५४१

भूमिका—अभी तक, गढ़ा मण्डला के गोंड़ राजाओं के सैंतालीस नामों का वर्णन हो चुका है। जिन्होंने ११२२ वर्षों तक राज्य किया। इनका महत्व केवल नामावलि तथा थोड़ी-थोड़ी प्रसिद्धि तक सीमित था। राज्य का विस्तार बहुत थोड़ा था। केवल राजा का पद कायम रहा। अब इस राजवंश की उन्नति का युग आरम्भ हो रहा है। गोंड़ राजाओं में *सबसे अधिक प्रतापी, महाराजा संग्रामसाहि थे।* उनके अनेक ऐतिहासिक प्रमाण मिलते हैं। जिनसे उनकी तिथि निश्चित होती है। उन तिथियों पर से उनके पूर्वजों की तिथियों का अनुमान होता है। उनके बावन गढ़ों का विवरण प्राप्य है। अतएव वे सर्वाधिक प्रतापी सिद्ध होते हैं।

रामनगर शिलालेख के पद्य नं० १३ और १४ में महाराज संग्राम-साहि की प्रशंसा में लिखा है कि इनके प्रताप के सामने दोपहर का सूर्य भी निस्तेज हो गया।

अपने पितामह गोरक्षदास (नं० ४६) की दूरदर्शिता के कारण महा-राजा संग्रामसाहि के पास बहुत सेना थी। बाजनागठ के पास कोई ऊँचे दर्जे का सिद्ध, अघोरी (कापालिक) आया। वह चाहता था कि राजा को मार कर वह अघोरी राजा हो जावे। वह अघोरी ही महाराजा संग्राम साहि द्वारा मारा गया तो महाराजा संग्रामसाहि के पास उस अघोरी की सिद्धि आ गई और भैरव का इष्ट और पक्का हो गया। वह स्थान कायम है, जहाँ अघोरी की हत्या हुई थी बावन गढ़ों की विजय करने वाले के लिये संग्रामपुर, संग्रामसागर और मदन महल की मरम्मत का वर्णन करना कुछ महत्व नहीं रखता।

शुद्ध पाठ महाराजा "संग्रामसाहि" ही है। ऐसा ही शिलालेख में है। ऐसा ही "सेरसाहि" और "श्री इसलामसाहि" के सिक्कों में नागरी अक्षरों में मिलता है। शुद्ध पाठ का फारसी रूप संग्राम शाह है। इनके पहिले के राजाओं के नामों में देव, मल, सिंह, दास आदि उपाधियाँ थीं। शाह की उपाधि बहुत पहिले गोपालसाहि (नं० १०) और भूपालसाहि (नं० ११) में थीं। ये स्वतंत्र थे। दूसरों को शाह की उपाधि दे सकते थे। इन्होंने "*शाह*" *की उपाधि* अपने पराक्रम से इस प्रकार प्राप्त की थी—महाराजा संग्रामसाहि युवराज की स्थिति में रीवां नरेश वीरसिंह बघेल के मित्र थे। दोनों मित्र बहुत शान शौकत से रहते थे। दिल्ली में इब्राहीम लोदी राजा था। इब्राहीम लोदी अफगान था। मुगल बाबर १५२६ में आया। इब्राहीम लोदी भी महाराजा संग्रामसाहि का मित्र था इब्राहीम लोदी के विरुद्ध जलालुद्दीन लोदी ने बगावत की। बगावत असफल हुई। जलालुद्दीन लोदी भटकते हुए मालवा गया मदद नहीं मिली। गढ़ा आया। यहाँ भी मदद नहीं मिली। मित्रता के नाते महाराजा संग्रामसाहि ने जलालुद्दीन को गिरफ्तार कर के इब्राहीम लोदी के पास भेज दिया। इब्राहीम लोदी अति प्रसन्न हो गया। उसके राज्य का काँटा निकल गया। वह महाराजा संग्रामसाहि के एहसान से दब गया। उसने बराबरी की शाह उपाधि दी। शुद्ध आर्य नाम में शाह की मुसलिम उपाधि जुड़ गई। इस एहसान को समूची अफगान जाति ने याद रखा। बाद को, अफगानों और मुगलों में द्रोह हो गया जब बाबर ने इब्राहीम लोदी से दिल्ली का सिंहासन लिया। अफगानों ने महाराजा संग्रामसाहि की सेना में नौकरी की। अफगानों का पराक्रम, गोड़ों की तरफ से और मुगलों के विरुद्ध रानी दुर्गावती के युद्ध में दिखता है।

पंडित गणेश दत्त पाठक ने लिखा है कि *माण्डवगढ़* के मुसलमान बादशाह ने गढ़ा पर इनके समय में हमला किया। मुझे यह बात नहीं जँचती। माण्डवगढ़ के बादशाह ने रानी दुर्गावती के शासन काल में हमले किये थे। उन हमलों का वर्णन दुर्गावती के वर्णन में मैंने दिया है। महाराजा संग्रामसाहि के प्रताप के कारण माण्डु के बादशाह की हिम्मत हमला करने की नहीं पड़ सकती थी। उसने दुर्गावती की वैधव्य स्थिति में हमले किये थे। पाठक जी इसी बाजबहादुर के कारण "शाह" की उपाधि मानते हैं।

महाराजा संग्रामसाहि के देहान्त के करीब ५० वर्ष बाद अबुल फजल ने अकबर के दरबार में प्रवेश पाया। अबुलफजल ने गोंड़ राजाओं का और रानी दुर्गावती आदि का बहुत कुछ हाल लिखा है। उसी की लिखी सामग्री का कई इतिहासकारों ने प्रयोग किया है। अबुलफजल ऐसी स्थिति में पड़ गया था कि उसे आवश्यक था कि वह अकबर की प्रशंसा करे अर्थात् महाराजा संग्रामसाहि को और रानी दुर्गावती को खराब कहे। तभी अकबर को उसके कुकृत्य का औचित्य प्राप्त हो सकता है। इसलिये अबुलफजल ने लिखा है कि संग्राम शाह कुकर्मी था। पिता का द्रोह करने वाला और पिता की हत्या करने वाला था। उसके लेख को ऐतिहासिक तथ्य मानने के लिये आत्मा गवाही नहीं देती।

ऐतिहासिक सामग्री

पुतरी—सोने का यह सिक्का कलकत्ता के अजायबघर में अच्छी हालत में सुरक्षित है। संवत् १५७० (सन् १५१३) लिखा है। राज चिन्ह बना है। नागरी और तेलुगु अक्षरों में श्री संग्रामसाहि लिखा है। इसी प्रकार के, चांदी के तीन सिक्के, रायबहादुर हीरालाल को, तामिया में मिले थे। देखिये Annual Report of the archeological survey of India for 1939-1914, pp. 253-255.

सती लेख—रायबहादुर हीरालाल को मई १६१७ में दमोह से पन्द्रह मील आग्नेय बहेरिया के पास वीरान गांव ठरका में एक शिलालेख मिला था। शिलालेख एक सतीलेख का हिस्सा है। इसमें भी वही संवत् १५७० (सन् १५१३) लिखा है। इस सतीलेख में महाराज श्री अमान दास देव लिखा है और भी कई सतीलेख तथा शिलालेख महाराजा संग्राम साहि के संबंध के हैं।

भवन—प्रसिद्ध है कि एक अघोरी (कापालिक) महाराज संग्रामसाहि का वध करना चाहता था। पर महाराज ने उस अघोरी को मार डाला। वह स्थान गढ़ा के पास मदन महल के पास सुरक्षित है जहाँ महाराजा ने अघोरी की हत्या की थी। इसने गढ़सिंगौर (सिंहगढ़) के पुराने जिले के पास संग्रामपुर बसाया।

राजचिह्न—एक सिंह के मस्तक में दो सींग। आगे का एक पैर उठा हुआ। नीचे छोटी आकृति का हाथी दबोचा हुआ। यह गोंड़ राजाओं का राजचिन्ह है। इस राजचिन्ह में दो बातें प्रकृति के विरुद्ध हैं।

एक तो यह कि सिंह के माथे में सींग नहीं होते। दूसरी यह कि हाथी का शरीर अनुपात से छोटा बनाया गया है। यही राजचिन्ह, कलकत्ता अजायबघर की पुतरी में है। अन्यत्र भी उपलब्ध है। जबलपुर की कोतवाली में बाहर ही दो राजचिह्न रखे हैं। जो विजयराघोगढ़ के किले से आये हैं। उनमें शेर के सींग नहीं हैं। सेठ जी के महल के सामने दो राजचिह्न रखे हैं। जबलपुर की हरदौल लाला की मढ़िया में एक राजचिन्ह है। एक पाठा गांव में है। एक मण्डला के व्यास नारायण मन्दिर के दरवाजे में है। दो मन्दिरों में ऊपर दो अलग-अलग राजचिह्न अमर कंटक के मन्दिरों में हैं। उनसे अनुमान होता है कि—यह राजचिह्न कलचुरि राजाओं से लिया गया है। अतः गोंड़ राजाओं की मौलिक कल्पना नहीं है। अमर कंटक के दोनों मन्दिर कलचुरि काल के हैं। दोनों वैष्णव मन्दिर हैं। कलचुरि काल से बहुत पहिले भी जैन काल में सिंह के सींगों की कल्पना थी। बूढ़ी भाई मण्डला से प्राप्त तीर्थङ्कर महावीर की मूर्ति के सिंहों के सिरों में सींगें हैं। इसमें कोई शक नहीं कि सिंह में सींगों की कल्पना बहुत उद्भट कल्पना है। अंग्रेज साम्राज्य के पगाल्हम की कल्पना कि घोड़ा के सिर पर एक सींग इसके सामने फीकी पड़ जाती है। एक कथा के अनुसार गोंड़ों का राजचिह्न मयूर पंख है।

दीवान—पं० गणेशदत्त पाठक ने इनके दीवान का नाम भोजसिंह कायस्थ लिखा है। अबुलफजल ने भी चौरागढ़ के जौहर को सफल बनाने वाले एक अधिकारी का नाम भोज कैथा लिखा है। एक ही व्यक्ति के नाम दो प्रकार के मिलते हैं। चौरागढ़ के जौहर के समय, वे अतिवृद्ध हो गये रहे होंगे। उन्होंने उन्नति भी देखी और सर्वनाश भी देखा। संभव है उनका आधार सिंह से कोई सम्बन्ध रहा हो।

राज्य-विस्तार

महाराजा संग्रामसाहि ने राज्य-विस्तार किया। छोटे-छोटे दुर्बल राजाओं की परिस्थिति और गरीबी का लाभ उठाकर उन्हें हरा दिया और करद बना दिया। इसी को प्रताप, गौरव, साम्राज्य वृद्धि सब कुछ कहते थे। जीतने वाला सम्राट छोटे हारे राजा के आन्तरिक शासन में हस्त-क्षेप नहीं करता था। इनके बाद ही साम्राज्यवाद का तूफान शान्त पड़ गया। पुत्र दलपति शाह ने सुव्यवस्था कायम की। इसी नीति को

नकल करके अकबर ने अपनाया। अकबर को बहुत सफलता मिली। उसके पास तोपें थीं, साम्राज्य लिप्सा थी और साम्प्रदायिक द्वेष था। इसी सफलता के कारण अंग्रेज विद्वानों ने उसे "अकबर दि ग्रेट" कहा। अकबर का जन्म १५४२ में हुआ। अर्थात् महाराजा संग्रामसाहि की मृत्यु के एक वर्ष बाद। महाराजा संग्रामसाहि के सम्बन्ध में जो भी प्रमाण आज प्राप्य हैं उनके लिये इतिहासकार को अबुलफजल का उपकार मानना चाहिये। रायबहादुर हीरालाल का उपकार सती लेख के लिये और अंग्रेजों का उपकार पुतरी के लिये मानना चाहिये। महाराजा संग्रामसाहि ऐसा नाम है, जिसको प्रमाण मान कर उनके पहिले के राजाओं के समय निर्धारण करने में सहायता मिलती है। उनके बाद के राजाओं के समय का पता मुगल इतिहासकारों से चलता रहता है। महाराजा संग्रामसाहि का शासन काल बहुत ठोस बुनियाद है। अबुल-फजल ने महाराजा संग्रामसाहि के राज्य-विस्तार बताने वाले बावन गढ़ों की सूची दी है। उस पर से स्लीमैन ने १८३७ में अपनी सूची प्रकाशित की। उस सूची में चौरागढ़, रामनगर और मण्डला के नाम नहीं हैं। चौरागढ़ का किला महाराजा संग्रामसाहि ने बनवाया था। रामनगर और मण्डला बाद में राजधानी बने। गढ़ का अर्थ किला और किले के आस-पास के अञ्चल का माना जाता है।

बहुत मोटे हिसाब से महाराजा संग्रामसाहि का राज्य-विस्तार ३००×२२५=६७५०० वर्ग मील के क्षेत्रफल में था। रानी दुर्गावती की पराजय के बाद इस साम्राज्य का अङ्गविच्छेद हुआ। चंद्र शाह (नं० ५१) ने अकबर को लगभग १५३६० वर्ग मील का उपजाऊ हिस्सा दिया अर्थात् क्षेत्रफल में चौथाया पर आमदनी में लगभग आधा। चंद्र शाह के पास जो हिस्सा लगभग ५२१४० वर्ग मील बचा वह वास्तव में उतना नहीं बचा। पौना क्षेत्रफल देखने भर ही को था। उसी में से बहुत से राजा लोग स्वतन्त्र हो गये। प्रजा में अराजकता से और मातहत राजाओं के स्वतन्त्र हो जाने से आमदनी आधी से भी कम हो गई रही होगी। तिस पर सालाना मुगल दरबार में टाकोली दाखिल करने की जिम्मेदारी थी।

यहाँ यह बात ध्यान देने की है कि यद्यपि चाँदा, बस्तर, छत्तीसगढ़, बैतूल आदि क्षेत्रों में गोंड़ जाति के ही छोटे-बड़े राजा थे तथापि उन क्षेत्रों में गढ़ामण्डला के राजाओं का राज्य-विस्तार नहीं रहा।

महाराजा संग्रामसाहि की प्रचण्ड विजयों का कारण सेना का बल तो था ही, दैवी कारण भी था। उनको भैरव का इष्ट था। बाजना मठ, संग्राम सागर का आमखास आदि स्थान उनकी तांत्रिक साधना की साक्षी हैं। भैरव के इष्ट अर्थात् वाम मार्ग के प्रति आकर्षण। भैरव का इष्ट दक्षिण मार्गी भी होता है। महाराजा संग्रामसाहि के बाद दलपति साहि को और रानी दुर्गावती को सचमुच बहुत कठिनता का सामना करना पड़ा होगा। कि अपने मुसाहिबों से वाम मार्ग छुड़वा कर राज दरबार के हर मुसाहिब को शुद्ध दक्षिण मार्गी बनाने में।

बावन गढ़ों की सूची

स्लीमैन की सूची को, मैंने शब्दकोष व्यवस्था के अनुसार अकारादि क्रम से लिखा है। पहिले कालम में मिलान की सुविधा के लिये, मैंने स्लीमैन की क्रम संख्या दी है। दूसरे कालम में गढ़ का नाम है। तीसरे कालम में स्थान निर्णय के प्रयत्न हैं। अंग्रेज विद्वानों ने लगभग आधे स्थान निर्णय किये थे। कुछ के प्रयत्न मैंने किये हैं। जहाँ भी भूलें हों, वे मेरी हैं। गांवों की संख्या तथा अन्य आंकड़ों को मैंने छोड़ दिया है। चार सौ वर्षों में कई नाम बदल गये। कई का महत्व कम हो गया। कुछ के पता अभी भी बाकी हैं। वैसी स्थिति में तीसरा कालम खाली छोड़ दिया गया है।

महाराजा संग्रामसाहि के बावन गढ़ों की सूची

स्लीमैन के अनुसार क्रम संख्या	गढ़ का नाम	स्थान-निर्णय के प्रयत्न
१	२	३
११	अमर गढ़	डिंडौरी से १२ मील दक्षिण पश्चिम। वर्तमान अमरपूर, रामगढ़।
५	अमोदा	(१) जबलपुर जिला में कटंगी से ६ मील सिकरा गाँव के पास।

१	२	३
		(२) स्टर्नडेल के अनुसार सिवनी जिला में वे कहते हैं कि गोंड़ों का किला है।
		(३) सागर जिला में, देवरी से बारह मील पश्चिम।
३७	इटावा	सागर जिला की तहसील वीना इटावा। सागर से ४० मील वायव्य।
४६	ओपद गढ़	भोपाल के पास होना चाहिये, सन् १६५१ में हिरदैशाह ने भोपाल के शासक को दिया। बुन्देलों के युद्ध में मदद देने के कारण।
६	कनौजा	जबलपुर बिलहरी के पास।
२१	करवा गढ़	(१) सिवनी से १७ मील नागपूर मोटर रोड में कुरई है। जहाँ तालाब का पानी दूधिया रंग का है। सफेद शैलोदक है। हाजमा पानी है। पास में मुन्दारा का पुराना मन्दिर है।
		(२) दूसरा स्थान सिवनी जिला में कूवा गढ़ है। उर्दू अक्षरों में ऐसा पाठान्तर सम्भव है। जो वैन गंगा से दस मील पश्चिम है।
४४	कारुवाग	भोपाल के पास होना चाहिये।
४५	कुरवई	भेलसा से ४८ मील उत्तर। थाना तहसील और रेलवे स्टेशन है। वीना इटावा से आठ मील दक्षिण पश्चिम कुरवई के नवाब, भोपाल नवाब के दामाद हैं।
३८	खिमलासा	सागर से ३५ मील वायव्य
३४	गढ़पहरा	सागर से १२ मील, मालथोन रोड पर।
१	गढ़ा	अब जबलपुर शहर का हिस्सा हो गया है। गढ़ा फाटक नहीं।
३२	गढ़ा कोटा	दमोह से १६ मील पश्चिम, सागर जिला में।
३६	गनौर	(१) पन्ना से १८ मील दक्षिण, यह ठीक नहीं जँचता।
		(२) टीकम गढ़ से १२ मील आग्नेय यह ठीक जँचता है।

१	२	३
५२	गौरझामर	सागर से २४ मील आग्नेय
१८	घनसौर	छोटी लाइन का स्टेशन, नैनपुर से २५ मील उत्तर।
४१	चौकीगढ़	भोपाल जिला में होशंगाबाद से १२मील वायव्य।
१६	चौरई	छोटी लाइन का स्टेशन, छिंदवाड़ा से २० मील पूर्व
२२	झंजन गढ़	बहुरबिन्द से ६ मील सलईया रोड में, वर्तमान तिगवाँ
८	टीपागढ़	पलसगढ़ से २० मील आग्नेय, द्रुग जिला की सीमा के पास, चाँदा जिला में
२०	डोंगरताल	नागपूर से ४० मील वायव्य
३५	दमोह	प्रसिद्ध है।
२५	दियागढ़	जबलपुर जिला में, महानदी के किनारे, शहपुरा रोड पर, कोहानी देवरी के पास।
५१	देवरी	सागर से ३५ मील दक्षिण।
१२	देवहारगढ़	शाहपूर से दो मील पूर्व।
२६	धामौनी	सागर से ३३ मील मालथौन रोड पर।
१५	नेमुआगढ़	नरसिंहपुर जिला के पश्चिम में।
३	पचेलगढ़	कूम्ही (सिहोरा) के आस-पास को पचेल कहते हैं।
२७	पवई-करही	(१) पन्ना से ३२ मील दक्षिण। तहसील और थाना है। (२) भीलसा से १८ मील उत्तर, बीना से ६ म... भोपाल लाइन में
१०	परतावगढ़	डिंडौरी तहसील के करंजिया से चार मील उत्तर वर्तमान नाम किटंगी।
१३	पाटनगढ़	जबलपुर से १८ मील वायव्य, तहसील है।
५०	पूनागढ़	
१४	फतहपुर	बनखेडी स्टेशन से पाँच मील दक्षिण। होशंगाबाद जिला में।

१	२	३
१७	बरगी	जबलपुर से १६ मील दक्षिण, छोटी लाइन का स्टेशन।
७	बाघमार	मण्डला जिला की मवई, सठिया से चार मील पूर्व दुर्ग जिला में। देखिये परिशिष्ट
२६	बांकागढ़	मडण्ला जिला में शहपुरा के पास बांकी है। बांकागढ़ नहीं मालूम।
४०	बारी	होशंगाबाद से ३५ मील ईशान, भोपाल जिला में।
१६	भँवरगढ़	गाडरवारा के वायव्य में ?
४७	भवरासो	भोपाल से ३२ मील उत्तर में बेरासिया है। भवरासो नहीं मालूम।
४८	भोपाल	मध्यप्रदेश की राजधानी।
४३	मकराही	हरदा से २५ मील दक्षिण, मकड़ाई।
३१	मड़ियादौ	हटा से १५ मील उत्तर
२	माड़ौगढ़	जबलपुर मण्डला मोटर रोड के बीचोबीच काल्पी फारिष्ट विलेज शिक्षा का केन्द्र है। कालपी से पाँच मील पूर्व, बालई नदी के किनारे। मालवा का माण्डु या माण्डव नहीं।
३६	रहली	सागर की तहसील
६	रायगढ़	दुर्ग जिला के चिलफी गाँव से चार मील वायव्य।
४६	रायसेन	जिला है।
४२	राहत गढ़	सागर से २५ मील पश्चिम।
२३	लाफागढ़	बिलासपुर जिला में, रतनपुर के पास ?
२४	सन्तागढ़	कांकेट से २५ मील दक्षिण पश्चिम में अन्तागढ़ है संतागढ़ नहीं मालूम।
३३	शाहगढ़	सागर से ४० मील उत्तर, छतरपुर रोड में।
२८	शाहनगर	पन्ना जिला में। झुकेही स्टेशन से ८ मील पश्चिम।
४	सिंगौरगढ़	दमोह जिला में, जबलपुर से २८ मील उत्तर
३०	हटा	तहसील है।

दो पुत्र

महाराजा संग्रामसाहि के दो पुत्र थे। दलपति (नं० ४६) और चन्द्रसाहि (नं० ५१)। दलपति का विवाह पिता के जीवित रहते हुए चन्देलवंश की दुर्गावती से हो गया था। और उनको युवराज पद मिल चुका था। अतएव चन्द्रसाहि कुछ खिन्न होकर भाग गये और उनने चाँदा में राज्य कायम किया। रानी दुर्गावती की पराजय के बाद चन्द्रसाहि (नं० ५१) को गढ़ा मण्डला का राजा बनाया गया।

दलपति के *विवाह* का प्रसंग यहीं उचित है। विवाह पिता के शासन-काल में हो गया था। विवाह के सम्बन्ध में कई मत हैं। निर्विवाद, इतना ही है कि दलपति की पत्नी का नाम दुर्गावती था और वे चन्देल-वंश की थीं। विवादग्रस्त मत इस प्रकार है।

(१) अबुलफजल का मत है कि दुर्गावती के पिता महोबा के राजा शालिवाहन चन्देल थे। "माली हालत कमजोर हो जाने से उन्होंने अपनी कन्या को हीन वंश के गोंड़ युवक दलपति साहि के साथ व्याह दिया।" यह उक्ति, वरपक्ष और कन्यापक्ष, दोनों के लिये घोर *अपमान* करने वाली है। बात स्पष्ट है।

क्षत्रियों में ऐसी चाल नहीं है कि गरीबी के कारण हीन जाति के और गैर क्षत्रिय को कन्या दे देवें। क्षत्रिय आत्म-हत्या कर लेगा, कन्या जौहर कर लेगी, पर नीची जाति के साथ विवाह सम्बन्ध नहीं होगा। खास तौर से आल्हा ऊदल वाले महोबा के क्षत्रिय कुल के सम्बन्ध में ऐसी बात बिलकुल नहीं जँचती। यह भी नहीं जँचती कि दलपतिसाहि को "हीन वंश के गोंड़" कहा जाय। मैंने "रावनवंसी" शब्द पर से अनुमान लगाया है कि गोंड़ जाति ब्राह्मण हैं और शैव हैं। 'गढ़ेश नृप वर्णनम्' से स्पष्ट है कि गोंड़ राज्य के संस्थापक यादवराय कच्छवाह राजपूत थे। अतः हीन वंश का प्रश्न ही नहीं उठता। महाराजा संग्रामसाहि सरीखे प्रतापी राजा की पुत्र-वधू होने में किसी भी तरुणी ने गौरव का अनुभव किया होता। वे स्वतंत्र थे। करद अवस्था में हिरदैसाहि की उपपत्नी बनने में मुगल शहजादी ने गौरव अनुभव किया। अबुलफजल की इस अशिष्ट उक्ति से ऐसा जँचता है कि महोबा के शालिवाहन चन्देल का सशरीर अस्तित्व था ही नहीं। सन् १५४० के करीब महोबा में चन्देल शासक रह ही नहीं गये थे। अन्य तथ्यों के प्रकाश में आने से अबुलफजल का मत डगमगा चुका है।

(२) रामनगर शिलालेख के पद्य नं० १७ से स्वयंवर की बात पुष्ट होती है।

(३) 'गढ़ेश नृप वर्णनम्' के पद्य नं० ३० में स्वयंवर का स्पष्ट उल्लेख है। युद्ध का तथा हरण का वर्णन भी है। स्वयंवर को चाहे जितना अच्छा कहा जावे, प्रायः हर स्वयंवर में युद्ध अवश्य हुआ करता था। स्वयंवर और गन्धर्व विवाह से किसी भी पक्ष का अपमान नहीं होता। दोनों बातें शास्त्रोचित हैं।

(४) 'गढ़ेश नृप वर्णनम्' के साथ में केवल एक स्थान में पं० वासुदेव-राव गोलवलकर मण्डला के पास एक श्लोक संग्रह भी मिला है। इस सम्बन्ध में एक श्लोक आचार्य भावे ने उद्धृत किया है। दुर्गावती के विवाह का वर्णन इस प्रकार है।

अब्देष्टाश्वतिथौ युते दलपतिर्निमथ्य स्वारोधकान्।
श्री चन्देलसुतां जहार बलवान् दुर्गावतीं श्रीमतीम्॥

अर्थ—संवत् १५७८ (सन् १५२१) में बलवान् दलपति ने अपने रोकने वालों को मथन करके श्री चन्देल की पुत्री श्रीमती दुर्गावती का हरण किया।

(५) जबलपुर जिला की प्रथम बन्दोबस्त रिपोर्ट (१८६९) में मेजर नेम्भार्ड ने लिखा है—"१८२५ में गवर्नर जनरल के एजेन्ट के पास जबलपुर में एक वंश वृक्ष पेश किया गया जिसमें लिखा था कि दल-पतिसाहि ने उंचहरा के राजा की कन्या दुर्गावती से बलपूर्वक विवाह किया।' यह उक्ति संस्कृत के वचनों का पूरा समर्थन करती है। यहाँ पर एक ही बात विचारणीय है कि उंचहरा के राजा परिहार हैं, न कि चन्देल। इसलिये उस समय जैसी भी स्थिति रही हो। या इस उक्ति को चन्देल वाली बात के कारण अमान्य ही मान लिया जाय।

(६) एक और मत सर ए० कनिंघम का आर्किलियोजिकल सर्वे, पोथी २१, पेज ८९ में है कि दुर्गावती कलिंजर के राजा कीरतसिंह की पुत्री थीं। कनिंघम ने चन्द बरदाई का प्रमाण दिया है (J. A. S. B. XLVI, पेज २३३) कि कलिंजर के कीरतसिंह की गढ़ा के संग्रामसाहि से बहुत मैत्री थी। दोनों नर्मदातट में शिकार खेला करते थे। कभी दोनों में खटक गई। गोंड़ों ने कीरतसिंह को बन्दी बना लिया। कीरत-सिंह पर और मुसीबतें आईं। शेरसाहि ने कलिंजर पर घेरा डाला। १५४५ में इसलामसाहि ने कीरतसिंह को मारकर कलिंजर पर कब्जा

कर लिया। मैत्री के समय या शत्रुता के समय या विपत्ति के समय कभी विवाह का प्रसंग उपस्थिति हो गया होगा।

(७) पं० गरोशदत्त पाठक का मत है कि दलपति के पास दुर्गावती का पत्र आया कि मैंने स्वप्न में आपको देखा है। आपके साथ विवाह करूँगी। आप आकर मुझे मन्दिर से पूजा करते वक्त ले जाइये। सो दलपतिसाहि छीन कर ले आये। सिंगौरगढ़ में विवाह हुआ। इस मत से युद्ध की बात पुष्ट होती है और किसी की अपकीर्त्ति नहीं होती। स्वयंवर और गन्धर्व विवाह शास्त्र विरुद्ध नहीं हैं।

(८) वास्तव में दुर्गावती के विवाह के सम्बन्ध में इतने अधिक मतों का कोई प्रयोजन नहीं था। इतना ही प्रयोजन है कि जो इतिहासकार लोग अबुलफजल को सर्वमान्य मानते हैं। उस अबुलफजल का मत इतना विवाद ग्रस्त है। शोधकार्य से ही तय होगा कि क्या अबुलफजल ने इस विषय को भी झूठ लिखा है।

(३) दलपतिसाहि (नं० ४६)
(१५४१-१५४८)

पिता महाराज संग्रामसाहि के बाद दलपतिसाहि राजा हुए। इनके विवाह का वर्णन हो चुका है। राजधानी चौरागढ़ थी। दलपति सिंगौर गढ़ में रहना पसन्द करते थे। इनका वर्णन रामनगर शिलालेख के पद्य नं० १६, १७ और १८ में है तथा 'गढ़ेश नृप वर्णनम्' के पद्य नं० २६ और ३० में है। आधुनिक मत के अनुसार इन्होंने सात वर्ष राज्य किया। पर 'गढ़ेश नृप वर्णनम्' के अनुसार अट्ठारह वर्ष राज्य किया। श्लोक संग्रह के अनुसार इनके विवाह की तिथि, १५२१ सन् हैं, पर आधुनिक मत से करीब १५४० सन् है। इनकी मृत्यु अल्पायु में हुई जब इनका एकमेव, और सम्भवतः प्रथम पुत्र केवल तीन वर्ष का था। मृत्यु युद्ध में नहीं प्राकृतिक कारण से और दुर्भाग्यपूर्ण कारण से हुई। इनकी पत्नी दुर्गावती का सौभाग्य समाप्त हो गया। वे युवावस्था में विधवा हो गईं। उनकी वीरता का वर्णन आगे दिया जाता है। इनके शासनकाल में कोई विशेष बात नहीं हुई।

पं० गरोशदत्त पाठक ने लिखा है, कि इनके दरबार में बीरबल नौकरी की तलाश में आये। उनको नौकरी मिली। एक समय बीरबल ने पच्चीस हजार रुपयों की सामग्री दान करा दी। राजा ने बीरबल को

खर्च देकर विदा कर दिया। वे दिल्ली चले गये। अपने भाग्यबल से अकवर के कृपा-पात्र बने।

श्लोक संग्रह में एक ही श्लोक ऐसा मिलता है जिससे ज्ञात होता है कि इनके शासनकाल में रुहिल्ला नवाव उमर खाँ ने सिंगौर गढ़ पर घेरा डाला था। श्लोक का पाठ है :—

रस गज तिथि युक्ते हायने भूद्धेशो,
नृप दलपतिसाहि: सिंहदुर्गे स्थितिर्यद्।
वलय उमर खानो भून्नवावो रुहिल्ला,
वरसतिर्सचिवोस्याधार कायस्थ धीर: ॥

अर्थ :—संवत् १५८६ (सन् १५२६) में गढ़ा के राजा दलपतिसाहि पर जो सिंह दुर्ग (सिंगौर गढ़) में थे जिनके सचिव अच्छी बुद्धि वाले धीरवान् आधार कायस्थ थे, उन पर रुहिल्ला नवाब उमर खाँ वलय (हाथ का कड़ा) हुए अर्थात् घेरा डाला।

यह श्लोक केवल एक स्थान में पं० वासुदेवराव गोलवलकर मण्डला के पास मिला है। मुगल इतिहासकारों ने या अँग्रेज इतिहासकारों ने बीरबल की या उमर खाँ की बात का कोई वर्णन नहीं किया है। हो सकता है कि बाजबहादुर के हमले के समय बाजबहादुर का कोई सेना पति नवाब उमर खाँ रुहिल्ला रहा हो। हो सकता है कोई और बात हो। इस हमले से आसफ खाँ के हमले से कोई सम्बन्ध नहीं।

कोई कारण नहीं कि श्लोक संग्रह के लेखक ने यह बात किसी बुनियाद के बिना लिखी हो। अबुलफजल ने इस बात को नहीं लिखा। इससे उसके ऐतिहासिक ज्ञान की अपूर्णता ही जँचती है।

दलपति शाह ने रामपुर में राधाकृष्ण की पूजा करने वाले ब्राह्मण को रमनगरा गाँव ताम्रपत्र द्वारा दान में दिया था। रमनगरा के ब्राह्मण कहते हैं कि उनके कुटुम्ब में वह ताम्रपत्र सुरक्षित रखा है।

(४) वीर नारायण (नं० ५०)
(१५४८-१५६४)

तीन वर्ष की उम्र में राजा हुए। बारह वर्ष राज्य किया। पन्द्रह सोलह वर्ष की आयु में नर्रई नाला के युद्ध में वीरगति प्राप्त की। बालिग हो ही नहीं पाये। इनकी कुंआरी मौत ने दुर्गावती का दिल तोड़ डाला था। इनका शासन काल दुर्गावती का शासन काल है। शिलालेख के

पद्य नं० २६ में स्पष्ट लिखा है कि इन्होंने और रानी ने सूर्य-मण्डल को भेदा। 'गढ़ेश नृप वर्णनम्' के पद्य नं० ३१ में इनका वर्णन है।

अबुलफजल के अनुसार वीर नारायण की मृत्यु नर्रई नाला में नहीं बल्कि चौरागढ़ में हुई। वह कहता है :—(The Rani's son, who had left the battle field was shut up in the fort, came out to fight on the approach of the army of fortune, but the forc was taken after a short contest, The Raja died bravely.) जिसका अर्थ होता है कि राजा वीर नारायण नर्रई नाला के युद्ध क्षेत्र से भागे। भाग कर चौरागढ़ में छिपे। वर्षा ऋतु के बाद बादशाह अकबर की भाग्यशाली सेना ने चौरागढ़ पर आक्रमण किया तब राजा वीर नारायण लड़ने को निकले। वे कुछ नहीं कर सके। तुरन्त किले पर फतह मिल गई। राजा वीरता से मरे।

इस उक्ति में असत्य भरा हुआ है। जिस वीर ने किशोर अवस्था में मुगल सेना के तीन बार छक्के छुड़ा दिये उसको भगोड़ा और बुज-दिल कहा गया है। ऐसी उक्ति पर श्रद्धा करने वाले काहे को कभी वीर नारायण की वीरता को समझ सकेंगे। किसी भी इतिहासकार ने वीर नारायण को वीर मानने का कष्ट नहीं किया। अबुलफजल की ऊपर वाली उक्ति को किसी ने असत्य नहीं माना। इस उक्ति के भीतर जाने पर असत्यता स्पष्ट हो जाती है।

वीर नारायण के शैशव से ही बाज बहादुर के हमले होने लगे। वीर नारायण ने अपनी छोटी सी पूरी उम्र में युद्ध हमला सर्वनाश यही देखा। माता का संरक्षण देखा। बालिग नहीं हो पाये। उनके विवाह का प्रश्न ही नहीं उठा। विवाह की उम्र ही नहीं आ पाई। रानी माता को सिवाय राज्य और पुत्र की रक्षा के और कुछ सोचने का अवसर ही नहीं मिल पाया। परिस्थितिवश माता का संरक्षण जन्म भर कायम रहा। फिर सब समाप्त हो गया।

वीर नारायण को गोंड़ वंश का अभिमन्यु मानने में किसी को एतराज नहीं होगा।

(५) दुर्गावती

'युद्धों में वे स्वयं गज पर चढ़ कर बलपूर्वक बलवान शत्रुओं पर विजय पाया करती थीं। वे प्रजा पालन में सदा सावधान थीं। उनने

लोकपालों को विफल कर दिया था।' यह रामनगर शिलालेख के इक्कीसवें पद्य का अनुवाद है। शिलालेख के २३, २४, और २५वें पद्यों में युद्ध का वर्णन है। रानी दुर्गावती के सम्बन्ध में अकबरनामा में अबुलफजल ने लिखा है (बेवरिज का अनुवाद, पोथी दो, पेज ३२४-३२७) कि—'रानी ने बाजबहादुर और सियाना अफगानों पर विजय पाई-रानी का निशाना अचूक था। वे तीर और बन्दूक चलाती थीं। वे शिकार किया करती थीं। जब भी शेर का समाचार सुन पड़ता, तो जब तक रानी शेर को न मार लें, तब तक पानी नहीं पीती थीं। उनके बल और पुरुषार्थ की कथाएँ हिन्दुस्तान में प्रचलित हैं। पर उन (रानी दुर्गावती) में एक बड़ा दोष था। वह यह कि चापलूसों की भीड़ के कारण उनको अपनी बाहरी सफलताओं से अभिमान हो गया था। और उनने शहनशाह अकबर की देहरी पर आत्मसमर्पण करने से इंकार कर दिया था।'

इतिहासकार—शिलालेख के शब्दकार ने कवि होने का दावा किया है। अबुलफजल ने इतिहासकार होने का दावा किया है। शासन का आश्रय स्वीकार करने से इतिहासकार बिक जाता है। संसार में हर वस्तु का मूल्याङ्कन हो सकता है। इतिहासकार की कलम की कोई कीमत नहीं होती। अबुलफजल बिका हुआ इतिहासकार था। अर्थात अबुलफजल इतिहासकार नहीं था। इतिहासकार के पद से पतित होकर भक्त और प्रचारक बन चुका था। तिस पर भी अबुलफजल दुर्गावती का कोई दोष नहीं बता सका। अबुलफजल के वर्णन में जो दुर्गावती के दोषों का अभाव है वह अभाव ही दुर्गावती की कीर्ति को सौगुनी, हजारगुनी कर देता है। अबुलफजल लाचार था। उसको आवश्यक हो गया था कि वह रानी दुर्गावती की प्रशंसा करता। नहीं तो क्या ऐसा कहता कि अबुलफजल के आश्रयदाता या खरीददार महान् पराक्रमी शहनशाह अकबर ने एक विधवा रानी को जिसमें कुछ भी वीरता नहीं थी, जिसके वश में जन-शक्ति नहीं थी, युद्ध में परास्त किया। क्या ऐसा लिखता कि सिंह ने मेंढकी को मार डाला। दुर्गावती की प्रशंसा के व्याज से अबुलफजल ने अकबर की प्रशंसा की।

जैसी निन्दा मुगल काल के इतिहासकारों ने गोंड़ राजाओं की है वैसी ही निन्दा उनने मराठों की भी की। छत्रपति शिवाजी की

पहाड़ी चूहा वाली उक्ति प्रसिद्ध है। महाराष्ट्र के विद्वान् इतिहासकारों ने 'बखार' पर से प्रमाण देकर झूठी निन्दा का मुंह तोड़ जवाब दिया। महाराष्ट्र को सरदेसाई, सावरकर, लोकमान्य मिले। गोंड़ राजाओं की निन्दा का जवाब आज तक किसी ने नहीं दिया। बल्कि अंग्रेज इतिहासकारों ने अबुलफजल द्वारा की गई बदनामी को तथ्य माना। भारतीय, अंग्रेजों के वचनों को सत्य मानते हैं। इस प्रकार परम्परा बिगड़ी। कोई-कोई अंग्रेज विद्वान स्वतन्त्र विचार के और स्पष्टवादी होते हैं या कभी-कभी सत्य बात निकल ही पड़ती है। मण्डला जिला गजेटियर के पेज २६ में दुर्गावती के बारे में लिखा है—"She deserves to be numbered among the great women of the world."

लूट का वर्णन दो प्रकार का होता है। एक लुटेरे के मुख से और दूसरा लुटने वाले के मुख से। लूटने वाला कहता है कि लूट में 'उन्नति' हुई। लुटने वाला बर्बादी कहता है। अबुलफजल ने दुर्गावती की पराजय को अकबर की वीरता कहा। बाद के इतिहासकारों ने, अहमदशाह अब्दाली द्वारा मुगल दरबार की लूट को 'बर्बरता' कहा। दोनों कृत्य एक ही प्रकार के थे। जब अपना लाभ हुआ तब उन्नति कह दी। अपनी हानि हुई तब बर्बरता कह दी। एक और स्थिति उस समय आती है जब लुटने वाले से भी लूट को उन्नति कहलाया जाता है। जिसका अर्थ यह होता है कि लुटने वाला एक बेर लुटा जब लूट हुई और दूसरी बेर भी लूटा जब उससे उसी लूट को उन्नति कहलाया गया। ऐसा प्रसंग रामनगर शिलालेख के पद्य नं० २३ में आया है। वहाँ अकबर के लिये 'पार्थकल्प' शब्द कहा गया है। अर्थात् अर्जुन सरीखा। उस पार्थकल्प शब्द में युद्ध के लोक गीत को बल मिलता है। लोकगीत में अकबर को स्त्री वेष दिया गया है। अर्जुन को भी वृहन्नला रूप में स्त्री वेष लेना पड़ा था।

नर्रई युद्ध के समय वीर नारायण की अवस्था १५-१८ वर्ष की थी और अकबर की करीब २१ वर्ष की। अबकर का जन्म १५४२ का माना जाता है और १५-१८ वर्ष के पुत्र की माता दुर्गावती की अवस्था करीब चालीस वर्ष की रही होगी। अर्थात् दुर्गावती अकबर की माता के समान उम्र की थीं। फिर भी अबुलफजल ने आवाज कसने में चूक नहीं की।

दुर्गावती के दरबारी—अबुलफजल ने लिखा है कि दुर्गावती हमेशा चापलूसों से घिरी रहती थी। इसलिये दुर्गावती के कुछ दरबारियों का वर्णन करना आवश्यक हो जाता है। जिससे अनुमान हो सके कि वे दरबारी क्या चापलूस थे या ऐसे व्यक्ति जिसके दरबार में हों वहाँ चापलूसों की कहाँ तक गुञ्जाइश हो सकती है। दलपतिशाह के समय में प्रसिद्ध *बीरबल* दरबार में थे जिनका वर्णन हो चुका है। दुर्गावती के समय में दीवान के पद पर *अधार सिंह कायस्थ* थे। जिनको अबुल-फजल ने जाति का बखीला लिखा है। इनने नर्रई युद्ध में भाग लिया था। इनसे रानी ने कहा था कि रानी की हत्या कर दें। इनने रानी की आज्ञा नहीं मानी। मान भी कैसे सकते थे। तब रानी ने स्वयं कटार मार कर जौहर किया। अबुलफजल का कहना है कि अधार सिंह कायस्थ ने नर्रई युद्ध में वीरगति प्राप्त की। पं० गणेश दत्त पाठक का कहना है कि युद्ध के बाद सुलह की बात करने को अधार सिंह भी दिल्ली गये थे। इनके नाम से जबलपुर का अधारताल प्रसिद्ध है। पं० गणेश दत्त पाठक ने लिखा है कि 'रानी दुर्गावती की प्रसिद्धि दिल्ली तक हुई। उसकी प्रजा उससे अत्यन्त सन्तुष्ट रहती थी। उसकी और दीवान अधार की बुद्धिमत्ता सुनकर बादशाह अकबर ने अपनी सभा में *गोप कवि* को गढ़ा मण्डला का वृत्तान्त जानने के लिये भेजा। गोप कवि ने यहाँ आकर बड़ी विकट परीक्षा ली और सब में दीवान को प्रत्युत्पन्नमति देखकर बादशाह से जाकर प्रशंसा की। बादशाह ने भी दीवान अधार को देखने की इच्छा से परवाना उनके पास भेजा कि तुम दिल्ली आओ। आज्ञा पाकर दीवान अधार वहाँ गये। बादशाह ने इनकी बुद्धि की जाँच के लिये एक उपाय सोचा। जब सभा में दीवान आने वाले थे उससे पहिले अपने सब दरबारियों को सादी पोशाक पहिनने के लिये आज्ञा दी। आप भी सब के साथ में बैठ गये। इतने में दीवान अधार वहाँ पहुँचे और तख्त खाली देख कर एक क्षण चिन्तित हुए। उपरान्त थोड़े ही समय में बादशाह को अनुमान से पहिचान कर सलाम किया। भेंट जो ले गये थे वह उनके सामने रख दी। यह देख कर बादशाह प्रसन्न हुए और पूछा कि तुमने हमें किस तरह पहिचाना। अधार ने उत्तर दिया कि हुजूर! सब लोग जो बैठे हैं उनकी नजर आप ही की तरफ थी बार-बार आप ही की तरफ देखने को चाहते थे, इसी से मैंने

पहिचाना। यह सुन कर बादशाह बहुत प्रसन्न हुए। उन्हें खिलअत दिया और कुछ दिन रख कर विदा किया।'

इससे एक बात सिद्ध होती है। अकबर ने दीवान अधार को अपने पक्ष में मिलाने के लिये प्रयत्न किये और दीवान अधार ने अपना ईमान नहीं छोड़ा। दीवान ने प्रयत्न किये कि उनके गढ़ामण्डला राज्य पर हमला नहीं होवे। किंवदन्ती है कि अकबर ने गढ़ा मण्डला राज्य की स्थिति दीवान से जानना चाही तो दीवान ने सोने का बना एक करेला पेश कर दिया। जिसका अर्थ अकबर ने लगाया कि दीवान ने हमारा अपमान किया कि हमारा देश स्वर्ण की तरह सम्पन्न, करेला के ऊपरी भाग की तरह ऊबड़ खाबड़ और हम लोग करेला के भीतरी भाग की तरह युद्ध में शत्रु के लिये कटु हैं। कुछ भी निश्चय रूप से अभी नहीं कहा जा सकता।

युद्ध से पहिले की एक और किंवदन्ती है कि अकबर ने रानी दुर्गावती के पास चर्खा भेजा था कि वृद्धाओं का काम चर्खा कातना है राज्य करना नहीं। उत्तर में रानी ने अकबर के पास पींजन और मुठिया भेज दिया कि बहना जाति का काम रुई धुनकना है राज्य करना नहीं। इस किम्वदन्ती में चाहे बिलकुल तथ्य न हो, पर इतना सत्य है कि नर्रई नाला के पास के गाँव लखनपुर में बहना जाति के कई घर हैं।

रानी के पुरोहित का नाम *महेश ठाकुर* था। मैथिल ब्राह्मणों में एक आस्पद 'ठक्कुर' है। इसी ठक्कुर वंश में मैथिल कोकिल विद्यापति कवि और प्रसिद्ध कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर थे। वे बंगाली में रवीन्द्र नाथ ठाकुर लिखा करते थे। उनका कुटुम्ब मिथिला से बंगाल चला गया था। पुरोहित महेश ठाकुर के छोटे भाई दामोदर ठाकुर थे। महेश ठाकुर के शिष्य मैथिल ब्राह्मण रघुनन्दन राय थे। एक समय अस्वस्थता के कारण महेश ठाकुर पुराण बाचने नहीं जा सके। अपने शिष्य रघुनन्दन राय को भेज दिया। उनने बहुत विद्वता से पुराण बाँचा। जो रानी की समझ में नहीं आया। रानी ने कुछ कहा। रघुनन्दन राय को बुरा लगा। क्रोध आ गया। तुरन्त चले गये। बस्तर पहुँचे। शास्त्रार्थ किया। बस्तर के राजा प्रसन्न हो गये। पचास हाथी का हलका इनाम में दिया। रघुनन्दन राय गढ़ा आये। रानी दुर्गावती को सफेद हाथी दिया। शेष हाथी काशी क्षेत्र में जाकर दान कर दिया। फिर अकबर

के दरबार में गये। वहाँ से चिगना बीबी को और मिथला का राज्य प्राप्त करके लौट आये। सम्पूर्ण राज्य अपने गुरु महेश ठाकुर को गुरु दक्षिणा में दे दिया। महेश ठाकुर ही महाराजाधिराज दरभंगा के पूर्वज हैं। गढ़ा की पुरोहिती उनके छोटे भाई दामोदर ठाकुर करते रहे। इस वृत्तान्त की पुष्टि दरभंगा जिला गजटियर से होती है कि महाराजाधिराज दरभंगा के पूर्वज जबलपुर से दरभंगा में गये। गढ़ा में तिरहुतिया लाल और महेश पुर गाँव, महेश ठक्कुर की याद में हैं। उन्हीं के नाम से ठाकुर ताल भी है जहाँ देवी की मूर्ति आजकल औंधी पड़ी हुई है।

अबुलफजल ने लिखा है कि रानी दुर्गावती हमेशा चापलूसों से घिरी रहती थी। सो रानी दुर्गावती के कुछ दरबारियों का वर्णन करना आवश्यक हो गया था कि ऐसे दरबारियों को चापलूस कहना कहाँ तक सत्य हो सकता है।

पं० गणेश दत्त पाठक ने लिखा है कि एक बेर रानी दुर्गावती ने एक करोड़ सोने की मुहरें दान दी थीं। दान से कीर्त्ति हुई। कीर्त्ति अर्थात् प्रशंसा को अबुल फजल ने चापलूसों से घिरी हुई कहा। कीर्त्ति से ही आक्रमणकारी को उत्साह हुआ।

दुर्गावती की वीरता का वर्णन रामनगर के शिलालेख के पद्य नं० २२ में है। वह पद्य वीर रस से ओत-प्रोत है।

युद्ध से पहिले की मनोवृत्तियाँ

वैभव के विरोध में शत्रु अकारण उत्पन्न होते हैं। वैभव के रहते तक शत्रुता रहती है। सात्विक प्रकृति वाले लोग दूसरों का वैभव देख कर प्रसन्न होते हैं। अन्य प्रकृति वाले जलते हैं। जलन से शत्रुता होती है। वैभव के प्रति शत्रुता में और कोई कारण इदमित्थम् नहीं होता। दुर्गावती के पास प्रजा के सुख का सांसारिक वैभव था। इसके साथ-साथ त्याग, तपस्या और अपनी आन की रक्षा का वैभव था। उनकी पराजय में और कटारी मार कर जौहर कहरने में भी वैभव था। राणा प्रताप की बरबादी में वैभव है। राजा मानसिंह के सांसारिक वैभव में, वैभव नहीं, कुरुचि है। यदि रानी दुर्गावती ने सुलह करके अपनी आन में बट्टा लगवाया होता, तो कुरूचि कहलाई जाती। उनके बारे में मुगल इतिहासकारों के लेख उनकी वास्तविक स्थिति नहीं प्रगट

करते। युद्ध के जो भी कारण रहे हों, एक कारण स्पष्ट है कि दुर्गावती की नीति आत्मरक्षा की थी और संग्रामसाहि की नीति राज्य-विस्तार की। दुर्गावती की नीति भी यदि प्रहार नीति होती, साम्राज्य विस्तार की नीति होती, सैन्यबल प्रहारात्मक रहता, तो अकबर की हिम्मत हमला करने की नहीं पड़ती। प्रजा का सुख ही राजा का वैभव है। दुर्गावती प्रजा के लिये त्रिशक्तिमाता थीं। प्रजा को इतना अधिक सुख था कि अल्पवयस्क राजा और विधवा रानी माता के भी जलन के कारण शत्रु उत्पन्न हो गये थे। दूसरी तरफ साम्राज्य लोलुप अकबर था। उन्माद के कारण अकबर नहीं समझ सका कि अभिमान का सात्विक रूप स्वाभिमान होता है। अभिमान का राजसी रूप दम्भ होता है। अकबर की कुरुचि ही थी कि उसने रानी दुर्गावती और महाराणा प्रताप के स्वाभिमान को दम्भ समझा या ऐसा समझने का अभिनय करके अपनी साम्राज्य लोलुपता की सिद्धि की। अकबर की स्वार्थसिद्धि का एक दूसरा रूप महाराज मानसिंह में मिलता है। अकबर ने मानसिंह के नैतिक पतन को मित्रता का रूप दिया। तीन जिलों के नाम वीर भूमि, मान भूमि और सिंह भूमि बना करके वीर मानसिंह की घोषणा करके नैतिक पतन की कीमत दी।

इतिहासकार राणाप्रताप या रानी दुर्गावती पर दम्भ का दोष नहीं लगाता। न मानसिंह को नैतिक पतन के दोष से बरी करता। अकबर की स्वार्थमयी दृष्टि में और इतिहासकार की दृष्टि में इतना अन्तर है।

अकबर ने गद्दी प्राप्त करने के बाद पाँच-छः वर्ष तक शक्ति-संग्रह किया। उसने पहिला हमला १५६१ में बाजबहादुर के विरुद्ध करके माण्डु को अपने राज्य में मिला लिया। बाजबहादुर में विरोध करने की शक्ति नहीं थी। अकबर को सरलता से सफलता मिली।

अकबर ने १५६४ में रानी दुर्गावती के विरुद्ध पहली बाहरी चढ़ाई की। पशुबल और अत्याचार का शिकार निःसहाय विधवा रानी और नाबालिग राजा हुआ। सम्प्रदायवादी और साम्राज्य लोलुप अकबर को हिन्दू राजाओं की आजादी और स्वाभिमान असह्य था।

गढ़ा मण्डला राज्य के १५६४ में नष्ट हो जाने पर इसी राज्य की लूटकी सम्पत्ति से अकबर ने १५६७ में हिन्दू-सूर्य के चित्तौर गढ़ का सर्वनाश किया। अकबर को हिन्दू-विरोधी या सम्प्रदायवादी सिद्ध करने

के लिये किसी और प्रमाण की आवश्यकता नहीं। अबुलफजल से आशा करना व्यर्थ है। नर्रई युद्ध के लोक गीत में धर्म की नाव में चढ़ कर नदी पार की, इन शब्दों से भी संकेत मिलता है। रानी दुर्गावती की तरफ से वीरगति पाने वालों में शम्स खान मियाना तथा मुबारक खान बिलुच आदि अफगान योद्धा थे। चौरागढ़ के जौहर को सफल बनाने के लिये भोज कैथा (कायस्थ) और मियाँ शिकारी रूमी नियुक्त किये गये थे। उसी प्रकार अकबर के समर्थकों में कई हिन्दू थे। सर्वसाधारण की दृष्टि में अकबर साम्प्रदायिक नहीं था। अकबर अपने कृत्यों से घोर सम्प्रदायवादी सिद्ध होता है। छिद्रान्वेषी अबुलफजल रानी दुर्गावती पर एक ही दोष लगा सका कि दुर्गावती हमेशा चापलूसों से घिरी रहती थीं। उसे अपनी बाहरी सफलताओं पर बहुत अभिमान हो गया था। दुर्गावती ने शहनशाह अकबर की देहरी पर आत्म-समर्पण करने से इंकार कर दिया इसके सिवाय रानी दुर्गावती पर और कोई दोष नहीं लगाया जा सका। इस उक्ति को दोष मान भी लिया जावे तो अकबर को इससे कोई अधिकार नहीं मिल जाता कि अकबर दुर्गावती के राज्य को नष्ट कर दे। दोष किसका सिद्ध होता है? अकबर का या दुर्गावती का।

अकबर साम्राज्यवादी और सम्प्रदायवादी था। यही प्रकृति अँग्रेज जाति की थी। अत: अंग्रेज इतिहासकारों ने अकबर की प्रशंसा की। अंग्रेज इतिहासकारों के प्रति श्रद्धा और भक्ति के कारण अँग्रेजी शिक्षा-दीक्षा में ढले हुए भारतीयों ने भी अकबर की प्रशंसा की। इतिहास का रुख गलत हो गया।

विन्ध्य प्रदेश में अकबर की प्रशंसा की जाती है। उस तरफ ऐसा प्रसिद्ध है कि अकबर का जन्म रीवां के गोविन्द गढ़ के पास मुकुन्दपुर में हुआ था। और इस कारण रीवां नरेश पर अकबर के शासन काल में कोई कर नहीं लगता था। यह प्रसिद्धि यद्यपि इतिहास के विरुद्ध है पर प्रसिद्धि है और प्रसिद्धि का असर है। हो सकता है कि औरंगजेब के पुत्र अकबर (द्वितीय) का जन्म मुकुन्दपुर में हुआ हो और उसे लोग हुमायूं का लड़का अकबर सम्राट समझ बैठे। उन दिनों रीवां के बघेल राजा और गढ़ा मण्डला की रानी दुर्गावती के परस्पर सम्बन्ध, मित्रता के या शत्रुता के थे। अकबर का हमला रीवां नरेश की इच्छा के अनुकूल था या प्रतिकूल। या अकबर में विजय और साम्राज्यवाद

की लिप्सा के कारण उचित अनुचित का विवेक रह ही नहीं गया था। इन परिस्थितिओं पर इतिहासकारों ने खोज की होगी या करेंगे।

युद्ध टालने का प्रयत्न—सदैव निर्बल की तरफ से होते हैं। बलवान युद्ध को सदैव निमन्त्रण देना चाहता है। दुर्गावती के पक्ष ने युद्ध टालने के प्रयत्न अवश्य किये होंगे। दीवान अधार ने करेला पेश करके अकबर का अपमान नहीं किया। इतना बुद्धिमान दीवान काहे को व्यर्थ की मुसीबत अपने सिर पर बुलाता। अबुलफजल को 'देहरी पर आत्मसमर्पण' वाली उक्ति से सन्धि की बातचीत की और किसी प्रकार की अमान्य शर्त की ध्वनि निकलती है।

अकबर की स्थिति बाज बहादुर के माण्डु की विजय (१५६१) से कुछ पुष्ट हो गई थी। रानी के सामने दो प्रश्न थे। एक तो 'राणा प्रताप वाली विचारधारा कि आत्म सम्मान के विरुद्ध समझौता नहीं करना है। चाहे नष्ट होना पड़े। दूसरी विचारधारा राजा मानसिंह की कि आराम से जीते रहने के लिये बेइज्जती सह लेने में हानि नहीं। रानी दुर्गावती ने राणा प्रताप वाली विचारधारा को महत्व दिया। अकबर चाहता था कि रानी दुर्गावती राजा मानसिंह वाली विचारधारा को अपनावें। रानी ने इन्कार करके घमण्ड की बदनामी सही। अबुलफजल ने लिखा है—The Rani replied—"It was better to die with glory than to live with ignominy.' इस प्रकार युद्ध टालने के प्रयत्न विफल हुए और युद्ध अनिवार्य हुआ। युद्ध में रानी को सर्वनाश, मृत्यु और कीर्त्ति मिली। रानी की स्पष्ट प्रशंसा मुगल इतिहासकारों ने नहीं की है। उनने अपनी साम्राज्यलिप्सा को इन शब्दों में स्पष्ट कर दिया है। 'the desire of lordship over the country entered his (Asaf khan's) mind, and he longed to embrace the bride of the territories.'

युद्ध का प्रत्यक्ष कारण

ऐसी मनोवृत्तियों के रहते एक बात और हुई जिससे युद्ध अनिवार्य हो गया। माण्डु के बाजबहादुर ने १५५५ से १५६० तक पाँच छः वर्षों में चौरागढ़ पर या गढ़ा पर कई हमले किये। बाजबहादुर हर बार रानी दुर्गावती द्वारा परास्त होता रहा। बाजबहादुर की स्थिति

लज्जास्पद हो गई कि एक विधवा रानी के हाथ से हार पर हार खा रहा है। बाजबहादुर की सैन्य स्थिति तथा माली हालत भी कमजोर हो गई होगी। अकबर ने १५६१ में बाजबहादुर पर हमला किया। बाजबहादुर आसानी से परास्त हुआ। जो रानी दुर्गावती से नहीं जीत सका था, वह अकबर की सेना के सामने कैसे टिक सकता था। बाज-बहादुर पराजित, परास्त, बन्दी, करद सब हो गया। उसमें हर प्रकार की कुत्सित भावनाओं का अवश्य उदय हुआ होगा। जैसे बदले की भावना, लाचारी का अनुभव आदि। उसने अकबर को दुर्गावती के विरुद्ध भड़काया होगा। गढ़ा मण्डला राज्य की सम्पन्नता का वर्णन किया होगा। रानी का वैभव ही अकबर के लिये अवसर हो गया। किसी भी इतिहासकार ने बाजबहादुर द्वारा अकबर को भड़काये जाने की बात नहीं लिखी है। परिस्थितियों से ऐसा निर्णय आप ही आप होता है।

ऐसा न भड़काया होता तो रानी की पराजय के बाद की सत्तावन परगनों की सूची के सिरनामा में 'मालवा का सूबा, गढ़ा की सरकार' शब्द न लिखे जाते। संभवतः आसफ खाँ के कारण 'कड़ा मानिकपूर का सूबा गढ़ा के सरकार' लिखा जाता। सत्तावन परगनों की सूची इस पाठ के अन्त में दी गई है।

प्रधान युद्ध क्षेत्र—नर्रई नाला

जबलपुर-मण्डला रोड में, पाँचवें मील में गौर नदी का पुल है। पुल पार करने पर साइनबोर्ड में 'रानी दुर्गावती की समाधि, ६३ मील' लिखा है। सवारी मिल जाती है। मण्डला रोड छोड़कर पश्चिम मुड़ना पड़ता है। पक्की सड़क है। रास्ते में पडरिया, चौखड़ा और बारहा आदि गाँव हैं। समाधि बारहा से डेढ़ मील है। समाधि से नर्रई नाला एक फर्लांग है। नाला पार करने पर आधा मील में नर्रई गाँव है। ये सब स्थान जबलपुर जिले में हैं। मण्डला जिला की सीमा पास में है। समाधि में छब्बीस जनवरी को मेला लगता है।

समाधि में पहुँचने के पहिले बहुत से 'कूर' मिलते हैं। गोंड़ों के स्मारक, पत्थरों के ढेर का 'कूर' होता है। छोटे-छोटे पत्थरों के ढेर को ही कूर कहते हैं। समाधि के पास के कई कूर सिद्ध करते हैं कि कई प्रतापी योद्धाओं ने वीर गति प्राप्त की। समाधि के पास ही रानी के

हाथी 'सरमन' का कूर है। रानी के देहान्त के तुरन्त बाद, हाथी सरमन ने आप ही आप प्राण त्याग दिये। सबसे बड़ा कूर 'बग्घराज' का कूर कहलाता है। क्योंकि वहाँ पर व्याघ्र की पुरानी और खंडित मूर्ति है। प्रथा है कि जब भी कोई व्यक्ति उस कूर की बगल से निकलता है उसको एक छोटी सी पथरिया वहाँ चढ़ाना पड़ता है। चाहे एक ही व्यक्ति को दिन में पाँच सात बेर पथरिया चढ़ाना पड़े। बग्घराज की कूर में मुझे सरस्वती की एक छोटी मूर्ति मिली। मूर्ति केवल ४ × २॥ इंच है। इस स्थान में मेरे मन में विचार आया कि यह ही वीर नारायण की समाधि है। चाहे मेरा विचार बिलकुल गलत हो। वहाँ पर और कोई स्थान ऐसा नहीं है, जिसको वीरनारायण की समाधि समझा जाता हो।

समाधि में रानी की पुरानी खण्डित और जोड़ी गई मूर्ति है। मूर्ति में कला नहीं। हाथी अपनी सूंड़ प्रहार के लिये फैला रहा है। रानी ने दाहिने हाथ में तलवार उठाई है। रानी के पास धनुष है। समाधि में एक नाग मूर्ति रखी है। काले कसौटी जैसे पत्थर की। तीन इंच लम्बी, सवा इंच चौड़ी, आधा इंच मोटी। कला पूर्ण मूर्ति में दो नाग पूछ के बल खड़े हैं। बीच में एक तपस्वी बैठा है। यह नाग मूर्ति सितम्बर १९५६ में नरई नाला में नरई के जुगराज काछी नामक युवक को मिली थी। मूर्ति से नागा पहाड़ में नाग वंश का वैभव सिद्ध होता है।

समाधि में एक गोंड़ साधु रहते हैं। उनका पहिला नाम था हमीर सिंह, ग्राम बुदरा पिपरिया, थाना बीजाडांड़ी। उनका वर्तमान नाम है अमर सिंह, सेवक महारानी दुर्गावती। वे समाधि में दिया, बत्ती करते हैं। पूजा करते हैं। आकाशी वृत्ति है। घर से उनके पुत्र-पौत्र भी अन्न भेज देते हैं। साधु महाशय नाग मूर्ति में विशेष ध्यान देते हैं। समाधि की मरम्मत जबलपुर जनपद ने १९५५ में की। तभी से साधु यहाँ हैं। उसी समय से सड़क बनी और मेला शुरू हुआ। समाधि का फर्श उखड़ रहा है। छप्पर बना ही नहीं। परकोटा में जाली है।

नरई नाला का कूर समाधि के पास तक आ जाया करता है।

अबुलफजल के अकबरनामा का अंग्रेजी अनुवाद बेवरिज ने किया है। उसकी दूसरी पोथी के पेज ३२७-३३३ में इस युद्ध का वर्णन है। रानी दुर्गावती को अपनी सेना का अभिमान था। समीप आने पर

आसफ खाँ ने सुलह का हाथ बढ़ाया। रानी दुर्गावती के देश में जासूसों को और अनुभवी व्यापारियों को भेजा। रानी की आमदनी और खर्च का पता लगवाया। अपरिमित धन का पता लगने पर आसफ खाँ का उत्साह बढ़ा। आसफ खाँ ने सीमा-क्षेत्रों में लूट-मार शुरू की। इस प्रकार युद्ध का आरम्भ, पञ्चमाङ्गी प्रवृत्तियों से हुआ। प्रपंचों की भरमार थी। युद्ध सैनिक बल से, सफलता की आशा, आसफ खाँ को नहीं थी। श्री अनवर सिंह के बयान से भी प्रपञ्चों की पुष्टि होती है।

आसफ खाँ कुछ दिन दमोह में रुका। वहीं से प्रपंचों का जाल फैलाया होगा। अनुमान होता है कि कई स्थानों में लड़ाइयाँ हुईं। लेख है कि पहिला युद्ध सिनगौर से उत्तर काराबाग में हुआ। काराबाग का स्थान निश्चय मैं नहीं कर सका। अनुमान है कि दूसरा युद्ध सिनगौर में, तीसरा गढ़ा में, चौथा नर्रई नाला में हुआ ही और पाँचवाँ तथा अन्तिम युद्ध चौरागढ़ में हुआ। प्रथम तीन युद्धों में लगातार पराजय के कारण रानी ने नागा पहाड़ के दुर्गम शैलों में आश्रय लेना ठीक समझा। मुगल सैनिक मैदान के योद्धा थे। उनको पहाड़ों में गोंड़ सैनिकों से लोहा ले सकना कठिन, अत्यन्त कठिन था। नर्रई नाला के युद्ध में दोनों पक्षों ने जी तोड़ कर युद्ध किया होगा। यदि रानी नर्रई नाला पार कर पातीं, तो नागा पहाड़ में चढ़कर सुरक्षित हो जातीं। दुर्भाग्य से नर्रई नाला में २३ जून १५६४ को इतनी तेज बाढ़ आ गई कि रानी का हाथी सरमन भी, नाला को पार नहीं कर सका। नाला को देखने से नाला की भयानकता समझ में आ जाती है। नाला डोभी के पास से निकलता है। पथरीली भूमि में करीब बारह मील बह चुकने पर समाधिस्थल मिलता है। पहाड़ी और पथरीला क्षेत्र होने के कारण पानी नहीं सोखता। नहीं तो पहिली वर्षा का जल मिट्टी वाली भूमि में सोख ही जाता। नाले के जल में तीव्र प्रवाह रहता है। युद्ध क्षेत्र के पास गहरा भी है। रानी को नाला की भयानकता का पूरा पता रहा होगा, पर ऐसी आशा नहीं रही होगी कि शुरू वर्षा में इतनी भयंकर बाढ़ आ जावेगी। बाढ़ क्या थी, गोंड़ जाति का दुर्भाग्य था।

आसफ खाँ भी समझता रहा होगा कि यदि रानी नागा पहाड़ में चढ़ पाईं, तो आसफ खाँ को मुश्किल पड़ेगी। नाला की बाढ़ से आसफ खाँ को पूरी सहायता मिल गई। वीरनारायण ने तीन बार मुगल सेना को पीछे खदेड़ा। युद्ध प्रायः समाप्त हो गया। गोंड़ों की विजय हो चुकी थी।

दूसरे दिन मुगल सेना के पास तोपखाना आ गया। युद्ध का रुख बदल गया। हारे हुए मुगल जीत गये। जीते हुए गोंड़ हार गये। वीरनारायण को चोट लगी। वीरगति मिली। रानी को तीर लगा। निकाल कर फेंक दिया पर बाण फल भीतर रह गया। दूसरा तीर लगा। दर्द हुआ। क्षत-विक्षत हो गईं। कटार मार कर जौहर किया। सब समाप्त हो गया।

रानी के शरीरान्त से गोंड़ सैनिकों के पैर उखड़ गये। आसफ खाँ दो माह वहीं रहा। गढ़ा में रहा होगा। वर्षा के बाद आसफ खाँ चौरागढ़ के लिये चला। चौरागढ़ में अन्तिम युद्ध हुआ। चौरागढ़ से आसफ खाँ लूट का माल ले गया। चौरागढ़ में जोरदार जौहर हुआ। रानी की सेना में अफगान भी थे। जौहर में अफगान तरुणियाँ भी भस्म हुईं। मुगल और अफगान जातियों का विरोध बाबर और इब्राहीम लोदी के समय से था। हुमायूँ शेरशाह के समय में भी विरोध था। इस युद्ध में भी मुगल और अफगानों का विरोध था। रानी की सेना में गोंड़ों के साथ अफगान सैनिक भी थे। जौहर की पूर्णता के लिये दो अधिकारी नियुक्त हुए थे। एक भोज कैथा (हिन्दू कायस्थ) और दूसरे मियाँ शिकारी रूमी। अबुलफजल ने रानी की तरफ से वीरगति पाने वाले कुछ व्यक्तियों के नाम इस प्रकार लिखे हैं। कानुर कल्यान बखीला, खान जहान डाकित, अधार कायस्थ, मान ब्राह्मण, हाथियों के फौजदार अर्जुन दास बैस, शम्स खान मियाना, मुबारक खान विलुच, चक्रमणि कलचुरि, महारख ब्राह्मण एक लोक गीत में किसी "जगदेव" का नाम मिलता है। आजकल की तरह हिन्दू मुसलमान की वृत्ति नहीं थी।

नर्रई युद्ध का मुगलों पर असर

गोंड़वाना की चढ़ाई अकबर की प्रथम बाहरी चढ़ाई थी। बाज-बहादुर पर किया गया हमला कुछ भी नहीं था। गोंड़वाना में जो धन मिला उस धन से अकबर की बुनियाद ठोस हो गई। अकबर अब पूरी तौर से साम्राज्यवादी हो गया। इसी कारण साम्राज्यवादी अँग्रेज जाति के लेखकों ने अकबर की प्रशंसा की है। यह बिलकुल दूसरी बात है कि साम्राज्य विस्तार को या धन-प्रदर्शन को मनुष्य की सफलता मानना चाहिये या बर्बरता। १५६४ में गढ़ा मण्डला राज्य का धन पाकर तीन वर्ष में १५६७ में अकबर ने चित्तौड़ का सर्वनाश किया। गोंड़वाना के धन से मुगल दरबार ने हिन्दू सूर्य को डुबा दिया। चित्तौड़ के राणा

सांगा ने बाबर को हराकर बाबर की तोपें जब्त की थीं। ये तोपें आज दिन भी चित्तौड़ के किले में रखी हैं। अकबर को रानी दुर्गावती का स्वाभिमान सहन नहीं हुआ। अकबर को चित्तौड़ के राणा का स्वाभिमान सहन नहीं हुआ। जिस प्रकार गढ़ा मण्डला राज्य में अफगान सैनिक ऊँचे पदों पर भी थे उसी प्रकार सम्भव है कि चित्तौड़ में भी अफगान ऊँचे पदों पर रहे हों।

अकबर के दिल में सम्प्रदायवादी और साम्राज्यवादी भावनाएँ प्रबल थीं। रानी दुर्गावती की पराजय से उखड़ते हुए मुगल साम्राज्य की बुनियाद जम गई। जिससे समूचे भारतवर्ष का सांस्कृतिक जीवन खतरे में पड़ गया। खतरे को अलग करने के लिये छत्रपति शिवाजी और गुरु गोविन्दसिंह को खून-पसीना एक करना पड़ा। अकबर के पराक्रम की वृद्धि से और सांस्कृतिक खतरे से समूचे भारत में नैराश्य छा गया। हिन्दुओं के आत्मविश्वास में कमी आ गई। केवल दैवी शक्ति में विश्वास रह गया। दुर्गावती की पराजय के केवल दस वर्ष बाद और चित्तौड़-पतन (१५६७) के केवल सात वर्ष बाद, संवत् १६३१ (सन् १५७४) में दैवी शक्ति की आराधना द्वारा हिन्दू समाज के संगठन के लिये गोस्वामी तुलसीदास जी ने अयोध्या में "रामचरित मानस" लिखा। आसफ खाँ ने रानी दुर्गावती के राज्य की लूट का सामान अपने पास रख कर जौनपुर में रहना आरम्भ कर दिया था। जौनपुर से आसफ खाँ ने अपने मालिक अकबर के विरुद्ध विद्रोह खड़ा किया था। जौनपुर से अयोध्या अधिक दूर नहीं। अतएव अनुमान होता है कि "रामचरित मानस" लिखते समय गोस्वामी जी को आसफ खाँ की हरकतों का और अकबर के भाग्य का पता रहा होगा। उन्होंने रावण की लंका से गोला चलने का वर्णन किया है। उस समय तोपों का युद्ध चल निकला था।

अकबर के पक्ष में भी बहुत कुछ है। हर राजा अपने राज्य का विस्तार करता है। अकबर ने अपने राज्य का विस्तार किया तो उचित ही किया। दिल्ली के राजा पर खास उत्तरदायित्व रहता है कि कोई मातहत राजा दिल्ली के विरुद्ध सिर न उठाने पावे इसलिये अकबर ने सभी मातहतों को पूरा मातहत बना कर अपने राजधर्म का पालन ही किया। चंद्रगुप्त, अशोक, शिवाजी, महाराजा संग्रामसाहि सब ने यही तो किया जो अकबर ने किया। और अकबर के पास तोपें थीं। अकबर के

लिये भाग्य अनुकूल था। जो साम्राज्य विस्तार अकबर की दृष्टि से उचित था वही स्थानीय दृष्टि से उतना ही अनुचित था। अकबर ने विधवा रानी पर हमला करके वीरता नहीं बुजदिली की। अबुलफजल ने असत्य इतिहास लिख कर जले पर नमक छिड़का। अकबर ने यदि बल का प्रयोग विधवा रानी की रक्षा के लिये किया होता, तो उस बल की प्रशंसा होती। गरीब का अपमान करने से और सर्वनाश करने से अकबर का बल और भाग्य अपनी कुपात्रता स्थापित कर चुका। दुर्गावती ने सब कुछ खोकर अमर कीर्ति प्राप्त की। अकबर ने सब कुछ पाकर कलंक भी पाया।

गोंड़ों में वीरता सिद्ध हो गई। वीरता की परिभाषा इतनी ही है कि आत्माभिमान के साथ जीना, मर जाना और मिट जाना। मुगल सेना ने कैसी भी चाली नीति से सफलता प्राप्त की। मिट जाने की वृत्ति और सफलता प्राप्त करने की वृत्ति, इन दो वृत्तियों का संघर्ष सदैव और सर्वत्र रहा है। जो भी जिस मार्ग को उचित समझता है वही मार्ग अपनाता है।

आसफ खाँ ने विजयोन्माद में अकबर के विरुद्ध विद्रोह किया। अकबर को चन्द्रसाहि (नं० ५१) से सन्धि करने में दस गढ़ और मिले। इन दस में से एक गढ़ "बारी" के गोंड़ राजा ने अकबर के विरुद्ध बगावत की। अकबर ने बारी का विद्रोह दबाने के लिये राजासुरजन हाड़ा को भेजा। राजा सुरजन हाड़ा ने सफलता प्राप्त की। उनको इनाम में अकबर ने बनारस और चुनार आदि मिला कर सात गढ़ इनाम में दिये।

जन्म भर की साम्राज्य वृद्धि की लिप्सा से अकबर का घरू जीवन नष्ट हो गया। अकबर के तीन लड़के थे। दानियल, मुराद और सलीम। पहिले दो शराबी और लड़ाकू थे। इतिहास इतना ही जानता है कि शराब पीते थे, लड़ते थे और मर गये। तीसरा सलीम भी शराबी था। जहाँगीर के नाम से गद्दी पर बैठा। सब व्यवस्था नूरजहाँ के हाथ में थी। जहाँगीर में न्याय करने का अद्वितीय गुण था। न्याय का वह अवतार ही था। उसको अबुलफजल की सत्ताइस वर्ष (१५७५-१६०२) की झूठ और चापलूसी से नफरत थी। जहाँगीर ने बुन्देला राजा मधुकर सिंह के पुत्र वीरसिंह देव के द्वारा अबुलफजल को सन् १६०२ में मरवा डाला। सन् १६०२ में जहाँगीर बत्तीस वर्ष का भींगी उमर वाला, समझदार व्यक्ति

हो चुका था। जहाँगीर को अपने पिता अकबर की बर्बर नीति भी नापसन्द थी। जहाँगीर अपने पिता की नीति को अन्याय समझता था। जहाँगीर ने, सन् १६०५ में अपने पिता को विष प्रयोग करवा कर मरवा डाला। मुगल दरबार के सांसारिक वैभव के साथ-साथ घर बरबादी भी हाथ में आई।

नर्रई युद्ध का गोंड़ों पर असर

नर्रई के युद्ध में गोंड़ों की जीत हो चुकी थी। आसफ खाँ का तोपखाना दूसरे दिन आ गया, तब से युद्ध का पाँसा पलट गया। आसफ खाँ जीत गया, जीते हुए गोंड़ सैनिक हार गये। इस बात का अर्थ होता है कि गोंड़ों की सेना में तोपखाना और बन्दूकें नहीं थीं। तोपों का सबसे पहिले प्रयोग बाबर और राणा साँगा के युद्ध में पाया जाता है। बाबर की तोपों को राणा साँगा ने जब्त किया था। वे तोपें आज भी चित्तौरगढ़ में रखी हैं। उनको देखने से ज्ञात होता है कि राणासाँगा के युद्ध (करीब १५२६) से पहिले भी तोपें बनती रही होंगी। ऐसा समझा जा सकता है कि दिल्ली के आस-पास तोपों का प्रचलन रहा होगा। पर यह प्रचलन इतनी दूर गोंड़वाना में उन दिनों जब यातायात के साधन कम थे नहीं हो पाया रहा होगा। अर्थात् गोंड़ सैनिकों के पास तोप नहीं रही होंगी। इस निष्कर्ष को यदि मान लिया जाता है, तो अबुलफजल ने जो कहा है कि रानी दुर्गावती बन्दूक से शेरों का शिकार किया करती थीं वह कथन बिलकुल नहीं जमता। कवि की बात दूसरी है। गोस्वामी जी ने लिखा है कि रावण की लंका में से तोप के गोले चलाये गये। विषय अध्ययन के लायक है कि क्या गोंड़ सेना के पास इस युद्ध में तोपें थीं। क्या तोपों के न रहने के कारण ही गोंड़ हारे?

रानी दुर्गावती की वीरगति से महाराजा संग्रामसाहि के बावन गढ़ों का साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। मोटे रूप से तीन हिस्से हो गये। एक हिस्सा उन दस गढ़ों का मानना चहिये जो चन्द्र शाह (नं० ५१) ने अकबर को नजराना में दिये। दूसरा हिस्सा उस सत्तावन परगनों का जो गढ़ा के राजाओं के पास बचा। तीसरा हिस्सा उन छोटे-छोटे राजाओं का जो अभी तक गढ़ा राज्य के करद थे, अब स्वतन्त्र हो गये।

पहिले हिस्से के दस गढ़ों के राजा या उपराजा अब सीधे-सीधे

मुगल दरबार के मातहत हो गये। उनके सजातीय सम्बन्ध समाप्त हो गये। सदैव के लिये बिछुड़ गये। अब चाहे अपनी गोंड़ जाति में रहें, चाहे अपने नये स्वामी—मुगल दरबार—की जाति में शामिल होकर मुगल दरबार के कृपा-पात्र बन जावें। इन दस गढ़ों के नाम चन्द्र शाह (नं० ५१) प्रसंग में हैं। दूसरे हिस्से के सत्तावन परगनों की सूची आगे दी गई है। तीसरे हिस्सा के स्वतन्त्र होने वालों का एक उदाहरण हरदा गढ़ हैं। जो हरदा गढ़ महाराजा संग्रामसाहि के समय स्वतंत्र था, अब दुर्गावती के बाद फिर से स्वतंत्र हो गया। हरदा गढ़ और चौरागढ़ केबीच में केवल ६५ मील की दूरी है।

ऐसा समझ लेना भूल होगी कि महाराजा संग्रामसहि का समूचा साम्राज्य मुगल दरबार के मातहत हो गया। पहिले हिस्से के दस गढ़ मिलने के अलावा मुगल दरबार को कर देने वाला केवल सत्तावन परगनों का छोटा-सा राज्य था। गोंड़ों की राजधानी गढ़ा में मुगल दरबार के एलचियों की बला लग गई। एलचियों की बला नब्बे वर्ष तक कायम रही। शाहजहाँ ने १६५५ में अन्तिम एलची, इफ्तखार खाँ को गढ़ा तुयुलदार मुकर्रर किया था। उस समय की बोली में मुगलों को "तुरुक" कहते थे। परिशिष्ट में तुरुक खेड़ा देखिये।

पराजय के बाद जो राजा स्वतन्त्र हो गये उनका कुछ वर्णन अकबर-नामा (बेवरिज का अनुवाद, पोथी दो पेज ३२४) में मिलता है। कि :—"पहिले कोई एक छत्र राजा नहीं था। बहुत से राजा और राय थे। आज जब समय के फेर से देश पुराने राजा के वश में नहीं है अर्थात् मुगल राज्य में आ गया है बहुत से स्वतन्त्र राजा हैं। जैसे गढ़ा का राजा, करोला का राजा, हरया का राजा, सलवानी का राजा, डनकी का राजा, खटोला का राजा, मुगदा का राजा, मण्डला का राजा, देवहार का राजा, लांजी का राजा।" इस उक्ति से स्पष्ट है कि मुगल-विजय के कारण राजाओं के आन्तरिक शासन में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। कई छोटे राजाओं का नैतिक बल और आत्मविश्वास चाहे कम हो गया रहा हो। कई का झुकाव इस्लाम की तरफ भयवश या स्वार्थ वश हो गया होगा। इस्लाम की अच्छाइयों के कारण या अपने पैतृक धर्म की खराबी के कारण नहीं। गढ़ा मण्डला के राजवंश ने सदैव अपने पैतृक धर्म को निबाहा। गोंड़ जाति के आत्माभिमान की कोई कीमत ही नहीं रह गई। रानी ने पराजय के अपमान से बचने के लिये जौहर किया था। देहरी पर

आत्मसमर्पण की या शाही हरम की बात बुद्धि और तर्क के विरुद्ध है। जिस जाति की रानी ने अपने धर्म पर आँच न आने देने के लिये नष्ट हो जाना ठीक समझा, वही जाति आज थोड़े से सांसारिक प्रलोभनों के बदले में अपना धर्म बेच रही है। गोंड़ जाति के धर्म को खरीदने के लिये आज मण्डला जिला में गोंड़ों की सस्ती आत्मा के बाजार लग रहे हैं। इन बाजारों को धर्म प्रचार के गिरजाघर कहते हैं।

अबुलफजल ने जले पर नमक घिसा। उसने चौरागढ़ के जौहर के बारे में जौहर के करीब तीस वर्ष बाद इस तरह लिखा है, जैसे आज ही की बात हो। जैसे उसने अपनी आँखों से देखा हो। वह लिखता है :—"एक बहुत आश्चर्य की बात हुई। आग लगाई जाने के चार दिन बाद जब दरवाजे खोले गये जब गुलाब की सब कलियाँ जल कर राख हो चुकी थीं तब दरवाजा खोलने वालों ने दो स्त्रियों को जीवित पाया। उनके और आग के बीच में लकड़ी का एक बड़ा कुन्दा आ गया था इससे वे जलने से बच गईं। उन दो में से, एक रानी दुर्गावती की बहिन कमलावती थी और पूरागढ़ के राजा की कन्या थी जिसको राजा (वीर-नारायण) के साथ विवाह करने को लाया गया था, पर विवाह नहीं हो पाया था। उस भयंकर अग्नि से जीवित निकल चुकने पर इन दोनों स्त्रियों को शहंशाह अकबर की देहरी चूमने के लिये भेज दिया गया। इस प्रकार इन दोनों स्त्रियों ने अपरिमित इज्जत प्राप्त की।"

उपरोक्त उक्ति में बहुत बातें बनावटी हैं। सफाई बहुत अधिक होने से असत्यता सिद्ध हो जाती है। मण्डला जिला के गजेटियर में थोड़ी इबारत में यह वर्णन है। पूरी उक्ति नहीं है। पूरी उक्ति से असलियत समझ में आ जाती। बनावट खुल जाती।

गढ़ामण्डला के राजवंश का दुर्भाग्य जो इस युद्ध में शुरू हुआ उस दुर्भाग्य ने सन् १७८० में सुमेद शाह नं० ६३ के समय में जाकर दम लिया।

सत्तावन परगनों की सूची

इस सूची में अबुल फजल ने भोपाल आदि दस गढ़ों के नाम नहीं दिये हैं। सूची अपूर्ण और अस्पष्ट होने का दोष अबुल फजल को देना ठीक नहीं। उन दिनों जितने साधन थे उनके हिसाब से बेचारे अबुल फजल ने लिखा। आज की तरह नकशा नहीं थे। आज भूगोल की

कसौटी में इस वर्णन को अस्पष्ट कह देना आसान है। उन दिनों की स्थिति देखते हुए इतना ही बहुत है।

सूची में चार कालम हैं। पहिले में क्रम संख्या है जो २९ तक है। इतने में ही सत्तावन पूरे हो जाते हैं। दूसरे कालम में अकारादि क्रम से नाम हैं। तीसरे कालम में, महलों की संख्या और कहीं-कहीं एक दो शब्दों में अबुलफजल कृत वर्णन है। चौथे कालम में मैंने स्थान निर्णय के प्रयत्न किये हैं। अबुलफजल ने सूची का शीर्षक—"मालवा के सूबा में-गढ़ा सरकार में" लिखा है। सूची के कुछ स्थानों का वर्णन परिशिष्ट में विस्तार से मिलता है।

क्रम संख्या	नाम	वर्णन	स्थान निर्णय के प्रयत्न
१	२	३	४
१	आमोदगढ़	पहाड़ी पर ईंट का किला	परिशिष्ट में
२	केदार पुर वगैरह	१२ महाल	मण्डला से २० मील वायव्य, सिवनी जिला में
३	खटोला		परिशिष्ट में
४	गढ़ा	मजबूत किला है	
५	चांदपुर चन्देरी	दो महाल	चांदपुर डिंडौरी के पास है
६	जेठा		
७	जेतगढ़ भल-देवी और पासका क्षेत्र	तीन महाल	
८	ढामेरीढामेरा	दो महाल	
९	दरकरा		
१०	दामोदाह		वर्तमान दमोह
११	देवगाँव		परिशिष्ट में
१२	देवहार हरभट	दो महाल	परिशिष्ट में
१३	बनाकर और अमरेल	दो महाल पत्थर का किला है	

१	२	३	४
१४	बाखराह		
१५	बाढ़, साना झामाहर	तीन महाल	
१६	बाबई		होशंगाबाद जिला में, एक नरसिंहपुर जिला में,
१७	बारी और टानकर	दो महाल	
१८	ब्यावर और नेजली	दो महाल	शायद बिजावर हो
१९	बीरागढ़	मजबूत किला	परिशिष्ट में, दमोह का बैरागढ़ होगा, भोपाल के पास वाला दे चुके थे।
२०	भटगाँव		
२१	मण्डला		
२२	रतनपूर परहार	दो महाल	रतनपुर एक बिलासपुर जिला में है। एक अंजनिया के पास है। बरेला के पास पड़वार है। परहार नहीं।
२३	रसूलिया		
२४	रानगढ़		सागर जिला में है। सागर से आठ मील आग्नेय।
२५	रानगढ़ सारंगपूर	दो महाल	परिशिष्ट में
२६	लांजी करोला और डुंगरोला	३ महाल	लांजी प्रसिद्ध है। करोला उस हिस्सा को कहते हैं जो लालबर्रा और वारा सिवनी के आस-पास है। डुङ्गरोला या डोंगरताल है या डूङ्गर टोला है।
२७	शाहपुर चौराकाह	२ महाल मजबूत किला है।	प्रसिद्ध चौरागढ़ से छः मील में शाहपुर है। एक शाहपुर मण्डला जिला में है, पास में चौरागढ़ भी है।
२८	सीतलपुर		भवई के पास सीतल पहरा फारिष्ट विलेज है।
२९	हरारिया देवगढ़	पहाड़ में लकड़ीका किला है	हरारिया शायद हरदी गढ़, हरदा गढ़, हरया गढ़, (देवगढ़ की पहिली राजधानी) है।

नर्रई युद्ध का लोक गीत

रानी दुर्गावती के युद्ध और जीवन चरित का अभी तक एक ही पहलू प्रसिद्ध हो पाया है। केवल वह पहलू जिसका वर्णन अबुलफजल

ने किया है। जिस जनता का सर्वनाश हुआ उस जनता का दृष्टिकोण अभी तक अज्ञात है। प्रस्तुत लोकगीत में अबुलफजल की तरह अकबर की तरीफ नहीं अकबर के विरुद्ध प्रतिक्रिया है। पशुबल के द्वारा आत्माभिमान का जो तिरस्कार हुआ है, उस तिरस्कार का उत्तर है। अपढ़ जनता की ऊँचे दरजे की कल्पना है। दिल की टीस है। पराजय की जलन है। बदले की भावना है। दिल जले की आह है। लाचारी की गालियाँ हैं। जली हुई रस्सी की ऐंठ है। अशक्तता के सब अनुभाव हैं। जितने व्यक्तियों ने अबुलफजल को या विन्सेण्ट स्मिथ को पढ़ा है, उनसे कई गुने अधिक व्यक्तियों ने इस लोक गीत को गत कई सौ वर्षों में सम्भवतः गत चार सौ वर्षों में झूमकर, चिल्लाकर, मस्त होकर गाजाबाजा के साथ सामूहिक रूप से गाया है। प्रस्तुत लोक गीत में ऐतिहासिक दोष है कि युद्ध में अकबर का आना बताया गया है जब कि अकबर स्वतः युद्ध में नहीं आया था। लोक गीत स्वयं इतिहास नहीं होता, इतिहास में सहायक होता है। लोक गीत में जनता की मनोवृत्ति देखी जाती है। लोक गीत का भावार्थ इस प्रकार है :—

"गढ़ के लिये गढ़ा में युद्ध रचा है। रानी की तरफ के कर उगाहने वालों ने दिल्ली में अकबर से कर माँगा। अकबर तुम कैसा राज्य करते हो ? राज्य करने की पत (शैली) दुर्गादेवी से सीखो। सुनकर अकबर ने घोड़ा कसा। शाहजादा दिल्ली से पाँचों पीरों की मानता करके चला। छोटे पीर को मेढ़ा चढ़ने की और बड़े को बकरा चढ़ाने की मानता माना। पहिला खेमा बमतर (?) में पड़ा, दूसरा खेमा बगीचा में, तीसरा खेमा सतलज नदी के किनारे पड़ा। सतलज नदी का पाट सात कोस का बढ़ गया। धर्म की नाव और पतवार बना कर पार हुआ। सूरज गढ़ घेर लिया। ऐसा घेरा कि कत्ता भी बाहर नहीं जा सका।

दुर्गादेवी ! आदि भवानी !! आप सो रही हैं या जाग रही हैं। अकबर की चढ़ाई हुई है। आने वाले को आने दो। अच्छी तरह सम्मान करो। उसकी बीबी खुद वापिस बुला लेगी। अकबर से पानी भरावेंगे।

अकबर के साथ में एक लाख भाई भतीजे हैं। दो लाख पैदल सेना है। नौ लाख हाथी घोड़ा हैं। दस लाख सवार हैं। हमारी दुर्गादेवी "सिखरना" अकेली है। पवन और गङ्गा को आज्ञा दूँगी, शत्रु जल

जायेगा। उनके हाथियों पर सिंह लदाये जावेंगे और घोड़ों पर भौंरे लदाये जावेंगे। (यहाँ पर सिंह शब्द, दो अर्थ से है। एक यह कि गोंड़ राजाओं के राज-चिन्ह में हाथी पर सिंह है और दूसरा अर्थ यह कि देवी का वाहन सिंह होता है। भौंरा शब्द से दुर्गासप्तशती के वाक्य की तरफ इशारा है कि जब अरुण नामक दैत्य महाबाधा करेगा, तब मैं भ्रमरी होकर उसे पराजित करूँगी) हाथी जल गये। घोड़े जल गये। दल में अल्लाह-अल्लाह कह कर पनाह माँग रहे हैं। तम्बू जल गये। कनातें जल गईं। बीबियाँ, खुदा-खुदा निरती हैं।

अकबर सामने के पहाड़ में चढ़े। वहाँ भी आग लग गई। दुर्गादेवी ने अपने लंगुरे (सेवक) को आज्ञा दी कि अकबर को बाँध लाओ। सेवक बाँध लाया। अकबर की कलाइयों में काँच की चूड़ियाँ पहिराईं गईं। रेशमी फरिया उढ़ाई गई। सोने का घैला दिया गया। चाँदी की गुढ़ली दी गई। अकबर पानी भरने को चले। जहाँ-जहाँ अकबर ने पानी भरा वहीं पानी पत्थर हो गया। माता मेरी अब की चूक क्षमा कीजिये। अब आपके देश में न आऊँगा। अकबर ने चट्ट से घैला भरा और पट्ट से (झटका से) उठा लिया। दुर्गादेवी का स्थान बावन गङ्गा की ऊँचाई में है। अकबर से चढ़ा नहीं जाता। अकबर ने विनौंची में घैला रखा। और गुढ़ली को पौर दरवाजा पर रखा। माता हम आपका यशगान करते हैं और आपके चरणों में अपना चित्त लगाते हैं।"

देवी की स्तुति के ऐसे लोकगीत "जस" या "भगतें" कहलाते हैं। नवरात्रों में गाने की चाल है। चेचक के प्रकोप को शान्त करने को भी गाने की चाल है। लोकगीत का पाठ इस प्रकार है :—

एरी माँ ! जुज्झ रचो है, गढ़खौं, गढ़े, हो माँ। टेक।

कहना के तुम चले उगहुआ, कहाँ उगाहन जाँय।
गढ़ दिल्ली में चले उगहुआ, नगर उगाहन जाँय॥

मारे कूटे चले उगहुआ, दुरगन पतियाँ छुड़ाय।
तुम का राज करत हौ अकबर, दुरगन पतियाँ छुड़ाँय॥

इतना सुन के उठे अकब्बर, तुरतई घोड़ा पलान।
झपट के घोड़ा पलाने अकबर, लपट के भये असवार॥

गढ़ दिल्ली से चलो सहजादो, पाँचों पीर मनाय।
छोटे परिखें मिढ़वा, बकरा बड़े परिखें देय॥

जीत भवन घर आऊँ मेरी माता, दोहरे देऊँ चढ़ाय।
पहिलो डेरो परो बमतर, गहरो हनो है निसान॥

दूजो डेरो परो बाग में, घूमें तवल निसान।
तीजो डेरो नदी सतरंज, तमुआ दये हैं तनाय॥

सात कोस नदी सतरंज बाढ़ी, केहि विधि उतरौं पार।
सत्य धर्म की नैया बनाये, धर्म बनाये किरवार॥

बैठे अकवर हो गये पैले, लये हैं सूरजगढ़ घेर।
ऐसे घेरे सुरजगढ़, माया, कुकरा न बाहर जाय॥

कुकरा जाय पकड़ मोरी माया, केवल के दरवार।
सोवै कि जागै, मोरी, आदि भवानी, चढ़े अकव्वर साहि॥

आवन वारे खें आवन दइयो, भलो करौ सनमान।
बीबी उनकी खुदई बुलाहैं, अकवर पनिया भराय॥

कै लख उनके भइया भतीजे, कै लख पाँव पयाद।
एक लख उनके भइया भतीजे, दो लख पाँव पयाद॥

कै लख उनके हथिया घुड़ला, कै लख दिल्ली असवार।
नौ लख उनके हथिया घुड़ला, दस लख दिल्ली असवार॥

नौ लख उनके हथिया घुड़ला, मोरी सिखरना अकेल।
पवन गंगा खें आज्ञा देहों, देहैं जलाय॥

हथिया उनके सिंघा लदेहैं, घुड़ला भौंरा लोग।
जर गये हथिया जर गये घुड़ला, दल में परे अल्लाह॥

जर गये तमुआं, जरी कनातें, बीबी खुदा-खुदा निररांय।
आगे अकवर चढ़े टौरिया, ओही बन लग गई आग॥

उठ उठ रे मोरे लंगुरवा, अकवर खें ल्याओ बाँध।
सई सांझ से चले बारे लंगुरे, अकवर ले आये बाँध॥

काँच की चुरिया, पाट की फरिया, अकवर दये पहिराय।
सोने छयलवा, रूपे गुड़रिया, अकवर पनियाँ जाँय॥

जहाँ-जहाँ अकवर भरे घयलवा, ओही पत्थर हुई जाय।
अबकी चूक बगस मोरी माता, अब न आऊं तोरे देस॥

चट्ट के भरे घयलवा अकबर, पट्ट के लये उठाय।
बावन गंगा की ऊँची घटिया, अकबर चढ़ो न जाय॥
घयलवा धरे घिनौंची अकबर, गुड़री पौंर दुआर।
सुमर-सुमर जस गइये माता, रहे चरन चित लाय॥
ए री माँ! जुज्झ रचो है, गढ़ खौं, गढ़े, हो माँ। टेक।

स्मारक

रानी दुर्गावती का कहीं कोई स्मारक अवश्य रहा होगा। अभी तक पता नहीं लग पाया।

समाधि में जो मूर्ति है वह पुरानी अवश्य है। अतएव स्मारक कही जा सकती है। कला रहित है। आधुनिक जनता और अच्छा स्मारक पसन्द करती है।

मधुपुरी गाँव में नर्मदा तट में एक स्त्री-मूर्ति ढाल तलवार से लैस है। संभव है कि मूर्तिकार ने रानी दुर्गावती की मूर्ति बनाने के प्रयत्न में इसे बनाया हो। यह मूर्ति भी कला रहित है। इसको भी प्रमाण नहीं माना जा सकता।

या स्मारक बनवाने का काम अभी बाकी है।

गौर नदी के पुल से समाधि-स्थल नरई नाला तक जो पक्की सड़क बन रही है वह सड़क रानी दुर्गावती का स्मारक नहीं कही जा सकती। जितनी अधिक कीमत में सड़क बनी और बन रही है. यदि बनवाने वाले चाहते तो उतनी ही कीमत में रानी दुर्गावती का स्मारक भी बन जाता। मगर काम तो सरकारी करना था। जैसे सरकार किसी दूसरे की हो। देश का दुर्भाग्य है कि लोग अपनी सरकार को भी पराई मानते हैं।

दिनांक तेईस जून उन्नीस सौ चौंसठ को, रानी दुर्गावती की मृत्यु-तिथि की चतु: शताब्दि मनाई जा सकती है। रानी दुर्गावती का स्मारक ग्रन्थ प्रकाशित किया जा सकता है। समाधिस्थल में मेला हो सकता है। उनके प्रजाजनों के वंशजों की सभा हो सकती है।

रानी दुर्गावती का सच्चा स्मारक विश्वविद्यालयों के शिक्षकों और विद्यार्थियों द्वारा बनेगा। अब इतिहास के विद्वानों को गोंड़ राजवंश के अध्ययन का समय आ गया है। अभी तक इतिहास के विद्वानों ने महाराजा संग्रामसाहि, दुर्गावती और हिरदैसाहि पर खोज नहीं की है। इस उपेक्षित क्षेत्र को हाथ में लेना है। वे ही स्मारक बना सकेंगे।

(६) हिरदैसाहि के पहिले

चन्द्रसाहि नं० ५१ (१५६४-१५७६)

रानी दुर्गावती की पराजय, वीरनारायण (नं० ५०) की वीरगति, चौरागढ़ का जौहर, आसफ खाँ द्वारा लूट के बाद सब अन्धकार हो गया। गढ़ामण्डला राज्य का कोई राजा नहीं रह गया। प्रजा ने कोई क्रान्ति नहीं की। प्रजा बिलकुल सन्न हो गई।

मुगल दरबार ने जीत तो लिया। पर जीते हुए इस अञ्चल की व्यवस्था का प्रश्न उपस्थित हुआ। मुगल दरबार को इतना अवकाश नहीं था कि इस जङ्गली क्षेत्र में खुद रहकर शासन चलाते। मुगल दरबार समझता था कि जिस प्रकार आसफ खाँ ने मुगल दरबार के विरुद्ध जौनपुर से बगावत खड़ी की उसी तरह चाहे जो भी बगावत कर सकता है। मुगल दरबार उत्सुक था कि किसी स्थानीय व्यक्ति के हाथ में शासन व्यवस्था सौंप कर मुगल दरबार निश्चिंत हो जाय, बड़प्पन बना रहे, सालाना टाकोली मिलती रहे, इज्जत होती रहे और आन्तरिक शासन की परेशानियों से मुगल दरबार बचा रहे।

ऐसे व्यक्ति की तलाश में महाराजा संग्रामसाहि के द्वितीय पुत्र, दलपति के छोटे भाई चन्द्र साहि को सामने लाया गया। मुगल दरबार यही चाहता था। चन्द्रसाहि को गढ़ामण्डला का राजा मुगल दरबार ने आसानी से मान लिया। नजराना में मुगल दरबार को लूट का जो माल मिल चुका था उसके अलावा दस गढ़ और मिले। मुगल दरबार का सिर दर्द कम हो गया। अप्रत्याशित लाभ हुआ। उपजाऊ और अधिक आमदनी का क्षेत्र नजराना में मिला। बंधी हुई टाकोली की आमदनी भी होने लगी। उन दस गढ़ों के नाम हैं:—कारूबाग, कुरवई, गनौर, चौकीगढ़, बारी, भवरासो, भोपाल, मकराई, रायसेन और राहतगढ़। अभी तक ये दस गढ़ गढ़ामण्डला के गोंड़ी राज्य के आधीन थे। अब मुगल दरबार के मातहत हो गये। कोई आश्चर्य नहीं, यदि इन दस गढ़ों में से कुछ ने इस्लाम स्वीकार करना उचित समझा हो।

कहाँ महाराजा संग्रामसाहि की स्वतन्त्र उपाधियाँ, महाराजा और शाह की और कहाँ चन्द्रसाहि की ये दोनों करद उपाधियाँ। दोनों स्थितियों में बहुत अन्तर है। उपाधियाँ वे ही हैं। रामनगर के शिलालेख में चन्द्रसाहि की प्रसंशा पद्य नं० २६ और २७ में है।

एक प्रश्न विवादग्रस्त है कि मुगल दरबार और चन्द्रसाहि के बीच में बिचहाव का पार्ट किसने अदा किया। अबुलफजल के मत से चूड़ामणि वाजपेयी की मध्यस्थता से बातचीत हुई। चूड़ामणि वाजपेयी सर्वे पाठक के वंशज थे। अर्थात् इस समय तक वाजपेय यज्ञ हो चुका था। तब वाजपेय यज्ञ का समय महाराजा संग्रामसाहि के शासन काल में निर्धारित होता है। पं० गणेशदत्त पाठक के मत से आसफ खाँ अपने साथ में पुरोहित दामोदर ठाकुर (महेश ठाकुर के छोटे भाई) और दीवान अधारसिंह कायस्थ को ले गया था। और इन्हीं दोनों की मध्यस्थता से बातचीत हुई। पर अबुलफजल के अनुसार दीवान अधार सिंह कायस्थ ने नरई युद्ध में वीरगति प्राप्त की थी, और इस समय जीवित नहीं थे। युद्ध के वर्णन से ऐसा ही जंचता है कि दीवान अधारसिंह ने नरई युद्ध में वीरगति प्राप्त की। बिचहाव के व्यक्तियों के निर्णय पर से वाजपेय यज्ञ का समय और अधारसिंह की मृत्यु का समय निश्चित करने में सहायता मिलेगी। स्लीमैन ने (J. A.S.B. for agust 1837, Vol. VI. part II, page 630 में) चूड़ामणि वाजपेयी की मध्यस्थता का उल्लेख किया है। पं० गणेशदत्त पाठक कहते हैं कि चन्द्रसाहि ने मदनमहल में राज्य स्थान बनाया। कुछ समय अधारसिंह रहे। उनके बाद उनका दौहित्र दीवान हुआ।

मधुकरसाहि (नं० ५२) (१५७६-१५६०)

रामनगर शिलालेख में मधुकरसाहि की कीर्ति पद्य नं० २६ और ३० में है। गढ़ामण्डला राजवंश के ये पहिले राजा थे जिसने मुगल दरबार में जाकर मुजरा किया।

पं० गणेशदत्त पाठक का कहना है—"संवत् १६३२ में बाप चन्द्रसाहि को और अपने बड़े भाई को मार कर मधुकरसाहि राजा हुए।" मधुकर साहि ने दमोदर ठाकुर से राजतिलक देने को कहा। उसने इन्कार किया। "वे बरखास्त किये गये। उनकी बारह हजार सालाना की माफी बन्द हो गई। माधव पाठक ने तिलक दिया और उसी दिन से पुरोहित व मंत्री पद पर नियुक्त हुए। राजा ने पुरस्कार स्वरूप उनको वाजपेय यज्ञ करने का खर्च दिया। और उसी दिन से वे वाजपेयी कहलाने लगे। दीवान ध्रुमांगद कुरमी हुआ। अधार के वंश वाले ने दीवानी छोड़ दी। इस प्रकार यह राज्य कुछ दिन अच्छी तरह चला। राजा को कुछ कष्ट

हुआ। इसी से मण्डला से चार कोस दूर देवग्राम नामक जमदग्नि का स्थान है वहाँ पिप्पल के वृक्ष में कोल बना कर घुसकर, आग लगा कर उन्होंने प्राण त्याग कर दिया।"

इस उक्ति से भी वाजपेय यज्ञ का समय करीब पचास वर्ष बाद में स्थिर होता है। वाजपेय यज्ञ यदि महाराजा संग्रामसाहि के समय में किया गया तो सन् १५०० के और १५४० के बीच में हुआ। यदि मधुकर साहि के समय में किया गया तो सन् १५७५ में हुआ।

परिशिष्ट में देवगाँव और मधुपुरी देखिये।

प्रेमसाहि (नं० ५३) रामनगर शिलालेख के पद्य नं० ३१ में इनका नाम प्रेमनारायण (१५६०-१६३४) लिखा है। और पद्य नं० ३२ और ३३ में प्रेमसाहि लिखा है। इन तीन पद्यों में प्रेमसाहि की प्रशंसा है। प्रेमसाहि के पुत्र हिरदेशाहि थे, जिन्होंने शिलालेख टंकित कराया। अतएव अपने आश्रयदाता हिरदेशाह के पिता की स्तुति शिलालेख में अच्छी की गई है।

प्रेमसाहि के समय में गोंड़ राजाओं का वैभव फिर से बढ़ने लगा था। इस वैभव में शान-शौकत, ऐश-आराम और चाटुकारिता थी। प्रेमसाहि के सम्बन्ध में दो और प्रमाण मिलते हैं। एक सन् १५६४ का सती लेख जिसका वर्णन रायबहादुर हीरालाल ने जबलपुर ज्योति के पेज ११६ और १५० में लिया है। सती लेख अमोदा जिला जबलपुर का है। प्रेमसाहि को महाराजाधिराज कहा गया है।

दूसरा प्रमाण जहाँगीर नामा में मिलता है कि सन् १६१७ में प्रेम साहि ने जहाँगीर के सामने मुजरा करके सात हाथी नजराने में दिया। एक हजार पैदल और पाँच सौ सवारों का मनसब दिया गया और अपनी जागीर (गढ़ा में) वापिस जाने की इजाजत दी गई। यहाँ एक बात निश्चित हो जाती है कि प्रेमसाहि सन् १६१७ में मुगल दरबार से वापिस आये।

लोकगीतों में प्रेमशाह के वैभव का वर्णन शराब पीने में और लापरवाही में बताया गया है। श्री अनवरसिंह के बयान से भी इसकी पुष्टि होती है। गोंड़ राजाओं के कीर्ति-गायक (चारण) पठारी जाति वाले राजा प्रेमशाह की कथा गाकर सुनाते हैं। ऊँचे दर्जे का लोक-गीत है। भाव इस प्रकार है।

प्रेमशाह गढ़ा में राज्य करते थे। शानदार दरबार लगा। मखमल के गद्दे बिछे। मोतियों की झालरें लटकीं। दरबार में कई राजा और मुसाहिब थे। राजा और सब दरबारियों ने दारू पीना शुरू किया। बारह वर्ष बीत गये। दारू पीते रहे। राज्य की हालत खराब होने लगी। महलों की मरम्मत नहीं हो सकी। महल गिरने लगे। प्रजा से लगान वसूल नहीं हो सकी। राजा गरीब हो गये। गरीबी में राजा जंगल से लकड़ी ढोने लगे। राजा प्रतिदिन जंगल से लकड़ी का डूंड़ लाकर, कलार को दें, तब कलार दारू दे। एक दिन राजा को जंगल में दफीना मिला। उसमें हीरा थे। राजा ने कलार को हीरे दे दिये। हीरों के बदले में कलार ने एक कुड़े कोदों दिया। राजा खेत जोतने लगे। रोज रानी खेत में राजा के लिये पेग ले जाती थी। एक दिन रानी के पैर में पत्थर की ठोकर लगी। वह पारस पत्थर था जिससे रानी की एक पैरी सोने की हो गई। दूसरी पैरी पूर्ववत् रही आई। पेग पीते-पीते राजा की नजर रानी की पैरी में पड़ी। राजा ने कारण पूछा। रानी ने ठोकर लगना बताया। स्थान देखा। परीक्षा ली। निश्चित हुआ कि पारस पत्थर ही है। राजा पारस पत्थर को घर ले आये। प्रजा से लगान लेने लगे। लांघामर्दा कोटवार को हुक्म दिया कि 'ऐलान कर दो कि राजा का लगान रुपया पैसा में अदा नहीं होगा। लगान लोहा में लिया जायगा।' खूब-सा लोहा इकट्ठा करके सबका सोना बना लिया। राजा फिर से धनवान हो गये। सो, हे! गोंड़ बन्धु, पठारी का आशीर्वाद है कि आप भी उसी प्रकार धनवान हो जावें। इस लोकगीत में इतिहास की झलक है। और मद्य-निषेध का कीमती उपदेश है। रामनगर शिलालेख के पद्य नं० ३३ में "पूर्व प्रभाव" शब्द से भी प्रेमशाह की गरीबी का और दफीना पाने का आभास मिलता है।

प्रेमसाहि की हत्या, (१६३४)

जहाँगीर के मित्र ओड़छा के राजा वीर सिंह बुन्देला ने जहाँगीर की साजिश से १६०२ में अबुलफजल की हत्या करके जहाँगीर की कृपा प्राप्त की थी। १६०५ में जहाँगीर ने विष प्रयोग करके अपने पिता अकबर को मरवा डाला था। १६१७ में जब प्रेमसाहि जहाँगीर के दरबार में थे, तब वहाँ ओड़छा के राजा वीरसिंह ने प्रेमसाहि का निमन्त्रण किया. पर ये नहीं गये। वीरसिंह को प्रेमसाहि पर क्रोध हुआ। वीरसिंह

अपनी मृत्यु १६२७ तक अर्थात् दस वर्षों में अपना क्रोध नहीं शान्त कर सके। मरते समय वीरसिंह ने अपने तीनों पुत्रों को प्रेमसाहि से बदला लेने का आदेश दिया। तीन पुत्रों के नाम—पहाड़सिंह, जुझारसिंह और हरदौल लाला थे। वही हरदौल लाला बुन्देलखण्ड में देवता के समान पूजे जाते हैं। प्रेमसाहि से बदला इस बात का कि प्रेमसाहि ने मेरा अपमान किया है। सो या तो तुम लोग प्रेमसाहि को मार डालना या खुद मर जाना। पिता की आज्ञा मानकर पहाड़सिंह और जुझारसिंह ने प्रेमसाहि पर हमला किया। प्रेमसाहि चौरागढ़ में चले गये। चौरागढ़ घेर लिया गया। सुलह की बातें चलीं। जुझारसिंह ने प्रेमसाहि के शरीर की रक्षा की सौगन्ध खाकर अकेले प्रेमसाहि को सुलह की बात करने के लिये अपने खेमे में बुलाया। प्रेमसाहि ने सौगन्ध पर विश्वास करके बिना अंगरक्षक के केवल अपने मंत्री जयगोविन्द वाजपेयी के साथ शत्रु जुझारसिंह के खेमे में प्रवेश किया। वहाँ जुझारसिंह द्वारा नियुक्त हत्यारों ने धोखे से प्रेमसाहि की हत्या की।

उस समय पहाड़सिंह अपने राज्य में चले गये। और जुझारसिंह चौरागढ़ में विजेता की हैसियत से रहे आये। यह खबर प्रेमसाहि के पुत्र हिरदैशाह को मिली 'जो उन दिनों दिल्ली दरबार में थे। वे चौरागढ़ आये। रास्ता में हिरदैशाह को कृष्णगढ़ में पुरानी धाय मिली। उसने मुहरों के टाँके का पता बताया। जिससे हिरदैशाह को सेना सजाने में सहायता मिली। हिरदैशाह ने जुझारसिंह पर धावा बोला। कोलुरी (जिला नरसिंहपुर) के पास घमासान युद्ध हुआ। जुझारसिंह हारे। उनका सिर काट लिया गया। परिशिष्ट में देखिये जुझारी। चौरागढ़ फिर से हिरदैशाह के कब्जे में आ गया। चौरागढ़ से हिरदैशाह ने जुझारसिंह की विधवा को इज्जत के साथ ओड़छा भेज दिया। इसका असर (ओड़छा) बुन्देलखण्ड के राजकुटुम्ब और जनता पर इतना अच्छा पड़ा कि उनने गढ़ा मण्डला राज्य पर कभी भी हमला न करने का व्रत ले लिया। इस युद्ध में सहायता देने के बदले में हिरदैशाह ने भोपाल के शासक को ओपद्रगढ़ का किला और राज्य बतौर इनाम के दिया। मुगल इतिहासकारों के अनुसार (बादशाह नामा) इस युद्ध में मुगल सेना ने खान दौरान के नेतृत्व में हिरदैशाह की सहायता की थी। बात सही जंचती है। जुझारसिंह ने जहाँगीर के मरते ही १६२७

में मुगल दरबार के विरुद्ध बगावत की थी। शाहजहाँ ने अस्थायी समझौता कर लिया था। किसी भी पक्ष का दिल साफ नहीं हो पाया था। १६३४ में जुझारसिंह ने फिर से मुगल दरबार के विरुद्ध बगावत की। ऐसी स्थिति में स्वाभाविक है कि शाहजहाँ की वृत्ति जुझारसिंह के विरुद्ध होने से हिरदैशाह के अनुकूल हो गई हो।

यह भी स्वाभाविक है कि भोपाल के शासक ने हिरदैशाह की सहायता करके मुगल दरबार का कोप नहीं कृपा प्राप्त की। और हिरदैशाह से इनाम लिया सो अलग।

पं० गणेशदत्त पाठक कहते हैं—"बुन्देला छत्रसाल, राजा हिरदैशाह के यहाँ नौकर हुए और पूर्व संग्राम में सहायक भी थे। इसी कारण उनको पुरस्कार में दो महल राजा ने दिया। एक पैंबकरहिया और दूसरा रमगढ़ा साहिनगर।

यह सब सन् १६३४ में या आस-पास हुआ होगा।

(७) हिरदैसाहि (नं० ५४) (१६३४-१६७८)

प्रेमसाहि (नं० ५३) की हत्या का समय सन् १६३४ विद्वानों ने निर्धारित कर लिया है। यही समय हिरदैसाहि के राज्यारम्भ का मानना चाहिये। हिरदैसाहि ने (१६६३-१६७८) अर्थात् ४४ वर्ष तक राज्य किया। जो उनका राज्यकाल विक्रम संवत् (१६३४-१७३४) अर्थात सन् १६०६-१६७७ तक ७१ वर्ष का माना जाता है, उसमें अभी तो भ्रम दिखता है। मतभेद राज्यारम्भ के समय में है। जब तक प्रेमसाहि की हत्या का समय का १६३४ सन् का निर्णय स्थिर है तब तक इकहत्तर वर्ष राज्य वाली बात को भ्रम ही मानना उचित होगा।

हिरदैसाहि के सम्बन्धों में सबसे बड़ा प्रमाण उनके द्वारा टंकित कराया शिलालेख है। गढ़ामण्डला के राजाओं के सम्बन्ध में यह एक ही शिलालेख आज भी अच्छी हालत में है और पढ़ा जा सकता है। अतएव शिलालेख का एक अलग चौथा अध्याय है। जिसमें शिलालेख की सब ज्ञातव्य बातें लिखी गई हैं। शिलालेख में टंकित होने की तिथि ज्येष्ठ शुक्ल एकादशी संवत् १७२४ (तारीख पाँच जून सन् सौलह सौ अड़सठ) दी हुई है। शिलालेख के पद्य नं० ३४ से ४१ तक में राजा हिरदैसाहि की कीर्ति और पद्य नं० ४२ से ४६ में रानी सुन्दरी देवी की कीर्ति का वर्णन है। इस दम्पति ने शिलालेख के बावन पद्यों में से सोलह पद्यों में

अपनी कीर्ति गाथा छोड़ रखी है। शिलालेख के सिवाय हिरदैसाहि की कीर्ति, कवि लक्ष्मी प्रसाद कृत "गजेन्द्र मोक्ष" काव्य ग्रन्थ में इस प्रकार है।

"तत्पुत्रोऽभून्महेन्द्रो हृदयनरपतिः सर्वविद्याप्रवीणान्।
वीणावाद्याद्यहीनान् विबुधकविवरानन्दयन्स्वीयबुद्ध्या ॥
तुल्यं देवेन्द्रपुर्या नगरमभिधया रामपूर्वं नवीनम्।
यश्चक्रेदर्शियत्र द्विजविहितमखैर्य्यत्र धर्मश्चतुष्पात् ॥'

अनुवादः—उनके पुत्र, महान् इन्द्र (के समान) हृदय राजा हुए। जिन्होंने अपनी बुद्धि से सर्व विद्याओं में निपुण वीणा, वाद्य इत्यादि के जानने वाले बहुत से कविवरों को आनन्दित किया और उन्होंने अमरावती के सदृश, नवीन रामनगर की स्थापना की, और वहाँ ब्राह्मणों के द्वारा विहित यज्ञों के कारण धर्म को चारों चरणों से युक्त दिखा दिया ॥

राजा हिरदैसाहि की प्रशंसा में 'गढ़ेशनृपवर्णनम्' के ३६, ३७ और ३८ श्लोक हैं। उनका अनुवाद दिया जा चुका है।

श्लोक ३६ में गजेन्द्रमोक्ष के अनुसार "रामपूर्वनगरे स्थितिमाप" लिखा है। श्लोक ३७ में

"......नाना शास्त्रविदं कलासुकुशलं स्त्रीसंघमध्यस्थितम्।
क्रीडन्तं कमनीयमूर्त्तिमनिशं कामप्रभं कामुकम्' लिखा है।

रामनगर राजधानी के निर्माण का कार्य १६५१ से आरम्भ होकर १६६८ में समाप्त हुआ। इसके बाद भी राजा हिरदैसाहि ने दस वर्ष और राज्य किया। ये दस वर्ष बिलकुल स्वर्णयुग के रहे होंगे। तभी तो आज भी प्रचलित है कि राजा हिरदैसाहि के समय में प्रजा के घरों में ढाई दिन तक सुवर्ण वर्षा होती रही।

रामनगर में राजधानी—गढ़ामण्डला राजवंश की पहिली राजधानी गढ़ा में थी।

सम्पत्ति के दिनों राजधानी गढ़ा से हटकर चौरागढ़ और सिनगौर में चली गई और विपत्ति के दिनों राजधानी रामनगर और मण्डला में आ गई। उन कारणों का वर्णन आवश्यक है जिससे हिरदैसाहि ने राजधानी रामनगर में हटाने का निर्णय किया।

हिरदैसाहि का राज्य विपत्तियों की बुनियाद पर स्थापित हुआ। उनको देशाटन, पंडित मित्रता, वारांगना, राजसभा-प्रवेश और शास्त्रों

का अच्छा अनुभव था। राज्यकाल के शुरू सोलह वर्षों में अर्थात् सन् १६५० तक कोई प्रत्यक्ष बात नहीं हुई। परोक्ष में मानसिक उथल-पुथल कई स्थानों में होती रही।

(१) सन् १६५१ में ओड़छा के जुझारसिंह जिनको हिरदैसाहि ने मार डाला था और अपने चौरागढ़ पर कब्जा फिर से कर लिया था, के भाई पहाड़ सिंह को शाहजहाँ ने एक हजारी मनसबदार बनाया। ऊँचा मनसब पाने से पहाड़सिंह का अभिमान बढ़कर उन्माद सा हो गया। पहाड़सिंह के दिल में अपने भाई जुझारसिंह की मृत्यु से उत्पन्न बदले की भावना ने जोर पकड़ा। पहाड़सिंह ने हिरदैसाहि पर हमला बोला। हिरदैसाहि ने भागकर बान्धो (रीवां) के अनूपसिंह के पास शरण ली। पहाड़सिंह ने रीवाँ पर धावा बोला। अनूपसिंह और हिरदैसाहि दोनों भागे। पहाड़सिंह ने रीवाँ को लूटा। पहाड़सिंह के इस मामले से चौरागढ़ फिर से हिरदैसाहि के हाथ से निकल गया। स्पष्ट है कि पहाड़ सिंह के पक्ष में शाहजहाँ का सहयोग था। इस प्रकार इस घटना से हिरदैसाहि का दिल टूट गया। इस हमले के इतने असर हुए कि बुन्देलों से फिर से विरोध हो गया। शाहजहाँ की प्रतिकूलता हो गई। चौरागढ़ हाथ से निकल गया। अतएव दिल टूट जाना स्वाभाविक था।

(२) यह तो बाहरी (वैदेशिक) बात हुई। आन्तरिक स्थिति भी कुछ अच्छी नहीं थी। रानी दुर्गावती की पराजय (१५६४) से प्रेमसाहि की हत्या (१६३४) तक सत्तर वर्षों में, बहुत से छोटे-छोटे राजा जो गढ़ा मण्डला के राजाओं के करद थे गढ़ामण्डला के राजाओं की शक्ति-हीनता के कारण, खुद मुख्तार या आजाद बन चुके थे। गढ़ामण्डला के राजाओं में इतनी शक्ति नहीं रह गई थी कि छोटे राजाओं को आजाद होने से रोकता या अपने वश में रख सकता। मुगल दरबार से कुछ आशा रही भी हो तो पहाड़सिंह को मदद देने से वह आशा समाप्त हो गई थी।

(३) मुगल दरबार का स्वार्थ केवल सालाना टाकोली वसूल करने में और गढ़ामण्डला के नये राजा को मान्यता देते समय नजराना वसूल करने तक सीमित था। मुगल दरबार पर कुछ भी जिम्मेदारी नहीं थी। केवल अधिकार थे। केवल प्रतिष्ठा थी। स्पष्ट है कि छोटे राजाओं की स्वयं भूत आजादी के कारण और टाकोली की सालाना अदाई के

कारण गढ़ामडण्ला राज्य की स्थिति कमजोर होती जा रही थी। लगातार माली कमजोरी के अनुपात में टाकोली कम नहीं होती थी। या उतनी ही रही आई या बढ़ भी गई हो। हिरदैसाहि को विपत्तियाँ बढ़ती जाती थीं। विपत्तियों को कई गुनी करने के लिये शाहजहाँ न बुन्देलों की मदद की थी। पहाड़सिंह को मदद देने में शाहजहाँ का और भी कोई स्वार्थ रहा होगा। किसी को अकारण कष्ट देने के लिये कोई अपनी सेना नहीं कटवाता। कारण की तलाश मुगल इतिहासकारों ने नहीं बताया। बताते भी कैसे। कारण का आभास रामनगर के बेगम महल में आज भी लिखा हुआ है। हिरदैसाहि ने मुगल दरबार से एक युवती को लाकर उसके लिये रामनगर में बेगम महल बनवाया था। इसका विस्तृत वर्णन आगे है।

(४) बालाघाट जिला गजेटियर से एक और पता मिलता है कि हिरदैसाहि पर सालाना टाकोली का बारह लाख रुपया चढ़ गया था। मुगल दरबार ने हिरदैसाहि से तकाजा किया। हिरदैसाहि ने बारह बैल गाड़ियों में भराकर शेर के चमड़े भेज दिये। और कहला दिया कि रुपया कहाँ से लावें। हमारे देस में ये शेर के चमड़े ही होते हैं। इस अनोखी सौगात को पाकर मुगल दरबार ने टाकोला के बारह लाख माफ कर दिये। पर शर्त यह कराली कि हिरदैसाहि कृषि को उन्नति करके गोंड़वाना को सम्पन्न बनावेंगे। टाकोली बकाया का आभास आ० अनवर सिंह के बयान से भी मिलता है।

(५) स्वार्थी के साथ मित्रता नहीं निभती। एक तरफ मुगल दरबार ने पहाड़सिंह को मदद दी। दूसरी तरफ १६५५ में हिरदैसाहि के दरबार में बहैसियत जागीरदार के एलची इफ्तेकार खाँ को तैनाती हुई। इस एलची की बलाय से भी पिंड छुड़ाना था। दुर्गभवन में पहाड़ों के बीच राजधानी बनाने से हिरदैसाहि को या उनकी गोंड़ प्रजा को कोई कष्ट नहीं हो सकता। पर बाहरी दुश्मनों को या आरामतलब एलचियों को अवश्य कष्ट होता और हुआ होगा।

(६) चौरागढ़ की पराजय के समय १६५१ में औरङ्गजेब ३२ वर्ष का था। मगल दरबार में रह चुकने के कारण हिरदैसाहि अच्छी तरह जानते थे कि औरङ्गजेब किस प्रकृति का है। हिरदैसाहि भविष्य चाहे न जानते रहे हों कि औरङ्गजेब अपने भाइयों की हत्या करेगा, अपने पिता

को कैद करेगा पर यह तो जानते थे कि औरङ्गजेब के साथ निभना कठिन है।

(७) ढाढ़स बढ़ाने की एक ही बात थी कि रीवाँ राज्य से मित्रता कायम रही आई। सी० यू० विल्स ने पेज ६१ के फुटनोट में लिखा है--'यह मजेकी बात है कि गढ़ा और रीवाँ के राजाओं के परस्पर सम्बन्ध, जैसे अच्छे संग्रामसाहि के समय में थे वैसे अच्छे डेढ़ सौ वर्षों के बाद भी रहे आये। गढ़ा के कौटुम्बिक लेखों के अनुसार हिरदैसाहि ने रीवाँ के बघेल राजा की एक कन्या से विवाह किया था।' पर रीवाँ नरेश की मित्रता का नतीजा पहाड़ सिंह के हमले में रीवाँ नरेश के लिये खराब हुआ था। हिरदैसाहि को भी संकोच लगा होगा कि अपने स्वार्थ के लिये दूसरे को क्यों बार-बार विपत्ति में डाला जावे।

ऐसी मानसिक स्थिति में सन् १६५१ में हिरदैसाहि ने गढ़ा से परशुराम के आश्रम देवगांव की तीर्थ यात्रा की। इस तीर्थ यात्रा की तह में वैराग्य और धर्म प्रेम शायदा ही रहा हो। परिस्थिति की प्रतिकूलता थी, दिल का त्रास था। अपनी स्थिति को बदल डालने की आवश्यकता थी। हिरदैसाहि ने नर्मदा प्रवाह का मार्ग अपनाया होगा। यदि वे फूलसागर गुवारी से सीधे मानोट देवगांव चले जाते तो रास्ते में रामनगर नहीं पड़ता। इस तीर्थ यात्रा में हिरदैसाहि को राजधानी के लिये रामगनर की स्थिति पसन्द आई। इस तीर्थ यात्रा के बाद ही, रामनगर में राजधानी बनने का काम शुरू हो गया। थोड़े वर्षों में समाप्त हो गया होगा। फिर समाप्त होने के कुछ दिन बाद शिलालेख टंकित किया गया।

कृषि की उन्नति—हिरदैसाहि ने कृषि की उन्नति द्वारा प्रजा की सेवा की। उन्नति ऐसी जिसे क्रान्ति कहना चाहिये। प्रजा अतिसम्पन्न हो गई। ढाई दिन सुवर्ण वर्षा ही क्योंकि प्रजापामक राजा के पूरे राज्यकाल में सुवर्ण वर्षा हुआ करती है। इनके समय में मईहर की तरफ से राठौर लोग आने लगे। आज भी जिला भर में गेहूँ के सर्वोत्तम किसान राठौर हैं। उनके समयमें कुरमी आये। आज भी जिला भर में धान के सर्वोत्तम किसान कुरमी हैं। लोकोक्ति है—' लोधी बड़े किरोधी, कुरमी बड़े किसान।' उनके समय में पान बरेजों की काश्त करने के लिये महोबा की तरफ से पंसारी आये।

हिरदैसाहि ने कृषि की उन्नति के लिये इन सबको बुलवाया और

प्रोत्साहन दिया। वे अधिक वन की निरर्थकता को समझते थे। अधिक और अधिक भूमि पर कृषि के रहस्य को उन्होंने पहिचाना था। वे यह भी समझते थे कि उनकी अधिकांश प्रजा कृषि ही कर सकती है और कुछ नहीं। हिरदैसाहि के दो सौ वर्ष बाद कैपटेन वार्ड ने हिरदैसाहि की इस सूझ-बूझ की तारीफ की है। ऐसा ही मत कैपटेन वार्ड ने दिया है कि मण्डला जिला में वन क्षेत्र अधिक और निरर्थक है। कृषि की बहुत गुंजाइश है। जन संख्या कम है। प्रति वर्ग मील में केवल १०७ व्यक्ति। उन्होंने सलाह दी है कि कृषि का विस्तार किया जाय। बाहर से कृषकों को लाकर बसाया जाय। ताकि उन्नत तरीकों से कृषि हो। इसी से मैंने हिरदैसाहि की कृषि की उन्नति के लिये 'क्रान्ति' शब्द का प्रयोग किया है।

कैपटेन वार्ड की नेक सलाह पर अंग्रेज सरकार ने ध्यान नहीं दिया। वर्तमान सरकार इस अच्छे सुझाव को या तो नहीं जानती या नहीं मानती। मण्डला जिला में बेतहाशा जंगल कायम रखना चाहती है। कृषि योग्य वन भूमि में भी कृषि नहीं कराना चाहती। वर्तमान सरकार सोचती होगी कि मण्डला जिला में वन कायम रखे रहने से इन्दौर और भोपाल में वर्षा होती रहेगी।

हिरदैसाहि का बनवाया हुआ 'गंगासागर, नामक तालाब अभी तक गढ़ा के निकट विद्यमान है 'लखराम संज्ञक एक आम्रवन लगाया। मण्डला में वह आजतक प्रसिद्ध है।'

बेगम और रानियाँ—बहु पत्नी वाले राजा की भी आस कोई प्रशंसा नहीं करता। पुराने ज़माने में, समाज ने राजा को छूट दे रखी थी। आज से करीब पौने दो सौ वर्ष पहिले और हिरदैसाहि से करीब सवा सौ वर्ष बाद 'गढ़ेशनृप वर्णनम्' के पद्य नं० ३७ में राजा हिरदैसाहि के बारे में लिखा है—

'स्त्रियों के संघ के मध्य में स्थित होकर क्रीड़ा करने वाला कमनीय मूर्ति, कामदेव के समान प्रभा-वाला और कामुक।'

रामनगर शिलालेख में ऐसी कोई बात नहीं है। हिरदैसाहि को (नं० ४०) में ब्राह्मणों को शतक्रतु बनाने वाला लिखा है। चाहते तो ऐसा लिख देते कि राजा इन्द्र की तरह था। पर राजा को इन्द्र की तरह नहीं लिखा। शिलालेख के पद्य नं० ४१ में राजा हिरदैसाहि की पट्टमहिषी (मुख्य रानी) का नाम सुन्दरी देवी लिखा है। इस पद्य में वर्तमान काल

का क्रिया पद नहीं है। भूत काल का क्रिया पद है। क्रियापद का सीधा अर्थ यही होता है कि रानी ने स्वयंवर में खुद ही रानी होना स्वीकार किया था। क्रियापद का खींचातानी से अर्थ होता है कि शिलालेख के समय रानी का शरीर छूट चुका था। रानी की प्रशंसा के अन्य श्लोकों से रानी के जीवित रहने का आभास मिलता है। अतएव भूत-काल के क्रिया पद का आशय स्वयंवर ही अधिक समीचीन है न कि रानी का अवसान।

श्री अनवर सिंह के बयान से *चिमनी* नामक मुगल घराने की शहजादी का परिचय मिलता है। दिल्ली के शहंशाह के महलों की शहजादी युद्ध में हरण करके या बल से या छल से गोंड़ युवक राजा हिरदैसाह के पास नहीं आई थी। वह स्वतन्त्र प्रेम से आसक्त होकर आई थी। फिर भी किसी मुगल कालीन इतिहासकार ने शहजादी की इस सामाजिक क्रान्ति की प्रशंसा नहीं की है। न किसी अंग्रेज इतिहास-कार ने वर्णन किया है। केवल एक स्थानीय इतिहासकार पं० गणेश दत्त पाठक ने इस घटना का वर्णन किया है। मुगल इतिहासकारों ने इस घटना को मुगल खानदान की बदनामी की बात समझी होगी। पर पाठक जी ने केवल तथ्य का वर्णन किया है। हिरदैसाहि की प्रशंसा के रूप में नहीं पाठक जी के पास स्थानीय इतिहास ग्रन्थों के प्रमाण अवश्य रहे होंगे। नहीं तो बीसवीं सदी के शुरू के जमाने में, वे बिना प्रमाण के क्यों वर्णन करते। इतिहास ग्रन्थों के अलावा और भी प्रमाण हैं। रामनगर में वह महल है जिसमें शहजादी चिमनी बेगम रहा करती थी। उसके स्नानागार और महल दोनों में मुगल वास्तुकला का परिचय है। भारत सरकार ने उसकी मरम्मत कराकर अपनी गुण ग्राहकता का परिचय दिया है। आज भी वह बेगम महल कहलाता है।

परिस्थिति भी इस बात को पुष्ट करती है। शाहजहाँ ने हिरदैसाहि के विरुद्ध ओड़छा के पहाड़ सिंह बुन्देला को मदद दी। इस मदद का कोई भी कारण इतिहासकारों ने नहीं बताया है। कारण श्री अनवर सिंह के बयान में स्पष्ट है कि शाहजहाँ चिमनी शहजादी के कारण हिरदैसाहि से रुष्ट थे। एक और बात है। हिरदैसाहि ने मुगल दरबार में हाजिरी दी थी। पहिले चाल थी कि हर करद राजकुमार मुगल दरबार में कुछ वर्षों के लिये रह कर तहजीब हासिल करता था। हिरदै-साहि के बाद वह प्रथा समाप्त कर दी गई। इसका भी वही कारण है

कि मुगल दरबार ने सोचा होगा कि गोंड़ युवक बाद में और शहजादियों को न भगाकर ले जावें। जो हो चुका उतने में ही प्रथा को समाप्त कर दो।

चिमनी शहजादी को अनवर की पुत्री कहना गलत है। जहाँगीर की पुत्री हो सकती है। जब हिरदैसाहि अपने पिता की हत्या का समाचार सुन कर अचानक मुगल दरबार छोड़कर १६३४ में आये, तब वह चिमनी २०।२२ वर्ष की थी। अर्थात उसका जन्म करीब १६३४ का था, जब जहाँगीर की उम्र १६१२ में करीब ४२ वर्ष की थी, और शाहजहाँ को गद्दी में बैठे, १६२७ से केवल सात वर्ष हुए थे। यह भी संभव है कि हिरदैसाहि ने १६३४ में जल्दी जल्दी में चिमनी को अपने साथ न लाया हो। बाद में जब दूसरी बार मुगल दरबार में गये तब लाये हों, क्योंकि जल्दी जल्दी, आने में यह न हो सका होगा। तब चिमनी संभवतः शाहजहाँ की पुत्री मानी जायगी। श्री अनवर सिंह के बयान से हिरदैसाहि का दूसरी बार मुगल दरबार में जाने का अनुमान अवश्य होता है। हर हालत में वह १६५१ के पहिले आ चुकी थी। तभी तो शाहजहाँ ने पहाड़ सिंह को मदद दी, या भड़काया भी हो। किसी भी हालत में चिमनी को कोई दोष नहीं दिया जा सकता। वह वीर और हिम्मतवाली तो थी हाँ, अत्यन्त पतिव्रता भी थी। वह रामनगर में ही मरी। पं० गणेश दत्त पाठक ने उसका विस्तृत वर्णन किया है पर नाम नहीं दिया। नाम तो मैंने अस्थायी रूप से श्री अनवर सिंह के बयान से उधार लिया है। जब तक दूसरा या ठीक नाम नहीं मालूम होता तब तक काम चलाने के लिये मैंने 'चिमनी' नाम ही ठीक समझा। पं० गणेश दत्त पाठक के विस्तृत वर्णन के अंश इस प्रकार हैं।

'राजा हृदय शाह गानविद्या और वाद्यविद्या में अतिशय निपुण थे। ···बादशाह के दरबार में एक खत्राणी वेश्या थी जिसका नाम सुन्दर देव पातुरा था।···यद्यपि वह बादशाह के खास दरबार में अपने गुण के द्वारा बादशाह का मन बहलाने आया करती थी तथापि वह और समय अन्तःपुर में बेगम के समान मर्यादा से रहती थी···और वहीं सुन्दर देव और हृदयशाह का प्रथम परिचय हुआ···परस्पर अनुराग हो गया। होते-होते अन्तःपुर में भी राजा का प्रवेश होने लगा।···किसी बादशाह की कन्या से भी राजा से परिचय हो गया···समागम होता

रहा।···हम जो प्रसंग नीचे लिखेंगे वह किसी किंवदन्ती के आधार पर नहीं है, वरन् एक पुराने लेख के आधार पर है···यह वृत्तान्त बादशाह को भी मालूम हुआ परन्तु उस कन्या के ऊपर दया करके··· किसी नीति के कारण ही हो, बादशाह ने राजा का प्राण हरण नहीं किया।···राजा का विवाह उसी कन्या के साथ कर देना यह अभिप्राय जान कर राजा ने सुन्दर देव पातुरा से सलाह की। और कोतवाल की सहायता लेकर रात को वेश्या और अपने दो कामदार, दीवान कस्तूर माहनी और मन्त्री व पुरोहित कामदेव वाजपेयी को साथ में लेकर भागे। यह घटना संवत् १६६१ की है।···पीछा न किया जाय··· अद्भुत उपाय···सब लोग घोड़ों पर सवार हुए और घोड़ों की नालें उलटी बाँधी गई जिससे यह न मालूम हो सके कि घोड़े बाहर को गये हैं। घोड़े के निशान से यही मालूम हो कि कई घोड़े शहर की तरफ आये हैं। इस प्रकार···अपने राज्य की तरफ चले।···कृष्ण गढ़···पुरानी धाय··· मुहरों का टाँका···जुझार सिंह को युद्ध में परास्त किया।···सेवा के लिये···राजा दिल्ली को जाते थे। वह इन्हीं के समय माफ हुई। राजा ने कई विवाह किये थे। एक विवाह चन्देले के यहाँ दूसरा *परिहार* राजपूतों के यहाँ, तीसरा *गौतम* के यहाँ। खत्राणी ने··· अनेक देवालय बगीचा आदि बनाये। उनके उद्यापन···पुरोहित वाजपेयी ने कहा··· हम सब को यज्ञ नहीं करा सकते। जिसके हाथ का राजा खाते हैं, उसी को हम यज्ञ करावेंगे, उसी से दक्षिणा लेंगे। सुन्दर देव ने कहा कि हम दूसरा वाजपेयी पुरोहित बना लेंगे। अनन्तर *जयगोविन्द कवि* को जो *जुझौतिया* ब्राह्मण थे, उनको वाजपेय यज्ञ करा के वाजपेयी बनाया।···उसने अनेक दान···असंख्य पण्डित और ब्राह्मण लोग उस समय एकत्र हुए थे।' शिलालेख की सुन्दरी सुन्दर देव पातुर ही थी।

सी० यू० विल्स, आई० सी० एस ने अपनी पुस्तक के पेज ८६१ के फुट नोट में लिखा है कि गढ़ा के कागजों के अनुसार हृदय शाह ने *रीवां के बछोल* महाराजा की एक कन्या से विवाह किया था। श्री अनवर सिंह ने एक विवाहित *सजातीय पत्नी* का और वर्णन किया है। या वह सजातीय नहीं थी।

एक *चना* का वर्णन रामनगर शिलालेख के पद्य नं० ३७ में, और 'गढ़ेशनृप वर्णनम' के पद्य नं० ३७ में है। किसी अत्यन्त चतुर

कलाकार ने एक चने के ऊपर पचास या बावन हाथियों के चित्र बनाये थे। दोनों पद्यों के अनुवाद यथा स्थान दिये गये हैं।

सन्तान-राजा हिरदै साहि की लड़की का विवाह रतनपुर में हैहय वंशी राजा के यहाँ हुआ। राजा के दो पुत्र थे। एक छत्रसाहि-जिनको गद्दी मिली (नं० ५५) जो गद्दी पाने के समय पिता हिरदैसाहि की अधिक आयु के कारण स्वयं वृद्ध हो गये थे और दूसरे हरिसिंह जिनका वर्णन केसरी साहि (नं० ५६) के प्रसंग में आवेगा। जिस प्रकार गोंड़ राजाओं की स्वतन्त्रता के दिनों में महा-राजा संग्राम साहि (नं० ४८) अद्वितीय प्रतापी थे उसी प्रकार गोंड़ राजाओं की परतन्त्रता के दिनों में हिरदैसाहि सबसे अधिक प्रतापी थे। इन्हीं के नाम पर मण्डला के पास का प्रसिद्ध गाँव हिरदे-नगर बसा है। हिरदैसाहि को ज्योतिषी लोगों के द्वारा अपनी मृत्यु का समय पहिले से ज्ञात हो गया था।

(८) हिरदैसाहि के बाद

छत्रसाहि (नं० ५५) (१६७८-१६८५)

छत्रसाहि के एक और भाई थे। हरिसिंह जो दूसरी माता से थे। 'छत्रसाहि ने अपने वैमात्रेय भाई को राज्य का भार समर्पण करना चाहा, परन्तु उन्होंने स्वीकार नहीं किया। स्वीकार न करने का कारण चाहे भ्रातृस्नेह रहा हो, चाहे जो कुछ हो उन्होंने हठ से राजा छत्रसाहि को ही गद्दी पर बैठाया। थोड़े ही समय में कामदार लोगों में आपस में वैमनस्य उत्पन्न करा दिया।

छत्रसाहि के नाम से छतरपुर गाँव का वर्णन परिशिष्ट में है।

छत्रसाहि ने वृद्धावस्था में राज्य प्राप्त किया। किसी कवि गंगा प्रसाद के एक श्लोक से सिद्ध होता है कि राजा ने यज्ञ करके अपनी आयु बढ़ाई थी। श्लोक इस प्रकार है।

पुण्यं कृत्वातिमात्रं द्विजकथितमथो वर्द्धयामास चायुः
सच्छत्रं क्षत्रियाणां हृदयनृपतेर्नन्दनश्छत्रसाहिः ॥

अनुवाद :

हृदय राजा के पुत्र छत्रसाहि ने जो क्षत्रियों के अच्छे छत्र थे ने ब्राह्मणों द्वारा बताए गये बहुत से पुण्य करके अपनी आयु को बढ़ाया।

केसरी साहि (नं० ५६) (१६८५-१६८८)

केसरीसाहि के नाम से मण्डला के पास बेजर नदी के किनारे केहरपुर गाँव है। केसरीसाहि का राजतिलक रामनगर में मिती फाल्गुन शुक्ल एकादशी शुक्रवार संवत् १७४१ को हुआ। 'गजेन्द्रमोक्ष' काव्य सर्ग ६ के श्लोक संख्या आठ में इनकी प्रशंसा इस प्रकार लिखी है।

कान्त्या कामोपमानोप्यनुपममृदुताकाम्यमानोपमेयो
दुष्टेभानां विमर्दे खरतरनखरः केशरीवत्प्रतापात् ॥
ऐश्वर्यं देवदेवाभिलषितमधिकं दर्शयामास लोके।
पुत्रोऽन्यश्छत्रसाहेर्नृपतिमुकुटमणिः केशरीसाहिराजा ॥

अनुवाद :—कान्ति के कारण काम जिनके उपमान हैं फिर भी जिनकी मृदुता अनुपम है, अतः जो उपमेय (राजा) केवल काम्यमान होता है। प्रताप के कारण जो दुष्ट शत्रु रूप हाथियों के विमर्दन के लिये अत्यन्त तीक्ष्ण नख वाले सिंह की भाँति है। उन छत्रसाहि के द्वितीय पुत्र नृपों के मुकुट मणि केसरीसाहि राजा ने ऐसे अधिकतम ऐश्वर्य को संसार में प्रदर्शित किया जिस (ऐश्वर्य) की इन्द्र भी अभिलाषा करते हैं ॥

और 'गढ़ेशनृप वर्णनम्' के पद्य नं० ४० में भी इनकी प्रशंसा है। इन्होंने केवल तीन वर्ष राज्य किया। वे तीन वर्ष भी सुख से नहीं थे। इनके चाचा हरिसिंह ने इनसे चौथा माँगा। नहीं देने पर विद्रोह कर दिया। हरिसिंह, हिरदैसाहि (नं० ५४) के पुत्र, और छत्रसाहि (नं० ५५) वैमात्रेय के भाई थे। हरिसिंह के विद्रोह के कारण मुगल इतिहासकारों ने हरिसिंह को राजा मानकर भूल की है।

हरिसिंह का विद्रोह—मासिर उल आलमगिरी में लिखा है :—"औरङ्गजेब के राज्य के २६ वें वर्ष में (१६८४ में) गढ़ा के जमींदार छत्तरसिंह के भाई ने दरबार में मुजरा किया और पदोन्नति पाई।" और बाद में लिखा है कि "और २८वें वर्ष (१६८६) में गढ़ा के जमींदार हरिसिंह को खिलअत दी गई" इसमें फारसी के इतिहास को प्रमाण मानने वालों को भ्रम हो गया कि पहले छत्तरसिंह को जमींदार कहा और बाद में हरिसिंह को जमींदार कहा, तो हरिसिंह ही राजा हो गये थे।

सन् १८६६ की जबलपुर जिला की सेटिलमेंट रिपोर्ट में केसरीसाहि

और नरेन्द्रसाहि के बीच में हरिसिंह का नाम ठूँस कर हरिसिंह को सात वर्ष राज्य करने का गौरव प्रदान किया गया है।

किसी प्रेम कायस्थ ने कोई पद्य बद्ध हिन्दी इतिहास ग्रंथ लिखा था। वे कहते हैं कि हरिसिंह मुगल दरबार में गये। वहाँ सहायता मिली। उस सहायता से उन्होंने नरिन्दसाहि को हरा दिया। नरिन्दसाहि लांजी भाग गया। जब जवान हुआ तब गद्दी हासिल कर सका। इन्हीं प्रेम कायस्थ का काव्य डाक्टर हॉल को प्राप्त हुआ था। डाक्टर हॉल का वर्णन रामनगर शिलालेख के प्रसंग में और आ गया।

स्लीमैन ने लिखा है कि हरिसिंह ने दिल्ली दरबार से सहायता में असफलता पाई। तब ओड़छा के बुन्देला छत्रसाल से सहायता ली। उस सहायता से केसरीसाहि पर हमला करके केसरसाहि की धोखा से हत्या की।

इन सब मतों का निराकरण पं० गणेशदत्त पाठक ने किया है। उन्होंने गढ़ामण्डला के इतिहास साहित्य पर से लिखा है। उनका उद्धरण यदि मैं दूँ तो आश्चर्य नहीं। पर सी० यू० विल्स ने जिसने फारसी के इतिहास ग्रन्थों को प्रमाण माना है उसने भी अपनी पुस्तक के पेज ६६ में वर्णन किया है। पाठक जी का मत इस प्रकार है। राजधानी रामनगर में थी। हरिसिंह ने विद्रोह किया। मुगल दरबार से मान्यता प्राप्त की। हरिसिंह गढ़ा में अपने को राजा समझता रहा। राजधानी रामनगर में केसरीसाहि ही राजा रहे आये। राजधानी के राजा और विद्वानों ने हरिसिंह को राजा नहीं माना। केसरीसाहि का राज्य केवल रामनगर और आस-पास तक सीमित रह गया था।

केसरीसाहि की मृत्यु—केसरीसाहि शिकार से लौट रहे थे। रात हो गई थी। केसरीसाहि को हरिसिंह के जल्लादों ने गोली से बिदी के जंगल में, मुहारे की घाटी में मार डाला। बिदी का जंगल आज भी प्रसिद्ध है। रामनगर और धुपरी के बीच में है। यहाँ पर स्लीमैन का मत है कि केसरीसाहि की मृत्यु के कारण पुत्र नरेन्द्र साहि का जीवन भी खतरे में था। नरेन्द्र साहि की अवस्था केवल सात वर्ष की थी। मन्त्री रामकिशन वाजपेयी (पिता कामदेव वाजपेयी) ने नरेन्द्र साहि की रक्षा की और सात वर्ष के बालक को रामनगर में राजा घोषित किया। राम किशन वाजपेयी ने सेना इकट्ठा करके हरिसिंह को मरवा डाला। हरिसिंह का लड़का पहाड़सिंह भागकर दिल्ली पहुँचा। पहाड़सिंह के विद्रोह

का वर्णन, नरेन्द्र साहि (नं० ५७) के प्रसंग में किया जायगा। पं० गणेशदत्त पाठक का मत है कि नरेन्द्र साहि के मामा उमरिया वाले जुगराजसिंह ने हरिसिंह को गढ़ में मार डाला। दो में से चाहे जो भी हो। ऐसा भी हो सकता है कि रामकिशन वाजपेयी ने ही जुगराजसिंह से सहायता ली हो। हर हालत में इतना स्पष्ट है कि नरेन्द्रसाहि के राज्य का विस्तार केवल रामनगर नहीं गढ़ा में भी हो गया।

यहाँ यह बात ध्यान देने की है कि १६८५ से १६८८ तक और पहिले भी औरङ्गजेब की हालत कमजोर होती जा रही थी। औरङ्गजेब ने सन् १६५८ में गद्दी पाई थी। उसने अपनी मन की २८-२६ वर्ष करके मुगल साम्राज्य की हालत खस्ता कर दी थी। यदि गोंड़ राजाओं में गृह-कलह न होती, यदि केसरीसाहि को हरिसिंह के विद्रोह का सामना न करना पड़ता, यदि केसरीसाहि और हरिसिंह मिलकर अन्य पड़ोसी राजाओं से सहायता लेते, तो औरङ्गजेब के विरुद्ध वे लोग संयुक्त मोर्चा बना देते और औरङ्गजेब को करारी चोट मिलती। पर भाग्य का विधान ऐसा था कि मुगल दरबार साम्राज्य का पाया तो खिसले ही गोंड़ राज्य को भी पनप जाना नहीं बदा था। भाग्य गोंड़ राज्य को भी बरबाद करने में तुला था। मराठा राज्य का भाग्योदय तेजी से हो रहा था।

हरिसिंह की स्थिति केवल गद्दार की थी। उसने राज्य के एक बड़े अंश को दबा लिया था। उसका अधिकार राजधानी या राजा के कोई भी राजचिन्ह पर नहीं था। औरङ्गजेब ने उसे मान्यता दी। कुटिलनीति की दृष्टि से उसने अच्छा किया। राजनीति की दृष्टि से औरङ्गजेब ने अनुचित किया। फारसी ग्रन्थकारों ने हरिसिंह को राजा मानकर हरिसिंह का पक्ष लिया। पर हरिसिंह राजा नहीं बनाया गया था। औरङ्गजेब ने केसरीसाहि का राज-पद कभी नहीं छुड़ाया था। रामनगर की राजधानी के मंत्री लोगों के पास राजा केसरीसाहि के राजा-पद की रक्षा के लिये और कोई मार्ग बाकी नहीं रह गया था, सिवाय इसके कि हरिसिंह को समाप्त कर दिया जाय। औरङ्गजेब ने भी अपनी भूल को समझा। औरङ्गजेब ने रामनगर के राजा केसरसाहि पर, हरिसिंह को दी गई। खिलअत के अपमान का इलजाम नहीं लगाया। औरङ्गजेब ने हरिसिंह के पुत्र पहाड़सिंह की राजकुमार की तरह इज्जत नहीं की। पहाड़सिंह को केवल सेना का पदाधिकारी माना। सेना में पद दिया सो वीरता पर से न कि कथित राजा हरिसिंह के पुत्र की हैसियत से।

केसरीसाहि ने केवल तीन वर्ष राज्य किया। पर स्लीमैन को आधार मान कर अंग्रेज इतिहासकारों ने केसरी साहि के साथ हरिसिंह को भी जोड़ दिया है। अतः अंग्रेज इतिहासकारों के अनुसार नरेन्द्र साहि का राज्यारोहण-समय बहुत बाद में बताया गया है। 'गढ़ेश नृपवर्णनम्' से अंग्रेज इतिहासकारों की भूल स्पष्ट हो जाती है।

नरेन्द्र साहि(नं०५७) (१६८८-१७३२)

नरेन्द्रसाहि को सात वर्ष की अवस्था में पिता केसरी साहि की हत्या के कारण गद्दी दी गई। इनका वर्णन 'गढ़ेश नृपवर्णनम्' के पद्य नं० ४१ और ४२ में है। इनके नाम से रामनगर के पास का नरेन्द्रगढ़ आज भी है। नरेन्द्र गढ़ के पास भण्डारताल नामक गाँव भी है।

पं० गणेशदत्त पाठक ने नरेन्द्रसाहि की युवावस्था के दो ऐसे तथ्य लिखे हैं जिनका वर्णन किसी अन्य इतिहास पुस्तक में नहीं है।

(१) इनके पितामह छत्रसाहि (नं० ५५) ने वन में एक बालक पाया था। उसको पाला पोसा। नाम सुन्दरराव रखा। नरेन्द्रसाहि ने सुन्दर राव को दीवान बनाया। सुन्दर राव ने बहुत योग्यता से कार्य चलाया।

(२) सुन्दरराव के मरने पर कुछ दिन वासुदेव वाजपेयी दीवानी का काम करने लगे। एक दिन कई बार बुलाने पर वासुदेव वाजपेयी नहीं आये। चाहे कार्यवश चाहे बहाने से। राजा ने समझा कि अभिमान हो गया है। पास ही *जोधी अहीर* खड़ा था। राजा ने उससे कहा कि जोधी! तू दीवान हुआ। दीवानी के कपड़े पहिन ले। जोधी विस्मित हुआ। फिर पद स्वीकार करके दीवानी करने लगा। वासुदेव वाजपेयी जब वहाँ गये, तो राजा ने निकाल दिया। हम लोग छुटपन में सुना करते थे कि रामनगर और मण्डला के बीच में नर्मदा के प्रवाह के नीचे होकर सुरङ्ग का भूमिगत मार्ग है। इस किम्वदन्ती का किसी इतिहास ग्रन्थ में वर्णन नहीं मिलता। रामनगर के महल में कुछ हिस्सा ईंटों से चुनवाया हुआ है। उसी को लोग कहते हैं कि वहाँ से सुरङ्ग का मार्ग था इसे बन्द कराया गया।

पहाड़सिंह का विद्रोह—हरिसिंह के विद्रोह का वर्णन हो चुका है। हरिसिंह के मारे जाने पर हरिसिंह के पुत्र पहाड़सिंह ने विद्रोह किया। पहले पहाड़सिंह औरङ्गजेब के पास पहुँचे कि अपने नाम की मान्यता प्राप्त कर लावें। यहाँ रामनगर में नरेन्द्रसाहि के शुभचिन्तकों को भय हुआ कि पहाड़सिंह चाहे जैसा और चाहे जितना नजराना देकर या देने का

वायदा करके रामनगर के सिंहासन का नीलाम अपने पक्ष में करा सकता हैं। कहीं ऐसा न हो जावे कि औरङ्गजेब पहाड़सिंह को सनद लिख दें और पहाड़सिंह सेना और परवाना लेकर आ जावे। यह भय नरेन्द्रसाहि के बालकपन के कारण और पुष्ट हो गया। तब नरेन्द्रसाहि की तरफ से गंगाधर भट्ट पौराणिक को औरङ्गजेब के पास भेजा गया। इनका नाम गंगाधर वाजपेयी भी लिखा है। ये गये। वहाँ पहाड़स्हि भी था. ये भी पहुँचे। दोनों में मान्यता प्राप्त कर लेने की खींचातानी बढ़ी होगी। अन्त में औरङ्गजेब ने पहाड़सिंह का दावा खारिज कर दिया। गंगाधर जीत गये। नरेन्द्रसाहि के नाम का मान्यता पत्र लिखने के नजराना में औरङ्गजेब को पाँच गढ़ और मिले। धामौनी हटा, शाहगढ़, गढ़ाकोटा और मड़ियादो।

इसी समय औरङ्गजेब की सेना ने बीजापुर के लिये प्रस्थान किया। हारे हुए पहाड़सिह सेना के साथ बीजापुर चले गये। पहाड़सिंह ने सेना में शामिल होकर औरङ्गजेब को खुश करने के प्रयत्न किये। पहाड़सिंह ने चापलूसी में इस्लाम धर्म कबूल कर लिया। बीजापुर के युद्ध में पहाड़सिह ने वीरता प्रदशित की। बीजापुर ने पंद्रह अक्टूबर सोलह सौ छयासी को आत्मसर्पण किया। मुगल सेना के सेनापति ने पहाड़सिंह के ऊपर अति प्रसन्नता प्रगट की। दिलेर खाँ ने पहाड़सिंह की मदद के लिये शाही सेना का कुछ अंश दिया कि जिससे पहाड़सिंह नरेन्द्रसाहि के ऊपर धावा बोल सकें। पहाड़सिंह ने नरेन्द्रसाहि पर धावा बोला। फतहपुर के पास दूधी नदी के किनारे युद्ध हुआ। नरेन्द्रसाहि की तरफ से अफगान वीर अहमद खाँ सेनापति थे। अहमद खाँ दीवान थे। इस युद्ध में सेना का नेतृत्व करने के कारण सेनापति कहे गये हैं। अहमद खां के पास बहुत थोड़ी सेना थी। अहमद खाँ ने अद्भुत वीरता प्रदशित की। अहमद खा ने शाही सेना के दोनों सेनापति मीर जैना और मीर मादुल्ला को खतम किया। पहाड़सिह डर गये। हाथी पर बैठकर आये। पहाड़सिंह को भी अहमद खाँ ने समाप्त किया। शाही फौज भाग गई। अहमद खाँ लौट कर राजा को लेकर मण्डला आये। राजा छोटे थे। राजमाता ने अहमद खाँ पर भरोसा करके ही राजा को युद्ध क्षेत्र में भेजा था। इस विजय के बाद राजा नरेन्द्रसाहि सुख पूर्वक राज्य करने लगे।

इस युद्ध का वर्णन स्लीमैन ने कुछ दूसरे प्रकार से किया है। स्पष्ट

है कि स्लीमैन ने फारसी इतिहासकारों का वर्णन माना होगा। वे शाही सेना की इज्जत बचाने के लिये तथ्य को तोड़ मरोड़-डालते थे। स्लीमैन का वर्णन इस प्रकार है। युद्ध में राजा नरेन्द्रसाहि अहमद खाँ के नेतृत्व में हारे। राजा भागे। रीवाँ के सोहागपुर से मदद लाये। तब तक मुगल सेना दक्खन जा चुकी थी। इसलिए अहदम खां ने (पहाड़सिंह को निसहाय पाकर) मार डाला। इस वर्णन से वस्तु स्थिति पर 'दूसरा रंग चढ़ जाता है। फारसी इतिहासकारों ने पहाड़सिंह की वीरता और नीति कुशलता की प्रशंसा की है।

हरिसिंह ने विद्रोह किया। उनके पुत्र पहाड़ सिंह ने विद्रोह किया। अब पहाड़ सिंह के लड़के तीसरी पीढ़ी में विद्रोह करेंगे।

विद्रोह की तीसरी पीढ़ी—पहाड़ सिंह के दो लड़के थे। दोनों मुसलमान हो गये थे। नाम हो गये थे। अब्दुल रहमान और अब्दुल हाजी। दोनों ने जब अहमद खाँ की जीत देखी, अपनी और शाही सेना की हार देखी, तब दोनों औरंगजेब के पास भागे और सेना पाने की प्रार्थना की। थोड़ी सेना मिली भी। दोनों ने हमला किया। कुछ हिस्सा जीतने लगे। ठीक इसी समय एक और 'विद्रोह उपस्थित हो गया। इस समय विद्रोह थे—अजीम खाँ, गढ़ा मण्डला राज्य के बारहा जिला फतहपुर के जागीरदार और चौरई के जागीरदार सुन्डे खाँ। अब गढ़ा मण्डला के राजा नरेन्द्र साहि के विरुद्ध एक संयुक्त मोर्चा सा बन गया। यहाँ राजा नरेन्द्र साहि की स्थिति कुछ अच्छी नहीं थी। सेनापति अहमद खाँ मर चुके थे। गंगाधर वाजपेयी युद्ध में वीरगति पा चुके थे। राम कृष्ण वाजपेयी ने राजा के साथ जाकर पन्ना वाले छत्रसाल से सहायता माँगी। कुछ सेना मिली। देवगढ़ के बख्त बुलन्द ने भी सहायता दी। सेना इकट्ठी हो गई। पहिला युद्ध सिवनी में हुआ जिसमें सुन्डे खां 'समाप्त हुए। दूसरा युद्ध गंगई खलरी में हुआ इसमें अजीम खाँ समाप्त हुए। बाद में इसी युद्ध में अब्दुल रहमान और अब्दुल हाजी भी मारे गये। तब पूरी विजय प्राप्त हुई।

सहायता के बदले में राजा नरेन्द्र साहि ने बखत बुलन्द को तीन गढ़ दिये। धुनसौर, डोंगरताल और चौरई। पन्नावाले छत्रसाल (के लड़का हृदयसाह) को 'पगवदलौअल' करके विदा कर दिया और पाँच गढ़ उन्हें भी दिये। गढ़पहरा, इटावा, रहली, खिमलासा और दमोह।

नरेन्द्र साहि ने मण्डला में राजधानी हटाई। फिर भी रामनगर

में आना जाना लगा रहता रहा होगा। नरेन्द्र साहि के राज्य काल में विद्रोह अधिक हुए। सब में सफलता मिली। पर स्थिति बिगड़ती गई। इनके समय के दो और तथ्य, पं० गणेश दत्त पाठक ने लिखे हैं।

(१) नरेन्द्र साहि की दो बहिनें थीं। बड़ी मानकुंवरि बख्त बुलन्द को ब्याही थीं। बख्त बुलन्द (देव गढ़ वाले) और नरेन्द्र साहि की रिश्तेदारी का वर्णन किसी फारसी या अंग्रेजी के इतिहासकार ने नहीं किया है। दूसरी बहिन दान कुंअरि थीं जो रतनपुर के राजा रायसिंह के साथ ब्याही गई थीं। रायसिंह का वर्णन इस प्रकार लिखा है। संवत् १७५७ (सन् १७०१) में राजा ने वासुदेव वाजपेयी और हजारी खाँ को रतनपुर भेजा। वहाँ युद्ध हुआ। रायसिंह पकड़ कर मण्डला लाये गये। रतनपुर का राज्य मण्डला में शामिल हो गया। राजा ने रायसिंह के साथ दानकुंवरि का विवाह करके रतनपुर का राज्य दायज में दे दिया। उन्हें वहीं भेज दिया।

(२) राजा ने अपने पुत्र महाराज साहि को लांजी में तैनात किया। जिससे नागपुर राज्य की सीमा पर नरेन्द्र साहि का दबाव रहे, और नागपुर की तरफ से हमला न हो सके। फिर भी नागपुर से बड़े रघो जी की सेना इस तरफ आई युद्ध हुआ और नरेन्द्र साहि ने विजय पाई। इस प्रकार महाराज साहि ने अपने पिता के जीवन काल में खूब राज्य-वृद्धि की। जिससे पिता नरेन्द्र साहि को अत्यन्त प्रसन्नता हुई।

आचार्य भावे ने लिखा है कि संवत् १७६६ (सन् १७१२) में, भानुमिश्र कवि को रचना 'रसराज मंजरी' की प्रति इस शासन समय में की गई। आचार्य भावे ने मण्डला में उस प्रति को देखा है।

महाराज साहि (नं० ५८) (१७३२-१७४२)

स्लीमैन कहते हैं कि महाराज साहि के शासन के दस वर्ष सुख से बीते। विपत्ति के दिन सुख से नहीं बीतते। इन्हीं दिनों सागर के मरहठों की शक्ति बढ़ रही थी। जो १७८१ में सागर के मरहठों ने गढ़ा मण्डला राज्य पर कब्जा कर लिया सो सागर वालों की शक्ति एक दिन में नहीं बढ़ी थी। सागर ही क्यों नागपुर आदि के दक्षिण के मरहठे भी तो बढ़ रहे थे।

सन् १७३३ के करीब दक्षिण से पानपाटिया सूबेदार ने चढ़ाई की। राजा महाराज साहि ने युद्ध किया और आंशिक विजय पाई।

पानपाटिया पीछे हटा। राजा ने भोपाल और गनौर के शासकों से सहायता लेकर उसे अच्छी तरह परास्त किया। चौरागढ़ का वन्दोवस्त करके वे मण्डला लौट आये।

१७३६ में मरहठा शक्ति बढ़ने लगी। उन्होंने दिल्ली और आगरा पर हमला किया।

१७३६ की दस मार्च को नादिरशाह ने दिल्ली लूटा। मुगलों की कमजोरी का कितना अच्छा अवसर था जब गोंड़ राजा अपने को पूर्ण स्वतंत्र बना सकते थे। जैसा कि निजामुल्मुल्क ने अपने को स्वतंत्र बना लिया। इसी साल पेशवा के प्रतिनिधि रघो जी ने मण्डला पर हमला किया। हमला का कोई निर्णय नहीं हुआ। क्योंकि रघो जी के नाती चिमना जी काशी की तरफ चले गये। रघो जी का मण्डला पर हमला करना पेशवा बाजीराव को अच्छा नहीं लगा। दोनों पक्ष गोंड़ राजा और रघो जी इस हमले से प्रसन्न थे। रघो जी अपनी सफलता समझते थे। १७८१ में मधो जी भोंसले ने अंग्रेजों को लिखा कि—हम आपके साथ हैदर अली के विरुद्ध सहयोग देने को तैयार हैं, वशर्ते कि आप (अंग्रेज) हमें गढ़ा मण्डला के राज्य पर कब्जा करने में मदद देने का वायदा करो। जिस राज्य पर हमारे पुरखा बाला जी बाजीराव ने १७४२ में कब्जा किया था। कोलब्रुक ने लिखा है कि रघो जी प्रथम और मण्डला के राजा के बीच का युद्ध घूमा (जिला सिवनी) के पास हुआ था।

१७४२ में (फागुन संवत् १७६६) में पेशवा बाला जी बाजीराव ने बड़ी सेना लेकर मण्डला पर चढ़ाई की। स्लीमैन ने बाजीराव की चढ़ाई लिखा है जो गलत है क्योंकि बाजीराव का देहान्त १७४० में हो चुका था।

इस युद्ध में गोंड़ राजा को बहुत दिनों तक लड़ना पड़ा। गोंड़ राजा के दो मददगार थे। एक मण्डला राज्य के जागीरदार विलहरी वाले संभाजी मूंगाराव, और दूसरे भेड़ाघाट के महन्त कल्यानपुरी। ये दोनों सहायक विरुद्ध पक्ष पेशवा के सेनापति से मिल गये। प्रतिज्ञा की कि किले में प्रवेश करा देंगे। महाराज साहि स्वयं किले के द्वार पर लड़ रहे थे। किले के पश्चिम तरफ नर्मदा किनारे बचरी बुर्ज में संभाजी ने सुरंग लगा दी। वहाँ से रास्ता बन गया। किला वैशाख शुक्ल तृतीया संवत् १८०० को टूट गया। इन दोनों ने जो बन्दूकें मण्डला

के किले के भीतर से पेशवा की सेना पर दागी थीं। उनमें गोली नहीं थी। पेशवा के सैनिक मरने से बच गये। पेशवा की फौज ने मण्डला के किले में प्रवेश किया। इसी गड़बड़ी में संभा जी ने महाराज साहि को गोली मार दी। पेशवा को बड़ा दुःख हुआ। पेशवा चाहते थे कि महाराज साहि को जीवित गिरफ्तार किया जाय। पेशवा की विवेचना में सिद्ध हो गया कि संभा जी ने गोली मारी है। पेशवा अत्यन्त रुष्ट हुए और संभाजी की मूछें जला दीं।

पेशवा ने चार लाख रुपया ठहरा कर शिवराज साहि को राजा बनवाया वैशाख शुक्ल पूर्णिमा संवत् १८०० को अभिषेक हुआ।

बाद में शिवराजसाहि की आज्ञा से निजाम साहि ने कटार से संभाजी को और मूंगाराव को मार कर पिता की हत्या का बदला लिया। जाते जाते पेशवा ने शिवराज साहि को चेता दिया था कि, संभाजी और महन्त कल्यान पुरी को काम में न रखना। ये दोनों विश्वास के लायक नहीं हैं। ऐसी ही नीति अंग्रेजों की थी। पहिले किसी अधिकारी को भड़काकर अपनी तरफ मिलाते थे। फिर उस अधिकारी के द्वारा उसके मालिक का सर्वनाश कराते थे। और उस विश्वासघाती अधिकारी से कहते थे कि जब तुम अपने मालिक के नहीं हुए तो हमारे क्या होगे। ऐसा कह कर उस अधिकारी का भी सर्वनाश कर देते थे। अनैतिक अधिकारियों के प्रति मरहठों की। और अंग्रेजों की नीति प्रशंसनीय है।

शिवराज साहि (नं० ५९) (१७४२-१७४९)

शिवराज साहि के सामने एक ही समस्या थी कि पेशवा के चार लाख रुपया कैसे अदा किये जावें। जाते समय पेशवा निजाम साहि— शिवराज साहि के छोटे भाई जो उस समय शायद कल्पना भी न करते रहे हों कि उनको भी गद्दी मिलेगी, को अपने साथ में ले गये। निजाम साहि को पेशवा ने सागर भेज दिया, बीसा जी बलवन्तराव के पास, यह कह कर कि जब शिवराज साहि एक लाख रुपया अदा करें तब निजाम साहि को जाने देना। इस प्रकार निजाम साहि बन्धन में रखे गये थे। शिवराज साहि ने पूरे चार लाख अदा कर दिये। और निजाम साहि बन्धनमुक्त होकर अपने भाई शिवराज साहि की सेवा करने लगे।

चार लाख तो कहने की बात है। कि कर का चार लाख मिला।

लूट के चार लाख से अधिक मिले होंगे। जवाहिरात की कीमत क क्या ठिकाना।

गोंड़ राजाओं की कमजोरी का लाभ उठा कर रघो जी ने लांजी के छः गढ़ दबा लिये—लांफागढ़, बांकागढ़, संतागढ़, करवागढ़, दियागढ़, भंजनगढ़।

शिवराज साहि की मृत्यु के समय कुल की स्थिति इस प्रकार थी

महाराज साहि (नं० ५८)

विवाहित पत्नी से	रजपूतिन से	रखी हुई गोंड़नी स्त्री से
शिवराज साहि (नं० ५९)	धन सिंह	निजाम साहि (नं० ६१)

विवाहिता रानी	वेश्या से	मथुरा रजपूतिन से
विलास कुंअरि	दुर्जन साहि (नं० ६०)	मोहन सिंह
निः सन्तान		
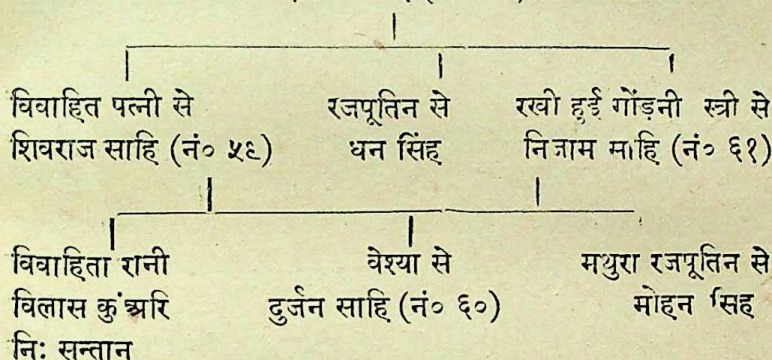
ऐसी कुल स्थिति में शिवराज सिंह के देहान्त के बाद विलासकुंअरि की इच्छानुसार दुर्जन साहि को राजा बनाया गया। निजाम साहि की इच्छा राजा होने की थी। पर भौजाई की इच्छा के सामने झुक कर उन्होंने भी दुर्जन साहि को गद्दी दिलाने में सहमति दी। निजाम साहि ने मोहन सिंह को बोरा में भर कर नर्मदा में बहवा दिया था। केवल दुर्जन साहि और निजाम साहि रह गये थे। सो दुर्जन साहि राजा हो गये।

दुर्जन साहि (नं० ६०) (१७४९-१७४९)

दुर्जन साहि की क्रूरता और उद्दण्डता प्रसिद्ध है। अत्यन्त अयोग्य शासक था। रानी विलास कुंअरि की सलाह से निजाम साहि ने दुर्जन साहि को खत्म करा कर, गद्दी हासिल की।

दुर्जन साहि को गद्दी दिलाने में रानी विलास कुंअरि प्रधान पक्षकार थीं। उन्होंने जब दुर्जन साहि की उद्दण्डता का अनुभव किया तो वे दुर्जन साहि को पदच्युत करने में निजाम साहि की सहायक हो गईं।

दुर्जन साहि को गद्दी दिलाने में अन्य सहायक इस प्रकार थे—

(१) लोधसाह बरगाह। इनके दो पुत्र खुमान और गुमान बाद में निजाम साहि के पक्ष में हो गये और इन्हीं दोनों भाइयों ने दुर्जन साहि को मार डाला। लोधसाह को निजाम साहि ने मरवा डाला।

(२) लछमन पासवान भी पहिले दुर्जन साहि को गद्दी दिलाने में सहायक थे। दुर्जन साहि की हत्या के समय इनको भी चोट लगी थी। इनकी दवा की भी व्यवस्था निजाम साहि ने की। ये भी बाद में निजाम साहि के दरबार में प्रतिनिधि हो गये।

(३) नन्द लाल वाजपेयी भी दुर्जन साहि को गद्दी दिलाने में सहा-थे। ये बाद में निजाम साहि के प्रतिनिधि बन कर सागर और नागपुर गये। और प्रत्येक को पचास हजार रुपया सालाना देना निश्चित कर आये। ताकि उनकी फौजें गढ़ा मण्डला राज्य में उपद्रव न किया करें।

पं० गणेश दत्त पाठक ने लिखा है कि दुर्जन साहि के विक्षिप्त हो जाने पर उन्हें मार कर निजाम साहि राजा हुए।

(६) दीपक की अन्तिम लौ

निजाम साहि (नं० ६१) (१७४९-१७७६)

निजाम साहि का शासन गोंड़ राज्य के अन्तिम स्वर्ण युग की झलक है। स्थानीय क्षेत्रों की लोक कथाओं में उनका बहुत नाम है। 'गढ़ेशनृप वर्णनम्' के चार पद्यों में (४८-५१) प्रशंसा लिखी है। शासन स्वच्छ और प्रगतिशील था। कृषि की उन्नति हुई। बाग-बगीचा लगे। इनके वैभव की समाप्ति यदि इनकी मृत्यु के समय ही मान ली जाय, तो केवल बयालीस वर्ष बाद सन् १८१८ में अँग्रेजी राज्य का पदार्पण हुआ। निजाम साहि की मृत्यु हुए अभी दो सौ वर्ष भी नहीं हुए। पर परिवर्तन बहुत हो गये।

जिस मण्डला में गोंड राजा निजाम साहि का दरबार लगता था, वहीं आज कल गिरजाघरों में उन्हीं गोड़ों को इसाई बनाया जा रहा है। दो सौ वर्ष पहले जो राजा थे आज उनको सदैव से असभ्य कहा जा रहा है। जिसे माहिष्मती नगरी मानते थे, उसको आज माहिष्मती मानने से इन्कार किया जाता है। पुस्तस्थ प्रमाण की माँग की जाती है। पुस्तस्थ प्रमाण मैं नहीं दे सकता—यह मेरी व्यक्तिगत अज्ञानता है। मण्डला के किले में सहस्रबाहु की दो मूर्तियाँ हैं। इतना प्रमाण कम नहीं है। पुस्तस्थ प्रमाण के वर्तमान अभाव में पत्थर

की मूर्तियों के प्रमाण हैं । आज गोड़ों को हिन्दू से भिन्न अलग जमात (ट्राइव) माना जाता है । दो सौ वर्ष से कम में समय परिवर्तन हो चुका है ।

इन सब बातों के कारण हैं । जनता को इतिहास नहीं मालूम । निजाम साहि का राज्य-वर्णन फारसी इतिहासकारों ने नहीं लिखा । उनका मुगल दरबार स्वयं समाप्त हो रहा था । नादिर शाह का हमला हो चुका था । मुगल इतिहासकार नादिर शाह की बर्बरता का वर्णन करते कि निजाम साहि के वैभव का, विजेता का वर्णन यदि उचित है यदि अकबर की विजय की प्रशंसा उचित है, तो नादिर शाह की भी तारीफ करना था, पर मुगल इतिहासकारों ने मुगलों की विजय की प्रशंसा की और मराठों की विजय की निन्दा की । नादिर शाह की निन्दा की । अंग्रेजों ने भी निजाम साहि के बारे में कुछ नहीं लिखा । क्योंकि फारसी इतिहासकारों ने नहीं लिखा । जो कुछ भी अंग्रेज इतिहासकारों के लेख मिलते हैं वे स्लीमैन पर निर्भर हैं । मेरी सामग्री का मूल पं० गणेश दत्त पाठक का लिखा इतिहास है । सन् १८६० में डाक्टर हॉल ने रामनगर शिलालेख के बारे में एक ले (जौर्नल में आफ अमेरिकन ओरिएण्टल सोसायटी पोथी सात लिखा । उस लेख की भूमिका में लिखा है कि निजाम साहि के समय में एक *ताम्रपत्र* मिला था जिससे यादवराय का समय संवत् २०१ (सन् १४४) सिद्ध होता है ।

निजाम साहि का समय गढ़ामण्डला के गोंड़ राज्य के अवसान का समय था । तुलनात्मक दृष्टि से अमरीका और यूरोप की उन्नति का भी यही समय था । बंगाल में लार्ड कार्नवालिस का शासन अपनी उन्नति के स्वप्न देख रहा था । अमरीका का स्वातन्त्र्य संग्राम समाप्त हो रहा था । १७८६ में जार्ज वाशिङ्गटन प्रथम सभापति बने । लन्दन में तृतीय जार्ज का राज्य था । जेम्स बाजवेल डाक्टर सेमुअल जानसन का जीवन चरित लिख रहे थे । इन्हीं दिनों मण्डला में निजाम साहि का राज्य था और मण्डला में ही 'गजेन्द्रमोक्ष' सरीखे काव्य ग्रन्थ तथा 'गढ़ेशनृपवर्णनम्' सरीखे इतिहास ग्रन्थ लिखे जा रहे थे ।

अमरीका और यूरोप ने भौतिक उन्नति की । सांसारिक सुखों से उन्माद बढ़े । जैसे साम्राज्यवाद, पूँजीवाद, अत्याचार, गुलामी प्रथा आदि । उनके उन्माद की झलक आज भी अफ्रीका में मारीशस के गन्ना खेतों में तथा भारत के चाय बगानों में दिखती है । आजकल

का धर्म-परिवर्तन या कारखानों द्वारा संसार भर के बाजारों में आधिपत्य की लालसा ऐसी ही वृत्ति के द्योतक हैं। निजामसाहि के समय में गोंड़ सम्पन्न थे। राजा विवेकमय थे। राज्य समाप्त हो गया-प्रजा की सम्पन्नता का स्थान लगातार की अवनति नेले लिया। पश्चिमी देशों में भौतिक सम्पन्नता के साथ कुरुचि बढ़ती गई। उन्होंने हम को Ultima thule g civilization, the dreaded home g the tiger, the Goud, and the devil कहा। हमको सुनना पड़ा। उनके पास कुरुचिमयी सम्पन्नता और हमारी अवनति। इन दो कारणों से बहुत भेद पड़ गया। ऐसी उक्ति के लिए न तो कोई औचित्य है और न ऐसी उक्ति का प्रभाव समय के कारण आप ही आप समाप्त हो जायगा।

निजामसाहि के दरबार में अच्छे दक्ष कर्मचारी अपने अपने पदों पर नियुक्त थे। कुछ के नाम इस प्रकार हैं।

दीवान विश्राम सिंह थे। राजा के प्रतिनिधि नन्द लाल बाजपेयी और लछमन पासवान थे। निजाम साहि के समय में नागपूर और सागर की फौजें अकसर उपद्रव किया करती थीं। राजा ने नन्दलाल बाजपेयी को नागपूर और सागर भेजा। वे प्रत्येक को पचास हजार रुपया सालाना देने की बात करके समझौता कर आये। पौराणिक लक्ष्मी प्रसाद दीक्षित थे। जिन्होंने अपना काव्य ग्रन्थ 'गजेन्द्रमोक्ष' विजयादशमी संवत् १८१५ (सन् १७५८) के दिन, निजाम साहि को मण्डला में समर्पित किया। इनका दीक्षित कुटुम्ब अभी भी मण्डला में है। इस कुटुम्ब की प्राचीन पुस्तकें नागपूर विश्वविद्यालय को दी जा चुकी हैं। नागपूर का मण्डलेकर कुटुम्ब इसी दीक्षित कुटुम्ब का एक अंश है।

प्रेमनिधि ठक्कुर, सचल मिश्र और शिवराम मिश्र धर्म शास्त्री थे। सीलाधर झा और लोकनाथ झा, कर्मकाण्डी थे। मनसाराम भट्ट काशी कर अनुष्ठानी थे। दूधाराय ज्योतिषी थे। फत्ते बाजपेयी और व्रजनाथ बाजपेयी पुरोहित थे।

एक व्रजपति बाजपेयी ने प्रतिनिधि का काम करने से इंकार किया था। संभवतः व्रजपति बाजपेयी और व्रजनाथ बाजपेयी एक ही व्यक्ति के दो नाम हैं। व्रजपति बाजपेयी की जागीर का गाँव बबवासर (१) परगना भंवरगढ़ जब्त करके रघुवंश बाजपेयी को दे दिया गया रघुवंश बाजपेयी ने पूना जाकर सालाना कर में दस हजार रुपया कम

कराया। और बाद में तीन महल देकर माफ करा लिया। उन तीन गढ़ों के नाम—गौरझामर, पनागर और देवरी हैं।

नीलकण्ठ कायस्थ वैद्य थे। जो अलमोड़ा से बुलाये गये थे। राजा ने सोचा कि जब लक्ष्मण को लंका में शक्ति लगी तो हनुमान जी, हिमालय से संजीवनी लाये थे। जहाँ से संजीवनी लाई थी वहाँ के वैद्य अच्छे होंगे इसी अनुमान पर से राजा निजाम साहि ने अलमोड़ा से वैद्य बुलाया। इनका वैद्य कुटुम्ब महाराजपूर मण्डला में अभी भी है।

निजाम साहि की मृत्यु भाद्रपद संवत् १८३३ (सन् १७७६) में हुई। मण्डला के किले में सीतलामाई की मढ़िया के पश्चिम तरफ गोंड़ राजाओं का श्मशान है।

निजाम साहि की मृत्यु के केवल पाँच वर्ष बाद १७८१ में गोड़ों का राज्य पूरी तरह समाप्त होकर सागर के मराठों का पूरा कब्जा हो गया। इन पाँच वर्षों में नरहरि साहि और सुमेद साहि दो राजा हुए। मराठों का राज्य छत्तीस वर्ष रहा। सन् १८१८ में अँग्रेज आ गये।

नरहरि साहि (नं० ६२) (१७७६-१७८०)

नरहरि साहि का शासन काल प्रपंचमय था। विनाश का ताण्डव नृत्य होता रहा। शासन लगातार नहीं रहा। बीच में ८।६ महीनों के लिये नरहरि शाह राज्यच्युत हो गये थे और इनके स्थान में एक सुमेदशाह (नं०६३) ने भी राजा कहलाने का सुख भोग किया। इनके नाम से मण्डला जिला के पूर्व में मोतीनाला के पास नरहरगंज बहुत बड़ा गाँव है। उससे अनुमान होता है कि इन्होंने पशुपालन और कृषि में चित्त दिया होगा। इनके बारे में भी सब सामग्री पं० गणेश दत्त पाठक की पुस्तक से ली गई है। नरहरि साहि नासमझ और अयोग्य शासक थे।

ज्यों ही निजाम साहि की मृत्यु हुई राज्य के अधिकार के लिये खींचातानी शुरू हो गई। निजाम साहि ने अपने प्रतिनिधि रघुवंश वाजपेयी को पहिले से लिख रखा था कि उनके निजाम साहि के दासी पुत्र महिपाल सिंह को गद्दी दी जाय। उसके अनुसार सागर से मान्यता प्राप्त करके रघुवंश वाजपेयी ने महिपाल सिंह को गद्दी पर बैठाया।

यह बात रानी विलास कुंअरि (शिवराज साहि नं० ५६ की विधवा,

जो १७४६ में विधवा हुई थी) को अच्छी 'नहीं लगी। उसने एक माह के अन्दर महिपाल सिंह को गद्दी से उतरवा दिया और नरहरि साहि को गद्दी पर बैठाया। इसके साथ-साथ उसने मूरतसिंह और गणेश पायावान को मरवा डाला। विक्रम शाह का पुत्र गंगा प्रसाद घायल होकर बचा। उसी के क्रोध में पड़कर वाजपेयी वंश के लगभग १२५ स्त्री पुरुष व बालक आपस में लड़ाई करके मर गये। भाग्यवश पुरुषोत्तम वाजपेयी पाँच सात साथियों समेत भाग कर बचे। उनको पुरुषोत्तम वाजपेयी को सरौली तालुका में जागीर देकर मन्त्री बनाया गया। हम लोग छुटपन में सुना करते थे कि वाजपेयी वंश समाप्त प्राय हो गया था। एक गर्भिणी स्त्री किसी बारी जाति वाले गृहस्थ के घर में छुपकर बची थी। उस बालक से वाजपेयी वंश फिर से चला।

नरहरि साहि को गद्दी में देखकर किसी सुमेद साहि ने गद्दी प्राप्त करने के लिये भोंसला से प्रार्थना की। भोंसला ने सुअवसर समझ कर, सेना भेजी जो नागपुर से छपारा तक आई। राजा से सन्धि करने के लिये पुरुषो-त्तम वाजपेयी को भेजा। पौने चार लाख रुपयों में राजीनामा हुआ। सेना वापस चली गई।

सुमेद साहि का प्रयत्न विफल हो गया। दूसरा प्रयत्न किया। अब सुमेद साहि सागर गये। वहाँ सागर में वीसा जो वलवन्त राव सूबेदार थे। वहीं वीसा जी जिनके पास पेशवा ने निजाम साहि को रखा था, कि शिवराज साहि से रुपया मिल सके। यद्यपि सूबेदार पेशवा के प्रति-निधि थे तथापि प्रायः अर्धस्वतन्त्र बन बैठे थे। सो वीसा जी ने सुमेद साहि की प्रार्थना को सुअवसर समझा। वीसा जी ने नरहरि साहि को खबर दी। आशय स्पष्ट था कि सन्धि करो और रुपया दो या युद्ध करो और नष्ट हो जाओ। नरहरि साहि ने भोंसला को छपारा की सन्धि के पौने चार लाख रुपया नहीं दिये थे। नरहरि साहि सागर वालों से सन्धि चाहते थे, पर रुपया नहीं देना चाहते थे। लोभ था और भय भी था कि हमला न कर दें। वे ही पुरुषोत्तम वाजपेयी फिर सन्धि की बात को भेजे गये। उन्होंने सवा चार लाख रुपयों में सन्धि की बात की और राजा नरहरि साहि की स्वीकृति के लिये मण्डला में समाचार दिया। राजा ने अस्वीकार करके पुरुषोत्तम वाजपेयी को वापिस बुला लिया। इस प्रकार राजा नरहरि साहि ने अपने लिये आपत्ति को निमन्त्रण दिया।

वीसा जी ने समझ लिया कि सन्धि की बात-चीत असफल हो गई। वीसा जी ने आक्रमण किया। गढ़ा पर और दक्षिण के भाग पर कब्जा कर लिया। रानी विलास कुंअरि ने सन्धि के प्रस्ताव किये। इन शर्त्तों पर सन्धि हुई। वीसा जी को तीस लाख रुपया मिलेंगे। इस प्रकार कि—तेरह लाख लूट के मुजरा के ३ लाख ओल (hostage) के। चौदह लाख किस्त बन्दी के। इन तीस लाख के बदले में अदायगी की दिल जमई के लिये, सागर के राजा के पास तीन व्यक्ति ओल में दिये गये। वे तीन व्यक्ति ये हैं—राजा नरहरि साहि, पुरुषोत्तम वाज-पेयी, भेड़ाघाट के महन्त गंगागिरि का चेला शिवगिरि। इस प्रकार राजा नरहरि साहि का पहिला राज्य-काल दो वर्ष में समाप्त हुआ। अब सुमेद साहि राजा बनाये गये।

नरहरि साहि के दो वर्ष राज्य कर चुकने पर और नजरबन्द हो जाने पर *सुमेद साहि* (नं० ६३) राजा हो गये। सुमेद साहि नरहरि से अधिक अयोग्य थे। सुमेद साहि को भय हुआ कि कहीं रानी विलास कुंअरि हमारे साथ भी छल न करे अतएव उन्होंने रानी विलास कुंअरि को मरवा डाला।

वीसा जी ने नरहरि साहि आदि को ओल में लेकर और शहादत खाँ वगैर को पदच्युत करा कर गोंड़ राजा सुमेद साहि की शक्ति को क्षीण कर दिया था। अतः सुमेद साहि वीसा जी को छकाना चाहते थे। सो सुमेद साहि ने वीसा जी के विरुद्ध खड़े होने के लिये अपने आधीन जमीन्दारों को उत्तेजित किया। युद्ध हुआ। सुमेदसाहि के कई पक्षकार मानगढ़ में इकट्ठा हुए। इनमें रामगढ़ वाले चन्द्रहंस और शहादत खाँ फौजदार प्रमुख थे। वहीं मानगढ़ में सागर वाले वीसा जी भी पहुँचे। युद्ध में रामगढ़ वाले चन्द्रहंस मारे गये। शहादत खाँ भाग कर चौरागढ़ चले गये।

वीसा जी ने धोखा देकर सुमेद साहि को गढ़ा बुलाया और तिलवारा में उन्हें कैद कर लिया। सुमेद साहि कैदी की हालत में खुरई में मरे। सुमेद साहि ने केवल नौ माह राज्य किया।

वीसा जी ने *फिर से नरहरि साहि* (नं० ६२) को राजा बनाया। हर्जाना का रुपया पटाने के लिये भेड़ाघाट के महन्त गंगागिरि को जिम्मे-दार बनाया और मण्डला के किले में निगरानी के लिये *मोराजी* को मुकर्रर कर दिया। गंगागिरि और वीसा जी गढ़ा को चले गये। गंगागिरि

को शंका हुई कि वीसा जी ने कपट किया। याने राज्य पर कब्जा करने के ध्येय से मोरा जी को मण्डला में मुकर्रर किया है। इसलिये महन्त गंगागिरि ने धोखा से वीसा जी को मरवा डाला। (पं० गणेश दत्त पाठक ने 'वीसा जी दादूबा' लिखा है, वीसा जी वलवन्त राव होना चाहिये था)

अन्तिम युद्ध

वीसा जी की सेना जबलपुर में थी। वहाँ से भाग कर बलेह में जमा हुई। बाबू नारायण सेनापति हुए। नरहरिसाहि महन्त गंगागिरि और शहादत खाँ एकत्र होकर तेजगढ़ गये। वहाँ सागर वाले से लड़ाई हुई। शहादत खाँ मारे गये। नरहरिसाहि भाग कर चौरागढ़ में छिपे। महन्त गंगागिरि रामगढ़ की तरफ भागे। उनका चेला देवगिरि बनारस की तरफ गया और वहाँ से नागा लोगों की फौज को अपनी सहायता के लिये ले आया। महन्त गंगागिरि नागाओं की उस फौज को साथ लेकर भंडरा पर पहुँचे और वहाँ भी सागर वालों से हार गये, और फिर रामगढ़ को भाग गये। मोरा जी भी मण्डला से जाकर सागर की फौज को साथ लेते हुए महन्त गंगागिरि को कई स्थानों में हरा कर उन्हें और नरहरिसाहि को कैद कर सागर ले गये। महन्त गंगागिरि को हाथी के पैर में बँधकर मरवा डाला। नरहरि साहि बहैसियत कैदी के गौरझामर के किले में मरे।

इस तरह १७८० में गढ़ामण्डला का सम्पूर्ण राज्य, सागर वालों के वश में पूरी तरह से आ गया। गोंड़ों का राजवंश गढ़ामण्डला से समाप्त हो गया।

(१०) गोंड़ राज्य का सिंहावलोकन

(१) *सामजिक स्थिति*

प्रजा सुखी थी। राजा सज्जन थे। राजा के दिल में प्रजा के लिये सहानुभूति थी। प्रजा के दिल में राजा के लिये श्रद्धा और भक्ति थी। दोनों में धर्म प्रेम था। अपनी आन की रक्षा करने का उत्साह था। प्रजा के पास सात्विक कमाई का धन था। राजा के पास अमरिमित सात्विक कमाई का धन था। हाथी थे। अपरिमित वैभव था। गौ, ब्राह्मण, साधु का आदर था।

राजाओं का इतिहास, नामावलि, कृत्य और प्रजा की सज्जनता सब

मिल कर ऊँची सभ्यता सिद्ध करते हैं। ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा से वे हिन्दू ही सिद्ध होते हैं। मण्डला की विष्णु मूर्ति में गोंड़ और बैगा जाति के पहिनावे के अनुसार पीताम्बर के स्थान में लंगोटी (कोपीन) है। वे विष्णु को अपनी रहन-सहन के अनुसार मानते हैं। सभी हिन्दू देवताओं को मानते हैं।

सर्वे पाठक को इतिहासकारों ने सुरभी पाठक लिखा है। सर्व शब्द का कर्त्ता बहुवचन रूप सर्वे है। किसी ने अंग्रेजी में SURVE लिखा होगा। अंग्रेजी व्ही का हिन्दी में किसी ने 'भ' उच्चारण करके सुरभी बना दिया।

मुगल इतिहासकारों ने गोंड़ जाति की निन्दा की है। उनसे बल पाकर और अपने राजनीतिक ध्येय से प्रेरित हो करीब एक सौ वर्षों से अंग्रेजों ने भी निन्दा की। असर पड़ा कि—'गोंड़ जाति सदैव से असभ्य है। वे हिन्दू नहीं हैं। हिन्दू विरोधी हैं। एनिमिस्ट हैं। उनमें ब्लैक मैजिक का प्रचलन है। वे अलग ट्राइब हैं।' सारांश कि अफरीका के नीग्रों और हब्शियों की तरह असभ्य हैं। इनको सभ्य बनाने का एक ही तरीका है इनको ईसाई बना दिया जाय। ताकि शिक्षा, स्वच्छता, स्वास्थ्य, स्वच्छन्दता आदि की उन्नति हो सके। कुछ भारतीय विद्वान इस कलुषित प्रचार को सत्य मान रहे हैं।

इतिहास का निष्कर्ष गोड़ों को सभ्य सिद्ध करता है। और अंग्रेजों के प्रचार को निर्जीव कर देता है। अंग्रेजों का प्रचार बुद्धि के और प्रमाणों के विरुद्ध है।

(२) राजनीतिक स्थिति।

जब यादव राय ने गढ़ा में छोटा-सा राज्य स्थापित किया था उसके पहिले भी गोंड़ लोग राज्य करना जानते थे। लांजी में उनका राज्य था ही। उन दिनों छोटे-छोटे राज्य थे। पचीस-तीस मील के क्षेत्र फल को भी राज्य कहते रहे होंगे। आजकल दृष्टिकोण में विशालता आ गई है। एक छोटे से गढ़ा के राज्य ने अपने पुरुषार्थ से इतिहास बनाया। आश्चर्य और प्रशंसा की बात है। अधिक आश्चर्य और प्रशंसा की बात है कि चौदह सौ वर्षों तक राज्य कायम रखा। अपने को सभ्य कहने वाली यूरोपियन शक्तियों ने कहीं भी दो-तीन सौ वर्षों से अधिक राज्य कायम नहीं रखा। भारत यूरोप के हाथ से जा चुका। अफरीका जा रहा है। गोंड़ राजाओं के विरुद्ध उन्मादक

कोई उदाहरण अबुल फजल भी नहीं दे सका। अंग्रेजों के विरुद्ध उन्माद के कई उदाहरण हैं, जैसे जलियानवाला बाग।

गोंड़ राजाओं ने समय-समय पर गढ़ा से राजधानी बदली। सिंगौर गढ़ अस्थायी राजधानी थी। चौरागढ़ सम्पत्ति के कारण थी। पर रामनगर में राजधानी लाने का कारण सम्पत्ति नहीं विपत्ति थी। रामनगर की राजधानी अत्यन्त विस्तृत, सुन्दर और अधिक आदमी वाली थी। मण्डला और रामनगर के बीच में केवल दस मील की दूरी है। मण्डला का नाम किसी भी संस्कृत पुस्तक में नहीं मिलता। रामनगर और मण्डला के अवशेष अच्छी हालत में हैं, अर्थात् गौरव गाथा कह रहे हैं। उनकी रक्षा होने से गौरव गाथा स्थायी हो जावेगी।

प्रपञ्चशास्त्र में भी गोंड़ राजा पारंगत थे। प्रपञ्च परिस्थिति वश होते थे। प्रकृति से गोंड़ राजा प्रपञ्चों के विरुद्ध थे। आज सवातीन सौ वर्ष बाद भी, उलटी नाल घोड़ों में लगवाने की बात अपना नवीनता रखती है।

(३) *समय—विभाजन*

गढ़ामण्डला के गोंड़ राजाओं के पूरे राज्य-काल को तीन भागों में बाँटा जा सकता है। आदि समय, मध्य समय और अवसान समय।

आदि समय यादव राय से महाराजा संग्राम साहि के पहिले अर्जुन सिंह तक मानना चाहिये। इस समय में ४७ राजा हुए। जिन्होंने सन् ४०० से सन् १५०० तक अर्थात् ग्यारह सौ वर्ष राज्य किया। मध्य समय महाराजा संग्राम साहि से दुर्गावती की मृत्यु तक मानना चाहिये। इस समय में तीन राजा हुए। महाराजा संग्रामसाहि (नं० ४८) दलपति (नं० ४९) और वीर नारायण (नं० ५०) इन तीनों ने सन १५०० से १५६४ तक अर्थात केवल ६४ वर्ष राज्य किया। रानी दुर्गावती ने इन तीनों राजाओं का शासन देखा।

अवसान समय चन्द्रसाहि (नं० ५१) से सुमेद साहि (नं० ६३) तक मानना चाहिए। इसमें तेरह राजाओं ने सन् १५६४ से सन् १७८० तक अर्थात २१६ वर्ष राज्य किया। अवसान का आरम्भ आसफ खाँ ने किया और पूर्णाहुति सागर वालों ने की। राजसिंहासन की लिप्सा को या हरि सिंह, पहाड़ सिंह और उसके दो लड़कों को दोष देना व्यर्थ है। सब समय की बात है। समय ही प्रशंसा कराता है।

समय ही निन्दा कराता है। यदि प्रशंसा निरर्थक है तो निन्दा भी निरर्थक है। राजवंश के अवसान होने में भी २१६ वर्ष लग गये।

(४) अवशेष

गोंड़ राजवंश के अवशेष, तिथियों में हैं, पत्थरों में हैं और कागजों में है।

तिथियों में कुछ ऐसे अवशेष हैं जिनकी तिथि किसी प्रकार से अमान्य नहीं है। जैसे:—

संवत् १५७०	(सन् १५१३)	का महाराजा संग्राम साहि का सोने का सिक्का (पुतरी) जिसका पता १६१ में रा० ब० हीरा लाल ने लगाया था। जो कलकत्ते के अजायब घर में सुरक्षित है। इसी साल का सती लेख।
संवत् १७२४	(सन् १६६७)	का रामनगर का शिलालेख, जो पढ़ा जा सकता है।
संवत् १७६६	(सन् १७१२)	में नरेन्द्र साहि के शासन काल में भानुमिश्र की 'रसमञ्जरी' काव्य की प्रति की गई।
संवत् १७६६	(सन् १७४२)	महाराज साहि की मृत्यु
संवत् १८१५	(सन् १७५८)	विजयादशमी के दिन कवि लक्ष्मी प्रसाद दीक्षित ने राजा निजाम साहि को 'गजेन्द्र मोक्ष' काव्य समर्पित किया।

पत्थरों के अवशेषों में किले, मूर्तियाँ, राजचिह्न और बहुत से सती लेख तथा शिलालेख होंगे।

कागजों के अवशेष—स्लीमैंन, गजटियर, कनिंघम, कैप्टेन वार्ड, डा० हॉल, आदि की कृतियाँ। 'गढ़ेश नृप वर्णनम्' तथा 'गजेन्द्र मोक्ष' का नवाँ सर्ग। वाजपेयी लोगों के कागज १६२६ के पूर में वह गये। दीक्षित कहाँ की पुस्तकें नागपूर यूनिवर्सिटी में जा चुकी। मण्डला में और प्राचीन कुटुम्बों में कुछ साहित्य मिल सकता है। मुगल काल के साहित्य

में आइने अकबरी, अकबर नामा, मासिर उल आलम गीरी, गुलबदन के मैम्योर आदि सब साहित्य कुछ न कुछ प्रकाश डालते हैं।

आज भी साहित्य उपलब्ध है, उससे इतिहास पर कुछ प्रकाश पड़ता है। खोज कभी पूरी नहीं होती।

गढ़ामण्डला के गोंड़ राज वंश के वंशज आज कल दमोह जिला के सिंलापरी गाँव में निवास करते हैं।

(११) शासन के वर्ष

राजाओं के नामों में शंका उपस्थित है। तब राज्यारम्भ के समय में और भोगकाल में होने की ही है। यद्यपि किसी एक मत को इदमित्थम् नहीं कहा जा सकता; तथापि मतभेद इतना नागण्य है कि सब का स्रोत एक-सा ही प्रतीत होता है। मौलिक रचना की दृष्टि से तीन विद्वानों की सूचियाँ प्राप्य हैं। सबसे पहिली सूची सन् १७६० के करीब की 'गढ़ा-नृपेश वर्णनम्' में मैथिल श्री रूपनाथ की है। दूसरी सूची १८३५ की स्लीमैन है। आचार्य जी० व्ही० भावे ने इन दोनों का एकीकरण किया है। तीसरी सूची १६०५ की पं० गणेदत्त पाठक की है। तीनों का एकत्रीकृत रूप नीचे दिया जाता है। नाम रामनगर के शिलालेख के अनुसार हैं। स्लीमैन ने रत्नहोन (नं० २७) को अलग व्यक्ति न मानकर कर्ण (नं० २६) का ही नाम कर्णोथिरत्नसेन लिखा है, जो शिलालेख के पद्य नं० ७ के अनुसार स्पष्ट भूल है।

तीन विद्वानों की तुलनात्मक सूची

राजाओं की क्रम संख्या	राजा का नाम	मैथिल श्री रूपनाथ के अनुसार			स्लीमैन के अनुसार		पं० गणेशदत्त पाठक के अनुसार		खास बातें
		राज्यारंभ का विक्रम संवत्	तदनुसार ईस्वी सन्	शासन के वर्ष	राज्यारंभ का ईस्वी सन्	शासन के वर्ष	राज्यारंभ का विक्रम संवत्	शासन के वर्ष	
१	२	३	४	५	६	७	८	६	१०
१	यादवराय	२१८	१५८	५	३८२	५	४१५	५	
२	मांधवसिंह	२२०	१६३	३३	३८७	३३	४२०	३३	
३	जगन्नाथ	२५३	१६६	२५	४२०	२५	४५३	२५	

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
४	रघुनाथ	२७८	२२१	७४	४४५	६४	४७८	६४	
५	रुद्रसिंह	३५२	२९५	२८	५०९	२८	५४२	२८	
६	बिहारीसिंह	३८०	३२३	३१	५३७	३१	५७०	३१	
७	नरसिंहदेव	४११	३५४	३३	५४८	३३	६०१	३३	
८	सूर्यभानु	४४४	३८७	२९	६०१	२९	६३४	२९	
९	वासुदेव	४७३	४१६	१८	६३०	१८	६६३	१८	
१०	गोपालसाहि	४९१	४३४	४२	६४८	२१	६८१	२१	
११	भूपालसाहि	५३३	४७६	६०	६६९	१०	७०२	१०	
१२	गोपीनाथ	५९३	५३६	३७	६७९	४७	७१२	३७	
१३	रामचन्द्र	६३०	५७३	१३	७२६	३	७४९	१३	
१४	सुरतानसिंह	६४३	५८६	२९	७२९	२९	७६२	२९	
१५	हरिहरदेव	६७२	६१५	१७	७५८	१७	७९१	१७	
१६	कृष्णदेव	६८९	६३२	५४	७७५	१४	८०८	१४	
१७	जगतसिंह	७४३	६८६	९	७८९	९	८२२	९	
१८	महासिंह	७५२	६९५	२३	७९८	२३	८३१	२३	
१९	दुर्जनमल्ल	७७५	७१८	१९	८२१	१९	८५४	१९	
२०	यशःकर्ण	७९४	७३७	३६	८४०	३६	८७३	३६	
२१	प्रतापदित्य	८३०	७७३	२४	८७६	२४	९०९	२४	
२२	यशश्चन्द्र	८५४	७९७	१४	९००	१४	९३३	१४	
२३	मनोहरसिंह	८६८	८११	४९	९१४	२९	९४७	२९	
२४	गोविन्दसिंह	९१७	८६०	३५	९४३	२५	९७६	२५	
२५	रामचन्द्र	९५२	८९५	२१	९६८	२१	१००१	२१	
२६	कर्ण	९७३	९१६	१६	९८९	३७	१०२२	१६	
२७	रत्नसेन	९८९	९३२	३१	× ×	×	१०३८	२१	
२८	कमलनयन	१०२०	९६३	४२	१०२६	६	१०५९	३०	
२९	नरहरिदेव	१०६२	१००५	२६	१०३२	७	१०८९	२६	
३०	वीरसिंह	१०८८	१०३१	७	१०३९	२६	१११५	७	
३१	त्रिभुवनराय	१०९५	१०३८	३८	१०६५	२८	११२२	२८	
३२	पृथ्वीराय	११३३	१०७६	२१	१०९३	२१	११५०	२१	
३३	भारतीयचन्द्र	११५४	१०९७	३२	१११४	२	११७१	२२	
३४	मदनसिंह	११८६	११२९	२०	१११६	४०	११९३	२०	
३५	उग्रसेन	१२०६	११४९	३६	११५६	३६	१२१३	३६	
३६	रामसाहि	१२४२	११८५	३०	११९२	२४	१२४९	२४	
३७	ताराचन्द्र	१२७२	१२१५	३३	१२१६	३४	१२७३	३४	
३८	उदयसिंह	१३०५	१२४८	१५	१२५०	१५	१३०७	१५	
३९	भानुमित्र	१३२०	१२६३	१६	१२६५	१६	१३२२	१६	
४०	भावनीदास	१३३६	१२७९	१२	१२८१	१२	१३३८	१२	
४१	शिवसिंह	१३४८	१२९१	२६	१२९३	२६	१३५०	२६	
४२	हरिनारायण	१३७४	१३१७	६	१३१९	६	१३७३	६	

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
४३	सबलसिंह	१३८०	१३२३	३९	१३२५	२९	१३८२	२९	
४४	रायसिंह	१४१९	१३६२	४१	१३५४	३१	१४११	३१	
४५	दादीराय	१४६०	१४०३	३७	१३८५	३७	१४४२	३७	
४६	गोरक्षदास	१४९७	१४४०	४६	१४२२	२६	१४७९	२६	
४७	अर्जुनसिंह	१५४३	१४८६	३२	१४४८	३२	१५०५	३२	
४८	संग्रामसाहि	१५७५	१५१८	५०	१४८०	५०	१५३७	५०	
४९	दलपतिसाहि	१६२५	१५६८	१८	१५३०	१८	१५८७	१८	
५०	वीरनारायण	१६४३	१५८६	१५	१५४८	१५	१६०५	१५	
५१	चन्द्रसाहि	१६५८	१६०१	२३	१५६३	१२	१६२०	१२	
५२	मधुकरसाहि	१६८१	१६२४	२८	१५७५	२४	१६३२	२०	
५३	प्रेमनारायण	१७०९	१६५२	१९	१५९९	११	१६५२	१३	
५४	हिरदैसाहि	१७२८	१६७१	३२	१६१०	७१	१६६३	७१	
५५	छत्रसाहि	१७६०	१७०३	७	१६८१	७	१७३४	७	
५६	केसरीसाहि	१७६७	१७१०	३	१६८८	३	१७४१	३	
५७	नरेन्द्रसाहि	१७७०	१७१३	२५	१६९१	४०	१७४४	४५	
५८	महाराजसाहि	१७९५	१७३८	१२	१७३१	११	१७८९	११	
५९	शिवराजसाहि	१८०७	१७५०	७	१७४२	७	१८००	७	
६०	दुजनसाहि	१८१४	१७५७	½	१७४९	२	१८०६	१	
६१	निजामसाहि	१८१४½	१७५७½	२६½	१७५१	२७	१८०७	२६	
६२	नरहरसाहि	१८४१	१७८४	५	१७७८	३	१८३३	४	
६३	सुमेदसाहि	१८४६	१७८९	३	१७८१	×	१८३७	×	

—

चौथा अध्याय

रामनगर का शिलालेख

(१) स्थान परिचय
(२) शिलालेख का महत्व
(३) राजाओं की सूची
(४) रामनगर के शिलालेख का पाठ

(१) स्थान परिचय

नर्मदा और बुढ़नेर के संगम में देवगांव है। नर्मदा और बंजर के संगम में मण्डला है। इन दोनों संगमों के बीच में अर्थात् मण्डला और देवगाँव के बीचोबीच रामनगर है। रामनगर मण्डला से १२ मील पूर्व है। मण्डला उत्तर तट में है, रामनगर दक्षिण तट में है। मण्डला से जाने में नर्मदा पार करना पड़ती है। मोटर से जाने के दो रास्ते हैं। एक पटपरा होकर जो रामनगर के इस पार समाप्त हो जाता है और वहाँ से डोंगी में जाकर ही रामनगर मिलता है। मोटर का दूसरा रास्ता महाराजपूर पुरवा होकर धुधरी रोड का है जिसमें ठेठराम नगर तक मोटर पहुँच जाती है, क्योंकि नर्मदा मण्डला के पुल में और बंजर पुरवा के पुल में पार हो जाती है।

नर्मदा की धारा रामनगर से मण्डला तक की महत्वपूर्ण है। इतने ही स्थान में चौड़ी गहरी और नाव चलने लायक है। रामनगर से ऊपर और मण्डला से नीचे नर्मदा की धारा पहाड़ी, उथली, प्रवाह युक्त और नाव न चलने लायक है। मोटर से रामनगर पहुँचने में समय बहुत कम लगता है। मण्डला से रामनगर नाव में जाने में अधिक समय लगता है, पर प्राकृतिक सौन्दर्य के कई अति सुन्दर मोड़ दिखते हैं, जहाँ नर्मदा बल खाती हुई धनुषाकार बहती है। प्रसिद्ध है कि मण्डला और रामनगर के बीच में भूमिगत सुरंग थी जो नर्मदा प्रवाह के नीचे होकर जाती थी।

जो पर्यटक रामनगर जाते हैं वे मुख्य महल जिसका नाम राय बहादुर हीरालाल ने मोती महल लिखा है, रायभगत का महल और शिलालेख देखकर चले आते हैं। न कोई गाइड है न कोई पुस्तिका। तो कई महत्वपूर्ण स्थान बिलकुल छूट जाते हैं। रामनगर के आस-पास दस बीस महल हैं। गोंड़ राजाओं की सब राजधानियों में रामनगर सबसे अधिक विस्तृत और सम्पन्न राजधानी थी। सबसे अधिक अवशेष रामनगर में हैं और अच्छी हालत में हैं। अभी नष्ट नहीं हो पाये हैं। आस-पास दस-बीस महल हैं। रामनगर देखने के लिये चन्द घण्टे या एक दो दिन यथेष्ट नहीं। कहीं अशोक के वृक्ष हैं, कहीं बेल के।

औसत पर्यटक ऐसा ही समझते हैं कि हिरदैसाहि के द्वारा राजधानी बनवाने के पहिले रामनगर में कोई महत्व नहीं रहा होगा। ऐसा समझ लेना भूल है। हिरदैसाहि के पहिले भी गौरवपूर्ण स्थान था। राजधानी बनने से उन दिनों गौरव बढ़ा। देवालय के मन्दिर के बाहर एक अति प्राचीन और अति भव्य देवी मूर्ति है, टूटी है। बैठी मुद्रा में करीब साढ़े चार फीट ऊंची है। चारों हाथ टूटे हैं, हैं ही नहीं। अनुमान नहीं लगाया जा सकता कि हाथों में क्या रहा होगा। मुख तीन दिखते हैं। चौथे की कल्पना करनी पड़ती है। पीछे का मुंह होने के कारण बनाया ही नहीं गया। स्थानीय परिचय कुछ नहीं मिलता। मर हाई, दिसाई, देसापती न जाने क्या-क्या बतलाते हैं। मूर्ति के एक कोने में एक कलश सरीखा है जो गणेश जी की तोंद है। नीचे हंस पक्षी को देखने से निर्णय होता है कि चतुर्मुखी सरस्वती की मूर्ति है। आश्चर्य है कि आज तक किसी का ध्यान इतनी भव्य मूर्ति की तरफ नहीं आकर्षित हुआ। संभवतः खण्डित होने से या जो भी रामनगर गया उसने अपना ध्यान महल और शिलालेख तक सीमित रखा। मूर्ति कलचुरि काल से भी पहिले की जँचती है। सरस्वती की मूर्तियाँ कम मिलती हैं। जबलपुर के नगर निगम के बोध चिन्ह में कलचुरि कालीन वीणापाणि शारदा की मूर्ति है। रामनगर की इस मूर्ति को विज्ञापन नहीं मिला। सरस्वती की एक प्राचीन मूर्ति मुझे रानी दुर्गावती की समाधि के पास बग्धराज के कूर में मिली है। सुना है कि गुजरात के सिद्धपुर में सरस्वती की प्राचीन मूर्ति है।

देवालय के मन्दिर के भीतर बड़े प्रश्न चिन्ह सरीखी कला रहित सर्पमूर्ति है। प्राचीन इतनी कि शायद महाभारत काल के तुरन्त बाद की

हो। महल के पास एक और मन्दिर है, जहाँ राजा हिरदैसाहि और रानी सुन्दरी पूजा करते थे। इस मन्दिर का वर्णन शिलालेख के पद्य नं० ४५ और ४६ में है। सूर्य मूर्ति के एक हाथ में अविकसित कमल है और दूसरे हाथ में अर्ध विकसित कमल है।

महल के पीछे वस्ती के पास एक चबूतरे में करीब बीस इंच ऊँची अत्यन्त प्राचीन और अत्यन्त कलापूर्ण नृत्य करती हुई प्रसन्न मुद्रा में गणेश मूर्ति है। कला की तारीफ इतनी है कि गणेश जी के स्थूल शरीर को टेढ़ी तिरछी स्थिति में रखते हुए भी मूर्तिकार ने कहीं अप्राकृतिकता नहीं आने दी। सुना है कि लखनपुर के पास छिउलिया में भी नृत्य गणेश की एक मूर्ति है। महाराष्ट्र में नृत्य गणेश होना कोई आश्चर्य नहीं। मराठी में प्रसिद्ध लोक गीत है "गजानन ताण्डव नृत्य करी"

इन प्राचीन अवशेष के सिवाय कहीं कलचुरि कालीन मूर्तियों के खण्डहर मिलते हैं, कहीं संगमरमर की विशाल समतल शिलाएं हैं, कहीं जलहरी हैं, कहीं बेल के वन, कहीं अशोक के वृक्ष। हर हालत में प्राचीनता सिद्ध होती है। सरस्वती मूर्ति और नागमूर्ति तो निश्चय ही हिरदैसाहि के पहिले की हैं।

रामनगर में कई मील के इर्द-गिर्द में बीसों महल और मन्दिर हैं। राजा हिरदैसाहि के मित्र और मन्त्री एक भागवतराय थे। वे पठारी (परधान) जाति के थे। उनका विशाल महल बहुत अच्छी हालत में है। उसे राय महल कहते हैं।

राजा हिरदैसाहि जिस मुगल शहजादी (चिमनी) को मुगल दरबार से भगाकर लाये थे उसके लिये उन्होंने अलग मील डेढ़ मील दूर, बेगम महल बनवाया था। वह महल चौगान के रास्ते में है। उसमें मुगल कालीन कला दिखती है। सरकार इस बेगम महल की मरम्मत करती है। स्नानागार अति विशाल और सुन्दर है। मुगलों के स्नानागार सर्वत्र सुन्दर बने हैं। तारीफ इतनी है कि इसका नाम रानी महल न होकर बेगम महल है।

रामनगर के बहुत पास एक छिरका महल है। यहाँ पर छिरका शब्द ध्यान देने योग्य है। छिरका उन छोटे-छोटे लड़कों को कहते हैं जो मवेशी या बकरी (छरिया) चराने को भेज दिये जाते हैं। ऐसा चाल है कि पौष की पूर्णिमा के दिन गाँव के छिरका लोग अपने लट्टा लेकर हर घर में जाते हैं। लकुटी को एक हाथ से पकड़े-पकड़े, जमीन में

घिसते हैं और गाते रहते हैं—"छिरका छेर, कुटिया की धान हेर ।" छिरका लोगों को हर घर से उदारता पूर्वक धान मिलता है । इस धान में छिरका लोगों का पूर्ण स्वत्व रहता है । छिरका लोगों के मालिक या माता-पिता का कुछ भी स्वत्व नहीं रहता । छिरका लोगों की यह सम्पत्ति सह-कारिता से प्राप्त होती है । इनमें धनवान कुटुम्बों के लड़के भी रहते हैं । इस "शिक्षा" की निन्दा नहीं है । हक्क माना जाता है । छिरका लोग उत्सव मनाते हुए इस धान को अलग कूट कर पकाते खाते हैं । हो सकता है कि यह छिरका महल इस प्रकार की संग्रह की गई सम्पत्ति से छिरका लोगों द्वारा बनवाया महल हो ।

रा० ब० हीरालाल ने मुख्य महल का नाम मोती महल लिखा है । मुख्य महल का सबसे बड़ा महत्व उसका तिरस्कार है । उसको चाहे महल के कारण चाहे शिलालेख के कारण संरक्षित अवशेष घोषित करने के प्रयत्न विफल हो गये । रामनगर के मुख्य महल का तिरस्कार पुरातत्व विभाग द्वारा और इतिहासज्ञों द्वारा हो रहा है । महल के बीच में तालाब था जो पुर चुका है । आस-पास कमरे बने हैं ।

कुआर कातिक में धूप निकलने पर महल की दीवारों से एक सफेद सा द्रव पदार्थ निकलकर दीवारों में ही जम जाता है, जिसको लड़के खरोंचकर ले आते हैं और रात को अन्धकार में जलाते हैं, तो बहुत तेज रोशनी होती है । न जाने कौन-सी वस्तु गारा में मिलाई जाती थी, जो आज तक द्रव रूप में निकला करती है ।

शिलालेख मुख्य महल की एक दीवार में जड़ा है । शिलालेख में एक दो दरारें आ गई हैं, जिनकी मरम्मत हो चुकी है । लगभग बीस वर्ष पहिले शिलालेख खराब हालत में पड़ा था । अब सरकारी या जनपद सभा ने शिलालेख को मजबूती से जड़या कर उसका उद्धार कर दिया है । इस प्रशंसनीय कार्य से यह महत्वपूर्ण अवशेष नष्ट होने से बच गया । नहीं तो उसके खण्डों में आज मिर्च और प्याज पिसती होती । उद्धार के सत्कार्य की जितनी भी प्रशंसा की जाय थोड़ी होगी ।

(२) शिलालेख का महत्व

शिलालेख का महत्व उसके तिरस्कार से बढ़ गया है । कई विद्वानों ने शिलालेख को क्षेपकमय माना है । क्षेपकमय इस अर्थ में कि राज-वंश में इतने अधिक पूर्व पुरुष नहीं हुए । राजवंश की प्राचीनता सिद्ध

करने के लिये बहुत से नाम क्षेपक लिख दिये गये हैं। उन सब का सशरीर अस्तित्व नहीं था। औरों की बात क्या? रायबहादुर हीरालाल का ऐसा मत है। उनके मत में गोंड़ों के विरोधी होने की भावना का नाम भी नहीं। उनका मत शुद्ध और पवित्र है। अतः शिलालेख के प्रति विद्वानों की भावना में तिरस्कार की कुछ मात्रा है।

शिलालेख का पाठ पं० गणेश दत्त पाठक ने अपनी इतिहास की पुस्तक में मूल में दिया है। उसमें केवल दो श्लोक, नंबर एक और नं० ४७ छूटे हैं। उन्होंने पचास श्लोक दिये हैं और हैं बावन। मुझे मूल संस्कृत के अनुवाद करने में रानी दुर्गावती महाविद्यालय के आचार्य रावले ने पूर्ण सहयोग दिया। हिन्दी अनुवाद का श्रेय आचार्य महाशय को है। गोंड़ राजाओं की वंशावलि का यह ही एक शिलालेख है। साहित्य की दृष्टि से बहुत ऊँची और रसमय कविता है। शिलालेख के शब्दकार जयगोविन्द थे और उनके पिता का नाम मण्डन कवि था। आश्रयदाता हिरदै साहि की तथा उनकी रानी सुन्दरी देवी की प्रशंसा अधिक है। आश्रित कवि अपने आश्रयदाता की विशेष प्रशंसा करता है। स्वाभाविक है। ऐसी प्रशंसा में इतिहास कम और चाटु अधिक रहता है। समकालीन होने से आश्रित कवि ही तथ्य लिख सकता है। इतिहासकार का काम हो जाता है कि तथ्यों को ग्रहण करे और चाटु की बातों की अवहेलना करता जाय।

जो प्रशंसा साहित्य और सरस काव्य होने के कारण प्रशंसनीय है वह ही इतिहासकार की शुष्क निगाह में बेकाम हो जाती है। प्रशंसक की कलम बिकी हुई रहती है। जैसे जयगोविन्द वैसे अबुलफजल। भेद इतना ही है कि जयगोविन्द ने चापलूसी करने में सफलता प्राप्त की और अबुलफजल से चापलूसी भी न बन सकी। इतिहास के विद्वानों ने अबुल फजल की असफल चापलूसी को ऐतिहासिक तथ्य मान कर एक भूल की। दूसरी भूल की जो जयगोविन्द के तथ्यों का भी निरादर किया। इससे शिलालेख का महत्व कम माना जाने लगा।

मेरा स्पष्ट मत है कि शिलालेख में दी गई गोंड़ राजाओं की वंशावलि बिलकुल सत्य है। राजाओं के जितने नाम दिये गये हैं सबका सशरीर अस्तित्व अवश्य था। प्रमाण में मैंने राजाओं की सूची बनाई है जिसमें राजाओं के नाम, उनकी क्रम संख्या तथा उस राजा के नाम पर बसे गाँव या गाँवों, का परिचय दिया है। राजा का सशरीर

अस्तित्व था तभी तो उनके नाम से गाँव बसे और गाँव के नाम आज कायम हैं।

फिर भी आवश्यक है कि दोनों प्रकार के मतों का थोड़ा स्पष्टीकरण कर दिया जाय। एकमत कि राजाओं के नाम क्षेपक हैं, उनका सशरीर अस्तित्व नहीं था और दूसरा मत कि राजाओं के नाम सत्य हैं, उनका सशरीर अस्तित्व था। दोनों मतों का *स्पष्टीकरण* इस प्रकार है।

गढ़ा वंश के कुल ६३ राजाओं ने राज्य किया। उनमें से यादव राय (नं० १) से अर्जुनसिंह (नं० ४७) तक आदि समय के थे। महाराज संग्रामसाहि (नं० ४८) से हिरदैसाहि (नं० ५४) तक का वर्णन, मुगल इतिहासकारों में मिलता है। जैसे अबुलफजल कृत आइन-ए-अकबरी और अकबरनामा मासिर+उल+आलमगीरी आदि । अतः इन राजाओं के क्षेपक होने का प्रश्न ही नहीं उठता।

छत्रसाहि (नं० ५५) से सुमेद साहि (नं० ६३) तक के नाम शिलालेख में नहीं हैं। हो भी नहीं सकते। इनका वर्णन मुगल इतिहासकारों में और माराठा इतिहासकारों के बखार में मिलते हैं। ये भी क्षेपक नहीं हो सकते।

तब क्षेपक का प्रश्न केवल नं १ से नं० ४७ तक में हो सकता है। उनमें से भी अबुलफजल ने महाराजा संग्रामसाहि के वर्णन में पहिली दो पीढ़ियों का वर्णन किया है। अर्थात् गोरक्षदास (नं० ४६) और अर्जुनसिंह (नं० ४७) क्षेपक नहीं हैं। तब क्षेपक का प्रश्न नं० १ से दादीराय (नं० ४५) तक में ही सीमित हो जाता है। क्षेपक के दोनों पक्षों के तर्क इस प्रकार हैं।

(१) इन पैंतालिस में से कई क्षेपक हैं। एक लाइन में लगातार इतने राजा नहीं हो सकते। शृङ्खला कहीं अवश्य टूटी होगी। कोई न कोई अवश्य निःसन्तान रहा होगा। इतनी लम्बी सूची प्राचीनता सिद्ध करने के लिये ब्राह्मणों के प्रमाण से बनाई गई है इत्यादि ।

(२) इन पैंतालीस में से एक भी क्षेपक नहीं है। एक वंश इस तरह लगातार कायम रह सकता है। शिलालेख प्रमाण है। 'गढ़ेश नृप वर्णनम्' प्रमाण है।

अधिक बलवान मत उन विद्वानों का है जो कहते हैं इस तरह क्षेपक है। अर्थात् पैंतालीस राजाओं में से सभी का सशरीर अस्तित्व नहीं था। इस मत में सबसे प्रमुख रायबहादुर हीरालाल हैं। ऐसे मत का

प्रदर्शन सबसे पहिले डाक्टर हॉल ने किया। उन्होंने १८६० में जर्नल आफ दि अमेरिकन ओरिएन्टल सोसायटी की पोथी सात पेज एक या दो में अपना मत प्रगट किया है। सन् १८६० में डाक्टर हॉल ने रामनगर शिलालेख के बारे में एक लेख (जौर्नल आफ अमेरिकन ओरिएण्टल सोसायटी पोथी सात) लिखा उस लेख की भूमिका में वे लिखते हैं कि निजाम साहि के समय में एक *ताम्रपत्र* मिला था, जिसमें यादव राय का समय संवत् २०१ (सन् १४४) सिद्ध होता है। हॉल ने राजाओं के नामों के बारे में चाहे शंका प्रगट की हो, पर हॉल ने उस ताम्रपत्र का वर्णन किया है जो निजामसाहि के समय में मिला था। उस ताम्रपत्र के अनुसार यादव राय का समय संवत् २०१ (सन् १४४) निर्धारित होता है। ऐसा ही शंका पूर्ण मत १८७३ में पुरातत्व विभाग के एक अधिकारी वेगलर ने रामनगर का शिलालेख देखकर निर्धारित किया था। ऐसा ही मत १९२३ में सी० यू० विल्स, आई. सी. एस. ने निर्धारित किया। इन्होंने बताया कि कन्हैया लाल गुरु, शाला निरीक्षक के पास उस पद्य लेख (प्रेम कायस्थ कृत जिसका वर्णन डा० हॉल ने किया है, उसकी प्रतिलिपि) की प्रति थी, जिसमें गोंड़ राजाओं की वंशावलि लिखी थी और जो कन्हैया लाल गुरु को गढ़ाराज्य के वंशजों से प्राप्त हुई थी। इतने ही विद्वान शिलालेख की नामावली को क्षेपक पूर्ण कहते हैं।

अब दूसरा पक्ष देखिये जो कहते हैं कि शिलालेख की नामावलि क्षेपक रहित है। अर्थात् सब राजाओं का सशरीर अस्तित्व था। इनमें सबसे पहिले १८२५ में कैपेटन फैल का नाम है जिन्होंने शिलालेख का अनुवाद करके अपना मत एशिया कि रिसर्चेज पोथी १५ पेज ४३६-४४३ में प्रकाशित किया। दूसरा स्लीमैन का नाम हैं जिनकी पुस्तक १८३७ में छपी। तीसरा नाम कैपटन वार्ड का है जिनकी बन्दोबस्त रिपोर्ट (मण्डला जिला की) १८६६ में छपी। जिसमें उन्होंने शाप का वर्णन किया है कि निर्धारित समय हो जाने पर १४०२ वर्षों के बाद गोंड़ों का राज्य १७८१ में समाप्त हो गया। अर्थात् सन् ३७६ में यादव राय ने राज्य आरम्भ किया था। चौथा मत १८८१ का सर ए० कनिंघम का है जो रामनगर आये थे और जिन्होंने शिलालेख को देखकर सही माना। पाँचवा मत पं० गणेशदत्त पाठक का है जिन्होंने अपनी १९०५ की पुस्तक में सब राजाओं का समय संवत में दिया है। 'गढ़ेश नृप वर्णनम्' में भी सब राजाओं का सशरीर अस्तित्व माना गया है।

आचार्य जी० व्ही भावे ने पैंतालिस नामों में से यद्यपि किसी को क्षेपक नहीं माना है, तथापि एक शंका अवश्य की है कि नामों में से बहुत से वे ही हैं जो पन्ना के बुन्देला वंश में हैं। जैसे भारतिचन्द्र, रामचन्द्र, पृथ्वीराज, कर्ण आदि।

दोनों मतों के मानने वालों ने अनुमान और केवल अनुमान से काम लिया है। दोनों मत मानने वाले इतने ऊँचे विद्वान् थे कि उनको गाँवों के नाम सरीखी छोटी-छोटी बातों में परिश्रम करने का अवकाश नहीं था। न उनको जंगली और तिरस्कृत गाँवों का परिचय ही रहा होगा। गाँव के रहने वाले और गाँवों के नामों को जानने वाले राजाओं के नामों की सत्यता को सरलता से समझ जावेंगे। गाँवों के नाम ही राजाओं के अस्तित्व के और उनकी कीर्त्ति के प्रमाण हैं। गाँवों के नामों से सिद्ध हो जाता है कि राजाओं का सशरीर अस्तित्व था और शिलालेख की नामावलि में क्षेपक नहीं है। मेरा अध्ययन मण्डला जिला तक सीमित है। उन सब जिलों में जहाँ भी महाराजा संग्रामसाहि का साम्राज्य था, अध्ययन की गुंजाइश है। ज्यों-ज्यों और पता चलेगा राजाओं की वंशावलि की सत्यता के पक्ष में प्रमाण मिलेंगे। तलाश के परिश्रम को बचाने की एक युक्ति है। हर तहसील में एक हस्तलिखित सहायक पुस्तिका होती है, जिसे 'मौजावार' कहते हैं उसमें अकारादि क्रम से गांवों के नाम लिखे रहते हैं। वह पुस्तिका कानूनगो के पास और लैंड रिकर्ड्स् दफ्तर में रहती है। हर गाँव के सामने उस गाँव का परिचय रहता है, जैसे पटवारी हलका नम्बर, नं० बंन्दोबस्त, राजस्व मण्डल, रकवा आदि लिखा रहता है। 'मौजावार' से लिपिकों को बहुत सहायता मिलती है। राजाओं के नाम से उनके नाम पर गाँवों का नाम देकर एक सूची बनाई है। जिससे राजाओं का सशरीर अस्तित्व सिद्ध होता है।

रामनगर का शिलालेख अपना ऐतिहासिक महत्व रखता है। उससे अबुलफजल की असत्यता सिद्ध होती है। जैसे अबुलफजल ने महाराजा संग्राम साहि को दुष्कर्म कर्त्ता और पितृ हन्ता कहा है, पर शिलालेख के श्लोक नं० १४ और १५ में उनकी स्तुति की गई है। अबुलफजल ने रानी दुर्गावती को घमण्डिन और चापलूसों से घिरी रहने वाली कहा है, पर शिलालेख के श्लोक नं० १८, २० और २६ में रानी दुर्गावती को देवी की तरह माना है। श्लोक नं० २२ में वीर रस का अपूर्व प्रदर्शन है। अबुलफजल ने वीर नारायण को युद्ध से भागने वाला कहा है, पर श्लोक

नं० २३ में स्पष्ट लिखा है कि उन्होंने सूर्यमण्डल को भेदा। साहित्यिक दृष्टि से शिलालेख के कई श्लोकों में ऊँची कविता है। इतनी ऊँची कि कहीं-कहीं तो कठिन काव्य कहा जा सकता है, जैसे श्लोक नं २८, ३०, ३२, ३३, ३४, ३६, ३७ और ४३ में।

शिलालेख की हालत के विषय में भी कुछ जान लेना आवश्यक है। शिलालेख की टंकन तिथि ज्येष्ठ शुक्ल एकादशी संवत् १७२४ लिखी है। विद्वानों ने हिसाव लगाकर इसको पाँच जून सोलह सौ अड़सठ ईस्वी सन् माना है। अर्थात् आज से २६४ वर्ष पहिले और नरई युद्ध के १०३ वर्ष बाद। शिलालेख काले पत्थर में है। दो टुकड़ों में है। प्रत्येक टुकड़े की ऊँचाई ३४" और चौड़ाई २६" है। पूरा शिलालेख ६८"+२६" है। काले पत्थर में बहुत चिकनी पालिश है। पत्थर बिलकुल काला नहीं है, उसमें सर्वत्र छींट के से सफेद छींटे हैं। पत्थर आगरा या अन्यत्र से लाया जचता है। इबारत में हाशिया नहीं के बराबर है। ऊपर वाले टुकड़े में तीस लकीरें हैं, नीचे वाले में ३५ लकीरें हैं। हर अक्षर ३/४" का है। नीचे वाले टुकड़े में नीचे की ग्यारह लाइनों के अन्दर १/२" के हैं। शिलालेख में दो बड़ी-बड़ी दरारें हैं पर मिलाकर जमाई हुई हैं। प्रसिद्ध है कि सन् २०-२२ में किसी अंग्रेज ने गोली मारी थी। चाहे उस गोली के कारण हो, या और किसी कारण से हो, श्लोक नं० ३२ का अधिकांश है ही नहीं। पं गणेश दत्त पाठक की पुस्तक के पाठ से उक्त श्लोक नं० ३२ का पाठ निर्धारित हो सका। कम पढ़े लोग समझते हैं कि शिलालेख में किसी दफीना के स्थान का पता लिखा है। अतः जो लोग शिलालेख पढ़ते हैं सब दफीना की तलाश में होंगे।

शिलालेख के श्लोक नं० २४ में अकबर के लिये *पार्थकल्प* शब्द का प्रयोग हुआ है। जोकि जनता की आवाज नहीं है। दरबारी कवि की आवाज है। जैसे कि पण्डितराज जगन्नाथ ने दिल्ली शरोवा जगदीश्वरोवा कहा था। वह प्रयोग कोई महत्व नहीं रखता। वैसे तो अकबर की सफलताओं के कारण ठीक भी है। अकबर की सांसारिक वैभवों की सर्व मान्यता बहुत बड़ी थी। अर्जुन से अकबर की उपमा देकर वृहन्नला वाली बात याद आ जाती है। लोकगीत में अकबर को स्त्री वेष दिया गया है। हिरदैसाहि के मन में मुगल दरबार के प्रति कोई द्वेष नहीं रह गया रहा होगा। वे मुगल दरबार के दामाद बन चुके थे। रिश्तेदारी हो चुकी थी।

(३) राजाओं की सूची

क्रम संख्या	राजा का नाम	राजा के नाम से गाँव वगैरः
१	२	३
१	यादवराय	
२	माधवसिंह	माधोपुर कई हैं। अंजनियाँ के पास, डिंडौरी के पास, गोरखपुर के पास।
३	जगन्नाथ	जगनाथर, अंजनिया के पास।
४	रघुनाथ	राघोपुर, मंहदवानी के पास, निवास तहसील में।
५	रुद्रसिंह	
६	बिहारीसिंह	बाहरपुर, बजाग के पास।
७	नरसिंह देव	नरसिंहपुर जिला है। सिंहपुर, बजाग के पास है। नीचे नं० ३०।
८	सूर्यभानु	सूर्यकुण्ड। सूरजपुरा कई हैं। शाहपुर के, नैनपुर के और मण्डला के पास।
९	वासुदेव	
१०	गोपालसाहि	गोपालगंज, सिवनी के पास। गोपालपुर दो हैं। शाहपूर के और बजाग के पास।
११	भूपालसाहि	प्रान्तीय राजधानी। इस राजवंश में ६०० वर्षों तक और ४१ पीढ़ी तक रहा।
१२	गोपीनाथ	गोपांगी, रामनगर के पास। गोपीसानी, घुटास के पास। दलका गोपांगी, घुघरी के पास।
१३	रामचन्द्र	रामगढ़, राम्हेपुर, रामनगर। नीचे नं० २५ और ३६।
१४	सुरतानसिंह	सुलतानपुर भोपाल से ४५ मील आग्नेय।
१५	हरिहरदेव	
१६	कृष्णदेव	किसलपुरी, सक्के के पास। किसली नेशनल पार्क वाली।
१७	जगतसिंह	जगतपुर फारिष्ट विलेज, करंजिया के पास। निंगोगढ़ का पता रहा होगा।
१८	महासिंह	

१	२	३
१६	दुर्जनमल्ल	दुर्जनपुर है अवश्य, जहाँ हो। नं० ६० नीचे।
२०	यशःकर्ण	जसो, नागौद के पास। जशपुर, बिलासपुर से १२५ मील या वव्य में। नीचे नं० २२
२१	प्रतापादित्य	परताबगढ़, वर्तमान किंगरी। करंजिया के पास।
२२	यशश्चन्द्र	ऊपर नं० २०।
२३	मनोहरसिंह	मनोहरपुर, भुवाविछिया से १५ मील दक्षिण।
२४	गोविन्दसिंह	गोविन्दगढ़, रीवां से १५ मील दक्षिण।
२५	रामचन्द्र	ऊपर नं० १३। नीचे नं० ३६।
२६	कर्ण	करनबेल, जबलपुर के पास। करनपुरा, निंगुआनी के पास। करनपुरा, शहपुरा के पास। करन पठार।
२७	रत्नसेन	रतनपुर, भुवविछिया के पास ईसाइयों की बस्तीहै।
२८	कमलनयन	नैनपुर जंकशन, छोटी लैन का।
२६	नरहरिदेव	नं० ७ ऊपर।
३०	वीरसिह	विरसिंहपुर कई हैं। वीरसिंह नाम के कई बंशों में राजा हुए।
३१	त्रिभुवनराय	
३२	पृथ्वीराज	पथरिया, बजाग के पास। पथरिया रैयतवारी, डिंडौरी सर्किल में। पथरिया हिल्स, सागर ने पास।
३३	भारतीचन्द्र	भारतीयपुर, लखनपुर के पास।
३४	मदनसिंह	मदनमहल, जबलपुर के पास।
३५	उग्रसेन	
३६	रामसाहि	ऊपर नं० १३ और २५।
३७	ताराचन्द्र	तारा देही, दमोह के पास। बनियातारा, बिनैका के पास। हाथीतारा निवास के पास। तरवानी, बीजा डांड़ी के पास। तारागढ़, भूलपुर में किले के अवशेष।
३८	उदयसिंह	उदयपुर, नागा पहाड़ में।
३६	भानुमित्र	परिशिष्ट में सकवाह। भानपुर, घुघरी से २० मील ईशान, चिषचिलिया नदी के किनारे।
४०	भवानीदास	

१	२	३
४१	शिवसिंह	सिवरी, डिंडौरी के पास। शिव टेकरी, विंझौली के पास। शिवपुरी, ग्वलियर के पास नीचे नं०५६।
४२	हरिनारायण	हरवंसपुर, लखनपुर के पास।
४३	सबलसिंह	सबलगढ़, गवालियर से ५५ मील पश्चिम।
४४	राजसिंह	रायगढ़, परिशिष्ट में देखिये।
४५	दादीराय	उपनाम खरजीभीथा। करंजिया दो हैं। अमर कंटक के पास, भुवाबिछिया के पास।
४६	गोरखदास	गोरखपुर, जबलपुर का मोहल्ला। दूसरा अमर कंटक के पास। सुकुमगढ़ परिशिष्ट में देखिये।
४७	अर्जुनसिंह	अर्जुनी गोंदिया से ३५ मील दक्षिण।
४८	संग्रामसाहि	संग्रामपुर, दमोह जबलपुर रोड में प्रसिद्ध है।
४९	दलपतिसाहि	दलपतपुर, दमोह के ३० मील उत्तर।
५०	वीरनारायण	
५१	चन्द्रसाहि	चन्द्रगढ़, परिशिष्ट देखिये।
५२	मधुकरसाहि	मधुपुरी और देवगांव परिशिष्ट में देखिये।
५३	प्रेमनारायण	प्रेमपुर, समनापुर सर्किल में। एक प्रेमपुर मण्डला से ६ मील दक्षिण।
५४	हिरदैसाहि	हिरदेनगर परिशिष्ट में देखिये। इसके बाद के नाम शिलालेख में नहीं हैं।
५५	छत्रसाहि	छतरपुर, घुघरी के पास।
५६	केसरीसाहि	केहरपुर, मण्डला के पास।
५७	नरेन्द्रसाहि	निरन्दगढ़, किन्दरी के पास।
५८	महाराजसाहि	महाराजपुर मण्डला का हिस्सा है। एक महाराजपुर सागर जिला में देवरी के पास है।
५९	शिवराजसाहि	नं० ४१ ऊपर।
६०	दुर्जनसाहि	नं० १९ ऊपर।
६१	निजामसाहि	
६२	नरहरिसाहि	नरहर गंज, परिशिष्ट में।
६३	सुमेदसाहि	

(४) रामनगर के शिलालेख का पाठ

श्री गणेशायनमः । श्री सुन्दर चित्रकर्मा जयति ।
इत्थं भावेन केनापि सर्वज्ञाताय विप्लवे ।
स्वमंत्रे णैव कतिधा भवते भवते नमः ॥१॥

अर्थः—श्री गणेशायनमः उनकी जय हो जिनके कर्म विचित्र और सुन्दर हैं। आपको प्रणाम। आप जो कि अपनी मन्त्रशक्त से, विभिन्न प्रकार से तथा संकट के समय किसी भी रूप से आविभूत होते हैं। इस प्रकार सब के द्वारा जाने जाते हैं ॥१॥

यादवरायः क्षितिभृद्बभूव गुणनीरधिगंढ़ा देशे ।
सूनुर्माधवसिंहस्तस्य यतोऽभूज्जगन्नाथः ॥२॥

अर्थः— गढ़ा देश में गुणों के समुद्र यादवराय राजा हुए। उसका पुत्र माधवसिंह। उसका पुत्र जगन्नाथ ॥२॥

अजनित्ततो रघुनाथस्तस्य सुतो रुद्रदेव इत्यासीत् ।
तस्य विहारी सिंहः सुनुर्नरसिंहदेव इति तस्य ॥३॥

अर्थः—उसका पुत्र रघुनाथ हुआ। उसका पुत्र रुद्रदेव था। उसका पुत्र विहारी सिंह। उसका पुत्र नरसिंह देव ॥३॥

तनयोऽस्य सूर्य्यभानुस्तस्य सुतो वासुदेव इत्यभवत् ।
गोपालसाहिरस्मात्समजनि भूपालसाहरतः ॥४॥

अर्थः—उसका पुत्र सूर्यभानु। उसका पुत्र वासुदेव हुआ। उसका पुत्र गोपालसाहि हुआ। उससे भूपाल साहि हुआ ॥४॥

तस्माद्गोपीनाथ स्तवस्तु नृपरामचन्द्र इत्यासीत् ।
सुरतान-सिंह-नामा सूनुरभूद्रामचन्द्रस्य ॥५॥

अर्थः—उससे गोपीनाथ उसका पुत्र वासुदेव हुआ। रामचन्द्र का पुत्र सुरतानसिंह नाम का था ॥५॥

हरिहर देवस्तनय स्तस्यासीत् कृष्णदेव इति तस्य ॥
अर्जान जगत्सिंहोऽस्माद्यस्माद्भवन्महासिंह ॥६॥

अर्थः—उसका पुत्र हरिहर देव था। उसका कृष्णदेव था। उससे जगत् सिंह पैदा हुआ। उससे महासिंह हुआ ॥६॥

तस्माद्दुर्जनमल्लोऽभूद्यशः कर्णस्ततोऽभवत् ।
प्रतापादित्य इत्यस्माद्यशश्चन्द्रस्ततोऽजान ॥७॥

अर्थः—उससे दुर्जनमल्ल हुआ। उससे यशःकर्ण हुआ। उससे प्रतापादित्य हुआ। उससे यशश्चन्द्र हुआ ॥७॥

तस्य मनोहर-सिंहः सुतोऽस्य गोविन्द सिंह इत्यासीत्।
अस्मात्तु रामचन्द्र स्तस्मात्कर्णोऽथरत्नसेनोऽतः ॥८॥

अर्थः—उसका मनोहर सिंह। उसका गोविन्द सिंह था। उससे रामचन्द्र। उससे कर्ण। उससे रत्नसेन ।८॥

कमलनयन इत्यभूद् पुण्नान्नरहरिदेव-नृपस्तु तस्य सूनुः।
समजनि तनयोऽस्य वीरसिंहस्त्रि भुवन-रायमसूतयः सुपुत्रम् ॥९॥

अर्थः—उससे कमलनयन। उसका पुत्र राजानरहरिदेव था। उसका पुत्र वीरसिंह हुआ। उसने सुपुत्र त्रिभुवनराय को उत्पन्न किया ॥९॥

तस्मात्पृथ्वीराज-स्ततोऽभवद् भारतीचन्द्रः।
तनयोऽस्य मदनसिंह स्ततस्त्वभूद् उग्रसेत इति ॥१०॥

अर्थः उसका पृथ्वीराज। उससे भारतीचन्द्र हुआ। उसका पुत्र मदनसिंह था। उससे उग्रसेन हुआ ॥१०॥

रामसाहिः सुतोऽस्यासी ताराचन्द्र-स्ततोऽभवत्।
अभूदुदय-सिंहो-ऽस्माद् भानुमित्राभिधस्ततः ॥११॥

अर्थः—उसका पुत्र रामसाहि था। उससे ताराचन्द्र हुआ। उससे उदयसिंह हुआ। उससे भानुमित्र हुआ ॥११॥

तस्य भवानीदास स्तनयस्तस्याथ शिवसिंहः।
हरिनारायणनामा सुतोऽस्य तस्य तु सबलसिंहः ॥१२॥

अर्थः—उसका भवानीदास। उसका पुत्र शिवसिंह था। उसके पुत्र का नाम हरिनारायण था। उसका सबलसिंह था ॥१२॥

राजसिंहस्सुतोऽस्यासीत् दादीराय-स्ततोऽजनि।
गोरक्षदासः पुत्रोऽस्यार्ज्जुनसिंहमसूतयः ॥१३॥

अर्थ :—उसका पुत्र राजसिंह था। उससे दादीराय उत्पन्न हुआ। उससे गोरक्षदास। उसने अर्जुनसिंह को जन्म दिया ॥१३॥

आसीत्सूनुस्तस्य संग्रामसाहि र्विद्विट् तूलस्तोम कल्पान्तवह्निः।
विश्वव्याप्ते यत्प्रतापप्रकाशे मध्याह्नार्को विस्फुलिंगी बभूव ॥१४॥

अर्थः—उसका पुत्र संग्राम साहि था। उसके शत्रु कपास के पुंज के समान थे। वह उनके लिये प्रलयकारी अग्नि के समान था। उसके प्रताप के प्रकाश के विश्व व्याप्त होने के कारण दोपहर का सूर्य भी निस्तेज सा हो गया ॥१४॥

वज्रप्रायैः पर्वतप्रौढ़गाढ़ैः सुप्राकारैरम्बुभिश्चाक्षयाणि ।
द्वापञ्चाशद्येन दुर्गाणि राज्ञा निर्वृत्तानि क्षोणिचक्रं विजित्य ॥१५॥

अर्थः—जिसने पृथ्वी के चक्र को जीतकर, राजाओं के बावन गढ़ों को जीतकर, उन गढ़ों को करद बना दिया। वे गढ़ कैसे थे ? वज्र के समान कठोर, पर्वत के समान मजबूत और दृढ़ अच्छी चहारदीवारी वाले और जिनमें सदैव चारों तरफ जल रहता था। अतः अक्षय थे ॥१५॥

दलपतिनृपतिर्बभूवतस्य क्षितिपमणेस्तनयः पवित्रकीर्त्तिः ।
अभिलषति मुखानि यस्य कीर्त्तिंचिरमुपगातु मियन्ति नागनाथः ॥१६॥

अर्थः—उन क्षितिपमणि के पुत्र दलपति नाम के पवित्र कीर्त्ति वाले राजा हुए। जिनकी कीर्त्ति को सदैव गाने के लिये शेषनाग भी और इतने ही मुखों की अभिलाषा करते हैं ॥१६॥

वितरणवारिभिर्नियत-मार्द्र करस्य हरिस्मरण-परायणस्य शरणस्य वंशी-भवताम्। निरुपधि-पालित-प्रकृतिकस्य हि यस्य सदा चरणरजो रजोगुण जुषोऽपि जना जगृहुः ॥१७॥

अर्थः—जिसके चरणों की रजो को रजोगुण वाले लोगों ने भी सदैव ग्रहण किया। उसने प्रजा का छलरहित पालन किया। उसके हाथ दान देने के जल के कारण सदैव गीले रहते थे। वह राजा दलपति हरिस्मरण परायण था। जो उसके वश में आते थे उनको वह शरण देता था ॥१७॥

अभ्यर्थिनाम्भाग्य-समृद्धिरेव स्वरूपिणी पुण्यपरम्परैव ।
सौभाग्यसीमैव वसुन्धराया दुर्गावती तस्य बभूवपत्नी ॥१८॥

अर्थः—दुर्गावती उस (दलपति) की पत्नी हुई। कैसी दुर्गावती ? याचकों के लिये भाग्यसमृद्धि सी। जैसे पुण्यों की परम्परा ने स्वरूप धारण किया हो, वसुन्धरा की सौभाग्य सीमा जैसी ॥१८॥

पुरन्दरे भूवलस्य तस्मिन्नस्तं प्रयाते तनयं त्रिवर्षम्।
श्री वीरनारायणनामधेयं दुर्गावती राज्यपदेऽभ्यषिञ्चत् ॥१९॥

अर्थः—पृथ्वी वलय (हाथ में पहिनने का कड़ा) को इन्द्र के समान शासन करने वाले, अपने पति (राजादलपति) के अस्त हो जाने पर, दुर्गावती ने तीन वर्ष के तनय श्री वीरनारायण को राज्य के पद पर अभिषेक किया ॥१९॥

अत्युच्चैः कनकालयैः परिलसद्भिः सीम-हेमाचला।
सर्वत्रैव लुठत्सुरत्न-निचयैर्निस्संख्य-रत्नाकरा ॥

उद्दाम द्विरद व्रजैरगणित-स्वर्गेश-दन्तावला ।
भूरन्येव कृताऽखिला त्रिभुवन प्रख्यात कीर्त्त्या यया ॥२०॥

अर्थ :—उस दुर्गावती ने, जिसकी कीर्ति त्रिभुवन में विख्यात है समूची पृथ्वी को दूसरी ही बना डाली। जिसमें कि बहुत ऊँचे सोने के मन्दिरों के कारण कान्तिमान बहुत से स्वर्ण पर्वत जैसे बन गये। जिस (पृथ्वी) में जहाँ-तहाँ फैले हुए अच्छे रत्नों के समुदाय के कारण असंख्य रत्नाकर (समुद्र) बने। मदोन्मत्त हाथियों के समूह के कारण अगणित ऐरावतों के समूह से हो गये ॥२०॥

तुरंग-मातंग-सुवर्ण-कोटि-निरन्तरोत्सर्गमयाह्निका या ।
अशेषकीर्तिं किल कामधेनोर्यशोभिरुच्चैरधरीचकार ॥२१॥

अर्थ :—वह (दुर्गावती) अपने नित्यकर्म में करोड़ों घोड़े, हाथी, सुवर्ण का निरन्तर उत्सर्ग करती थी। जिस (रानी दुर्गावती) ने अपने ऊँचे यशों से कामधेनु की अशेष कीर्ति को निम्न कर डाला ॥२१॥

स्वयं समारुह्य गजं रणेषु
बलाज्जयन्ती प्रबलान्विपक्षान्
सदा प्रजा पालन-सावधाना
सा लोकपालान्विफलीचकार ॥२२॥

अर्थ :—वह युद्धों में स्वयं गज पर चढ़कर जाया करती थी। वह बल प्रयोग करके बलवान शत्रुओं पर विजय पाया करती थी। वह प्रजापालन में सदा सावधान थी। (अतः) उसने लोकपालों को विफल कर दिया ॥२२॥

सहैव गृह्णन् स करेण राज्ञां तदूर्जितमं विश्व विसारि तेजः ।
विवेश तारुण्यमनन्तकीर्तिः श्रीवीरनारायण नामधेयः ॥२३॥

अर्थ :—अनन्तकीर्ति वाले वीरनारायण नाम के राजा ने तरुणता प्राप्त की। उन्होंने अपने हाथों से (कर, टैक्स, किरण) राजाओं को ग्रहण किया और अपनी किरणों से (करों से) विश्व में तेज का विस्तार करके अन्धकार को समाप्त किया ॥२३॥

कालक्रमादकबर क्षिति पुरुहूतेन पार्थकल्पेन
प्रहितः कराय बलवान्नासफखानस्ततो राज्ञा ॥२४॥

अर्थः—समय के फेर से पृथ्वी में इन्द्र जैसे अर्जुनवत् राजा अकबर के द्वारा करके लिये, बलवान आसफ खाँ (वहाँ से) भेजा गया ॥२४॥

अक्षौहिणी-नम्रित-भूतलेन जाते रणे तेन महाभटेन
बलं विजित्यापि समस्तमस्य दुर्गावती भीम-पराक्रमेण ॥२५॥

अर्थ :—अपनी अक्षौहिणी सेना के कारण, भूतल को मुलायम बनाने वाले उस महाभट आसफखान के साथ जब युद्ध हुआ तब दुर्गावती ने अपने भयंकर पराक्रम से उसकी सम्पूर्ण सेना को जीत कर भी

संविक्षता लक्ष-विपक्ष-बाणैः, स्वापाणि-खड्गेन शिरः स्वकीयम् ।
छित्वा क्षणेन द्विरदेनिषण्णाऽभिनद्रवेर्मण्डलमात्मजश्च ॥२६॥

अर्थः—जो हाथी परथी और जो शत्रु के लाखों बाणों से क्षत-विक्षत हो गई थी (ऐसी उस दुर्गावती ने) अपने हाथ के खड्ग से अपना सिर तत्काल काट कर सूर्य मण्डल को भेदा। पुत्र (वीर नारायण) ने भी (सूर्य मण्डल को भेदा) ॥२६॥

दलपति नृपतेरथानुजन्मा शरणमनाथजनस्य चन्द्रसाहिः ।
निधिखि महसामखण्डदीपः सकलकुलस्य यशोधनोऽभिषिक्तः ॥२७॥

अर्थः—इसके बाद दलपति के अनुज चन्द्रसाहि अनाथ जनों के शरण.तेज के निधि के समान, सकल कुल के लिये अखण्ड दीप जैसे, यश ही जिनका धन है (ऐसे चन्द्रसाहि) अभिषिक्त हुए ॥२७॥

वस्त्राण्याकृष्य केशग्रहणमपि तरवः कुर्वते कण्टकै स्वैः ।
श्वासैर्यास्तान्दहन्ति द्रुत विवृति-वपुर्दीप्ति दावान्प्रदर्श्य ॥
नैष्ठुर्येणैव नित्यं दधति च वसितुं यास्त्वचः पादपानाम् ।
कान्तारे शत्रु कान्ताः कलहमिव सहस्थावरैर्यस्य चक्रुः ॥२८॥

अर्थः—इस श्लोक में राजा शत्रुओं को वृक्ष और शत्रुपत्नियों को त्वचा माना गया है। अर्थ कठिन है। वृक्ष अपने कण्टक रूपी हाथों से नारी रूपी त्वचाओं के वस्त्राकर्षण और केश ग्रहण करते हैं। तब वे त्वचाएँ (नारियाँ) अपनी श्वासों से और जल्दी विवर्त्तन तथा शरीर की दीप्ति के दावानल को प्रगट करके (वृक्षों को) जलाती जैसी हैं। इस प्रकार वे त्वचाएँ बड़ी निष्ठुरता के साथ ही उन वृक्षों के साथ रहा करती हैं। ठीक इसी प्रकार राजा की शत्रु कान्ताएं अपने-अपने स्थावर (मन्द, बुजदिल) पतियों से कलह करती रहती थीं ॥२८॥

समजनि तनयो नृपस्य तस्य स्मरदहनादिव षण्मुखः सुकीर्तिः
निधिखि महसा मिहोर्जितानाम् मधुकर-साहिरिति क्षमातलेन्द्रः ॥२९॥

अर्थः—उस राजा का एक अच्छी कीर्ति वाला पुत्र हुआ। जैसे

कामदेव को दहन करने वाले शिव जी से षरामुख जन्मे थे। पुत्र का नाम मधुकरसाहि था। वे भूलोक के बलशाली तेज के निधि जैसे थे। वे पृथ्वी तल के इन्द्र (राजा) हुए ॥२६॥

प्रत्यग्र-प्रौढ़-गाढ़-प्रलय-जल - धर - ध्वन्यध: कारि-ढक्का।
धावद्-धुक्कार-धारा-बधिरित-विधुत- ध्वस्त - धीरोद्धतेन ॥
येन प्रोद्दाम-धाम्ना भुजबल विहितैः शश्वदाशा दिगीशान्।
अद्यापि स्पष्ट मष्टौ जनगण रटितैस्तज्जयैर्लज्जयन्ति ॥३०॥

अर्थः—उस धीरोद्धत मधुकरसाहि ने अपनी चौतरफा फैलने वाली गार्जना की धारा से अपने शत्रुओं को बहरा किया, कम्पित किया और ध्वस्त किया। उसका तेज उद्दाम था। उसकी भुजबल से की गई विजयों का जनगण द्वारा प्रौढ़ उच्चारण हुआ करता था। उस विजय-यश का प्रबलनाद था। वह नाद प्रलय काल के समग्र प्रौढ़ और घने मेघों की ध्वनि को नीचा दिखा रहा है और दिशाऐं आठों लोकपालों को स्पष्ट रूप से अभी भी लज्जित कर रही हैं ॥३०॥

साधूना मभिलाष -सिद्धिविभवः क्षात्रं समग्रं महः
शक्तिर्मूर्तिमती स्मरस्य भवनं कीर्त्तेः कुलस्योन्नतिः
सर्वस्वं सुकृतस्य कौशल-मभि स्रष्टु-गुणानां निधिः
दोषाणामपथं सुतोऽस्य नृपतेः श्री प्रेम नारायणः ॥३१॥

अर्थः—इस राजा के पुत्र श्री प्रेम नारायण थे। जो साधुओं की अभिलाषाओं के सिद्धि के वैभव थे। समस्त क्षत्रियोचित तेज ही थे। कामदेव की मूर्तिमती शक्ति थे। कीर्त्ति के भवन थे। कुल की उन्नति थे। पुण्यों के सर्वस्व थे। ब्रह्मा की कुशलता थे। गुणों की निधि थे। दोषों के अपथ (मार्ग रहित) थे। अर्थात् दोष रहित थे। ॥३१॥

प्रोन्माद्य द्विन्ध्य-गन्ध-द्विरद-घन-घटा-घोर सेना-सहस्र
प्रत्यग्र-प्रौढ़धाराऽवनमित दलिता-शेष-भूभृद्-गणस्य
यस्य प्रोद्यत्प्रताप - प्रथम - परिचय - प्रद्रुत - भ्रष्ट-निद्रा
नाद्यापि द्राग् विपक्षा जहति गिरि दरीः सुन्दरीभिर्वियुक्ताः ॥३२॥

अर्थः—राजा ने अपने नवीन और प्रौढ़ खड्ग की धारा से चारों दिशाओं के अशेष राजाओं के समूह को अवनमित किया। जो (शत्रु राजा) अवनमित नहीं हुए, उन्हें दलित किया। राजा की सेना सहस्र अत्यन्त उन्मादि विन्ध्याचल वासि गन्धगजों की घन घटाओं से भरा हुआ है। राजा के विपक्ष (शत्रु) अपनी सुन्दरियों से बिछुड़ गये। राजा

गिरि-कन्दराओं में रहने लगे। अभी भी वे गिरि-कन्दरा छोड़ने को तैयार नहीं हैं। राजा के उदीयमान प्रताप के कारण प्रथम परिचय से ही वे (शत्रु) भाग गये। उन शत्रुओं की नींद हराम हो चुकी है ॥३२॥

प्रौढ़ा एवं क्षितीशाः समर भुवि बलाद् बन्धनीया, न वैरम्
कीर्तिर्लोकेऽवदानै-रविरत-विहितै-र्वर्धनीया, न गर्वः
दातव्यं सर्वदैव द्रुपमभिलषितं याचकेभ्यो, न पृष्ठम्
भूपाना मेषधर्मः स्फुटमिह चरितं प्रेमसाहेः प्रमाणम् ॥३३॥

अर्थः—प्रौढ़ राजाओं को ही युद्ध क्षेत्र में बलपूर्वक बाँधना चाहिये। वैर को नहीं। हमेशा दानों से लोक में कीर्त्ति बढ़ानी चाहिये। गर्व नहीं। याचकों को हमेशा उनके अभिलषित (धन), जल्दी और हमेशा देना चाहिये। पीठ नहीं देना चाहिये। राजाओं का यह धर्म है। इस विषय में प्रेमसाहि का चरित्र स्पष्ट प्रमाण है ॥३३॥

पूर्णानेक-कलातिथिः प्रति पदारब्धोदयः सर्वदा
ऽहोरात्र प्रथमान मास महिमा सत्कृष्ण पक्ष क्रमः
तस्मादब्द इवापरः समजनि श्री प्रेम साहि प्रभोः
नाम्ना श्री हृदयेश्वरः सुखयिता पूर्व प्रभावः सताम् ॥३४॥

अर्थः—उन प्रभु प्रेमसाहि से सज्जनों को सुख देने वाले और पूर्वप्रभाव हृदयेश्वर नामक पुत्र उत्पन्न हुए। जैसा कि एक वर्ष से दूसरा वर्ष उत्पन्न होता है। जो कि अनेक कला एवं तिथियों से परिपूर्ण होता है। सदैव प्रतिपदा से जिसका उदय प्रारंभ होता है। राजा के अर्थ में होगा कि हर पद (कदम) से जिसका उदय प्रारंभ होता है। दिन तथा रात्रि से बढ़ते-बढ़ते वह महीनों की महिमा को प्राप्त होता है। जिसमें शुक्ल और कृष्ण पक्षों का क्रम भी होता है। इस छन्द में वर्ष के लिये ऐसे विशेषण चुन कर लिखे गये हैं जो दूसरे अर्थ में राजा के भी विशेषण होते हैं ॥३४॥

स च पालयन्न खिलमेव जगन्नितरामनाथभवति क्षितिपः
समवर्षणोप्यतिशयेनघनः पयसामभिषिञ्चति हि निम्नगतम् ॥३५॥

अर्थः—सम्पूर्ण जगत् को सदैव पालन करने वाला वह राजा अनाथों का अतिसंरक्षण करता था। मेघ समवर्षी होता हुआ भी नदों को (अर्थात् नीचे बहने वालों को) निम्नगत भूभाग को जल से अतिशय सिञ्चित करता है ॥३५॥

रम्याराम-परम्परा-परिवृतः सौधालयै-रुन्नताः
सम्पन्न प्रजया भृताः सकमलैः स्वच्छैः सरोभि र्युताः
येनात्र्यायतनैक-घोष-रुचिरा विष्वग्विशालोर्वरा
विप्रेभ्य स्मृत-ताम्रपट्ट-विधिभि-र्ग्रामाः कियन्तोऽर्पिताः ॥३६॥

अर्थः—जिसने ब्राह्मणों को अनेक ग्राम, स्मरण के लिये ताम्रपट्ट विधि के द्वारा अर्पित किये। कैसे ग्राम ? सुन्दर बगीचों की परम्परा से घिरे हुए, अटारी और भवनों से उन्नत, सम्पन्न प्रजाओं से युक्त, निर्मल और कमलयुक्त तालाबों से जलपूर्ण, लम्बे चौड़े बहुत से गौशालाओं के कारण सुन्दर, जिनमें चारों ओर विशाल उर्वरा भूमि है, ऐसे ग्राम ॥३६॥

सुस्थानैः स्वर भेद बोध करणं सद्ग्राम तालोचितम्
सम्पूर्णं श्रुति धर्म राग-रुचिरं तत्कण्ठ तानाश्रितम्
सन्मार्ग-स्थिति-चित्तहारि सुलभं यत्किन्नराणां महत्
साम्राज्यं निज मुद्दधार सकलं संगति शास्त्रं च यः ॥३७॥

अर्थ—इस छन्द में श्लेष है। जो विशेषण संगीत के उद्धार के लिये हैं, वे ही विशेषण राज्य के उद्धार के लिये हैं। विशेषण दुअर्थी हैं। जिस (राजा) ने अपने समूचे साम्राज्य का उद्धार किया एवं संगीत शास्त्र का उद्धार किया। अच्छे स्थान से स्वर, भेद, बोध कराने वाले सद्ग्राम एवं ताल से उचित, श्रुति, धर्म, राग इनसे रुचिर, उनके कण्ठ की तान में आश्रित, अच्छे मार्गों की जहाँ स्थिति है, जो चित्त को हरण करने वाले हैं, जो किन्नरों को महत्सुलभ हैं, ऐसे संगीत शास्त्र का और साम्राज्य का उद्धार किया ॥३७॥

अचला निखिलाऽखिला नृपाला हृदयेशस्य ममुः करेऽमुनैव
लिखिताश्चणकैक भित्त मध्ये ननु पञ्चाशदिव द्विपा महान्तः ॥३८॥

अर्थः– राजा के दरबार में किसी होशियार कारीगर ने, चने का एक ऐसा दाना पेश किया जिस दाने की भीत में पचास हाथियों के चित्र बनाये गये थे। इस पर से कवि कहता है—कि राजा ने बचे हुए समस्त पृथ्वी एवं राजाओं को भी जैसे अपने हाथ में कर लिया। वश में आने वाले बड़े राजाओं की तुलना कवि ने चने के ऊपर बने पचास हाथियों से की है ॥३८।

अभूदणीयस्य चले तु लक्ष्ये न विस्मयः कश्चन तेन विद्धे।
तिर्यक्वरक्षित शरं शरैयः स्थले स्थले ह्येकपदे छिनत्ति ॥३६॥

अर्थ :—राजा ने छोटा से छोटा भी अचल लक्ष्य पर निशाना मारा, तो कोई भी विस्मय नहीं। शत्रुओं के द्वारा फेंके गये आड़े-टेढ़े बाणों को भी इस राजा ने तत्काल स्थल-स्थल पर छिन्न-भिन्न किया। राजा जब चल लक्ष्य को छिन्न-भिन्न कर डालते हैं तो अचल लक्ष्य में निशाना मार सकने में कौन सा विस्मय? ॥३९॥

मृगयाऽवसरे पदेन मृद्नन्न लघु व्याल कराल भाल मेव।
अवधीद चिरेण यश्शरेण प्रबल द्वीपि नमा पतन्त मुच्चैः ॥४०॥

अर्थः—राजा ने शिकार खेलने के समय अपने पैरों से ही बड़े सिंहों के विकराल भालों को भी कुचल डाला। अपने ऊपर जोर से आक्रमण करने वाले बलवान हाथी को भी बाण से तत्काल मार डाला इसमें कोई आश्चर्य नहीं ॥४०॥

यस्योपरीय मिन्द्रोक्तिः।
अयि! वद, विभनाः कुतोऽसि? जिष्णो विबुधवरा विदितं नवः किमेतत
हृदय नरपति र्यदेव विप्रान्भुवि विदधाति शतक्रतूतनेकान् ॥४१॥

अर्थः—इसके ऊपर इन्द्र की यह उक्ति है। हे जयशीलो तुम लोग अनमने क्यों हो? हे देवो क्या आपको यह ज्ञात नहीं है कि यह हृदय नरपति पृथ्वी पर अनेक ब्राह्मणों को भी शतक्रतु बना रहा है। भाव कि मेरा शतक्रतु का पद राजा अनेक ब्राह्मणों को दे रहा है ॥४१॥

अभवत्सुन्दरी देवी राज्ञी तस्य महीपतेः।
सौभाग्य सदनं पुण्य सम्पदेव स्वरूपिणी ॥४२॥

अर्थः—उस राजा की रानी सुन्दरी देवी थी। जो सौभाग्य की सदन थी। पुण्यों की सम्पदा के समान थी और स्वरूप वाली थी ॥४२॥

दरिद्र-दुखौघ-निदान-वारिभि - र्निरंतर - प्रस्तुत - दान - वारिभिः
गजा घनाभा घन दान वारिभिः यतः सदाद्याः क्षिति-दानवारिभिः ॥४३॥

अर्थः—राज्य में जो दरिद्र और दुःखी हैं, रानी उनका निदान करके उनका (कष्ट) निवारण करती हैं। रानी सदैव दान देती हैं, दान के जल से युक्त उनका हाथ सदैव प्रस्तुत रहता है। घन की आभा वाले गज रानी को सदैव प्राप्त हैं। रानी के राज्य में घन, जल का दान करते हैं। रानी पृथ्वी में दानवों की अरि हैं ॥४३॥

अविरत-मुत्तरोत्तर-निबन्ध्यवदान्कर्ते-र्मितमवकाशमेत्त्य भुवनेषु गतैर्घनताम्
शरदिज-शतिरश्मि-शत-साध्य-विकाशकरै-र्जगति यदीय-पेशलयशोभिर-
शोभितराम् ॥४४॥

अर्थः—उत्तरोत्तर (चन्द्रमा आदि की) स्तुति को वन्ध्या बनाने वाले, मित अवकाश प्राप्त होते ही भुवन में घनता को प्राप्त होने वाले शरद् ऋतु के सैकड़ों चन्द्र द्वारा जो साध्य है, ऐसी दीप्ति को बढ़ाने वाले उस रानी के कोमल यश जगत् में बहुत खिल उठे ॥४४॥

दीर्घिकाराम-कासार-प्रमुखै-र्भूरिन्दक्षिणैः
पूर्तैरनन्तैर्या धर्मं निरन्तरमपालयत् ॥४५॥

अर्थः—रानी ने निरन्तर धर्म का पालन किया। उसने बहुत से पूर्त्त कर्म किये। जिसमें भूरि दक्षिणा दी गई। बावली, बाग, तालाब का निर्माण प्रमुख था ॥४५॥

विष्णोः शम्भोर्गणेशस्य दुर्गाया-स्तरणेश्च या
व्यधित स्थापनमिदं विधाय विबुधालयम् ॥४६॥

अर्थः—उस (सुन्दरी रानी) ने विधिपूर्वक विष्णु, शम्भु, गणेश, दुर्गा और सूर्य का स्थापन करके देवालय बनवाया ॥४६॥ देवालय अभी हैं। केवल गणेश और सूर्य दो ही मूर्ति बची हैं।

तस्याःस्तवाय कः शक्तः शंकर श्रीधरादयः
सुपर्वाणोपि मुद्रिताः प्रतिष्ठाँ प्रापिता यया ॥४७॥

अर्थः—उस (रानी) की स्तुति के लिये कौन समर्थ है ? जिस (रानी) ने कि शंकर, विष्णु इत्यादि देवों को भी सन्तुष्ट करके प्रतिष्ठत किया ॥४७॥

तत्र नियुक्तै-र्विप्रै-रुपहारै-रुत्सवै-र्धनै-रमितैः
या सुन्दर-त्रिविक्रम-मुख्यान्देवा-न्सदार्चयां चक्रे ॥४८॥

अर्थः—उस (रानी सुन्दरी ने) त्रिविक्रम (विष्णु) आदि मुख्य देवों की नियुक्त ब्राह्मणों द्वारा उपहार, उत्सव और अमित धन से सदा अर्चना की ॥४८॥

हृदयेश-महीपालो जिगाय नितरां तया
शक्ति-प्रकर्षः क्षमया चन्द्रश्चन्द्रिकया यथा ॥४९॥

अर्थः—रानी (सुन्दरी) द्वारा राजा (हृदयेश) जीत लिया गया था। जैसे कि क्षमा के द्वारा शक्ति का प्रकर्ष जीत लिया जाता है। जैसे चन्द्रिका के द्वारा चन्द्र (जीत लिया जाता है) ॥४९॥

सुकीर्त्ते-र्मीमांसा-विवरण-गुरो-स्तर्क-जयिनः
सुतेनच्छन्दोङ्ग-प्रवचन-पटो- र्मण्डनकवेः

तदीया देशेन व्यरचि जयगोविन्द-विदुषा
समासात्तद्वन्श-क्षितिप-विषये वर्णनमिदम् ॥५०॥

अर्थः—जयगोविन्द नाम के विद्वान् ने राजाओं के विषय में संक्षेप से यह वर्णन किया है। जयगोविन्द के पिता मण्डन कवि हैं। उनकी आज्ञा से जयगोविन्द ने रचना की। मण्डन कवि की कीर्ति अच्छी है। मीमांसा के प्रकाण्ड पण्डित हैं, तर्कशास्त्र के विजेता हैं, छन्दों के अंगों को जानते हैं और प्रवचन में पटु हैं ॥५०॥

सिंहसाहि-दयाराम-भगीरथ-समाह्वयैः
शिल्पिभिर्निर्मित मिदं निपुणैर्विबुधालयम् ॥५१॥

अर्थ :—यह देवालय सिंहसाहि, दयाराम, भगीरथ इन चतुर कारीगरों द्वारा निर्मित हुआ ॥५१॥

वेदनेत्रहयेन्द्वब्दे ज्येष्ठे विष्णुतिथौ सिते।
सदाशिवेन लिखितमुत्कीर्णं तैः सुशिल्पिभिः ॥५२॥

अर्थ :— वेद, नेत्र, हय और चन्द्र की साल में (४, २, ७, और १) जेठ महीना के शुक्ल पक्ष की विष्णुतिथि में, सदाशिव ने लिखा और उन कुशल कारीगरों ने खोदा ॥५२॥

संवत् १७२४ वर्ष ज्येष्ठ शुक्ल ६१ शुक्रवासरे—इसके बाद हाशिया में ग्यारह इन्च तक में कुछ और लिखा है जो चूना लगा होने के कारण नहीं पढ़ा जा सका। सम्भव है कि एक श्लोक हो या कुछ गद्य हो। केवल एक शब्द 'मया' पढ़ा जा सकता है।

पाँचवाँ अध्याय

गोंड़ राजाओं के बाद

(१) सागर के मरहठा (१७८१-१७९९)
(२) नागपुर के भोंसले (१७९९-१८१८)
(३) अँग्रेजी राज्य (१८१८-१९४७), १९३० का जंगल सत्याग्रह
(४) आजादी के मजे

१९५३ राष्ट्रपति का दौरा
१९५७ डाका
१९५७।१९५८ भयंकर अकाल
१९५८ पुलिस पुरस्कार
१९५९ राष्ट्रीय शिक्षक

(१) सागर के मरहठा (१७८१-१७९९)

अन्तिम गोंड़ राजा का नाम नरहरिसाहि था। सुमेदसाहि बीच में आ गये। उनके बाद नरहरिसाहि दूसरी बार राजा बने। अतएव अन्तिम राजा नरहरिसाहि ही थे। सन् १७८१ में सागर के मरहठों ने गढ़ामण्डला के राज्य पर पूर्णरूप से कब्जा कर लिया। उनके सेनापति मोराजी गढ़ा-मण्डला के प्रथम शासक हुए। मण्डला गजेटियर में लिखा है कि किसी अधिकारी वासुदेव पण्डित ने केवल आठ महीने में चौवन लाख रुपया वसूल किया। हो सकता है कि सच हो। प्रजा पीड़त अवश्य था; पर गढ़ामण्डला का क्षेत्र भी विस्तृत था। वर्तमान मण्डला जिला के सीमा की रचना १८५८ के बाद हुई। सागर के मरहठों के अठारह वर्ष के शासन काल में प्रजा कभी सुखी नहीं रही। कुशासन था, लूट खसोट थी। प्रजा की इतनी अधिक क्षति हुई जो कभी पूरी नहीं हो सकी। इसी काल में इतिहास ग्रन्थ 'गढ़ेशनृप वर्णनम्' लिखा गया।

(२) नागपूर के भोंसले (१७९९-१८१८)

कुशासन के कारण सागर वालों से नागपूर के भोंसलों ने राज्य

अपने वश में कर लिया। फिर भी प्रजा की उन्नति नहीं हुई। कुशासन वैसा ही रहा। पिंडारियों का उत्पात बढ़ा। इतना बढ़ा कि किसी चिन्तामन नामक शासक ने मण्डला में शहर पनाह बनवाया और खाई खुदवाई। मण्डला में पिंडारियों का उत्पात कुछ कम अवश्य हुआ, पर और सर्वत्र बहुत उत्पात होता रहा। परिशिष्ट मे देखिये पिंडरई।

सन् १८१८ में भोंसले से और अंग्रेजों से कई सन्धियाँ हुईं। फल-स्वरूप गढ़ामण्डला का क्षेत्र अंग्रेजों के हिस्से में आ गया। मण्डला के किले में जो सिपाही थे वे नागपुर के भोंसले के ही सिपाही रहे होंगे। उन्होंने अधिकार छोड़ने में आपत्ति की। जनरल मार्शल फौज लेकर पहुँच छोटा सा युद्ध हुआ। अंग्रेजों की जीत हुई। अंग्रेजों ने तारीख चौबीस मार्च अठारह सौ अठारह को मण्डला में कब्जा किया। वह स्थान ही वर्तमान फतह दरवाजा है।

सागर के मोराजी ने या भोंसलों ने धन की लूट की तो वे विजेता भी थे। उनके पक्ष मे कुछ तो औचित्य है। उन्होंने प्रजा को धर्म-च्युत नहीं किया। आज सेवा और उन्नति के नाम पर जनता को अपने ही देशवासी धर्मच्युत कर रहे है; और धर्म भ्रष्ट करने में प्रोत्साहन दे रहे हैं।

(३) अंग्रेजी राज्य (१८१८-१९४७)

१८१८ में अंग्रेजों का राज्य हो गया। अकाल ने स्वागत किया। पहिले सिवनी की तहसील बनी। १८४६ में मण्डला जिला बनाया गया। १८५१ छः माह के बाद फिर से सिवनी की तहसील बनायी गयी। १८५१ में फिर से जिला बना। अबकी बार स्थायी रूप से तहसीलें बनीं रामगढ़ और सुहागपुर। मण्डला मे स्थायी रूप से रहने वाला जिलाध्यक्ष सबसे पहिले वलाक नामक अंग्रेज था।

१८५५ में जिलाध्यक्ष के पद पर कैंपटेन वाडिंग्टन नामक अंग्रेज आया। इसी के शासन काल में १८५७ का संग्राम हुआ। जिसे अंग्रेज इतिहासकारों ने गदर (म्युटिनी) कहा है। अब हम लोग इसे स्वतन्त्रता का प्रथम संग्राम कहने लगे हैं। देहात में 'कुर्री' कहते हैं।

रामगढ़, शाहपुर और सुहागपुर के जमीन्दारों का दमन किया गया। शान्ति स्थापन कार्य में रीवाँ से सहायता मिली। पुरस्कार स्वरूप सुहाग-

पुर का क्षेत्र रीवाँ के महाराजा को दिया गया। रामगढ़ और शाहपुर जब्त किये गये।

फिर भी मण्डला जिला ने कोई विशेष भाग नहीं लिया। स्वार्थी तत्वों ने अराजकता फैलाई। भगदड़ मची। आतंक फैला। वही 'कुर्री' कहलाती है। अंग्रेज शासकों का मानसिक सन्तुलन बिगड़ चुका था। कहीं कुछ भी हुआ स्वार्थी लोगों ने अंग्रेजों को अराजकता कह कर समझाया। अंग्रेज हर ऐसी बात को गदर ही समझने लगे। शहपुरा के आस-पास विशेष उत्पात हुआ। आज भी शहपुरा क्षेत्र की जनता आसानी से भड़क जाती है।

रामगढ़ की रानी का नाम उल्लेखनीय है। ग्रेण्ट ने अपने गजेटियर (१८७०) के पेज ४२६ में रानी रामगढ़ के स्वाभिमान की प्रशंसा की है। छुटपन में हम लोग बड़े बूढ़ों के मुँह से सुना करते थे कि राजा रामगढ़ ने अंग्रेजों के विरुद्ध किसी भी प्रकार की बगावत नहीं की थी। उनको व्यर्थ ही अंग्रेजों का विरोधी या बलवाइयों से मिला हुआ कहा गया। स्वार्थी लोगों की बातों को सुन कर राजा रामगढ़ को बलवाई मान कर अंग्रेज शासकों ने बिना सोचे-विचारे राजा की हत्या कर दी या करा दी, और रामगढ़ राज्य को अंग्रेजी सल्तनत में मिला लिया। राजा की सन्तान को पेंशन बाँध दी गई। उस पेंशन को 'मालिकाना या हक्क परिवरिश' कहते थे। पतिव्रता रानी अपने पति के शरीर के साथ सती हो गई। उस लोधी वंश की रानी ने उस समय अपने पति के विरुद्ध भड़काने वाले अफसरों को शाप दिया था। मण्डला के गर्ल्स हाई स्कूल का नाम रानी रामगढ़ हाई स्कूल रखा गया है।

अंग्रेज शासकों ने गढ़ामण्डला के राजवंश के शंकरशाह और उनके पुत्र रघुनाथ पर बलवाई होने का मुकदमा चलाया। नेगदसइर सब पूरे होकर दोनों को आपराधी सिद्ध किया गया। दोनों को तोप से उड़ाये जाने का दण्ड मिला। १८ सितम्बर १८५७ को शंकरशाह और उनके पुत्र रघुनाथ को झाड़से बाँध कर तोप से उड़ा दिया गया। वह झाड़ प्रांतीय शिक्षण महाविद्यालय जबलपुर के पास था।

१८६५-१६०१ मण्डला जिला में इन पाँच छः वर्षों का लम्बा और भयंकर अकाल पड़ा। पादरियों के गिरजाघर आबाद और गुलजार हुए। सरकार ने रेल योजना पर विचार किया, जो बाद में बन भी गई।

१८६५ में नर्मदा का बड़ा पूर आया।
१६०७ के लगभग नैनपुर मण्डला रेल बन कर तैयार हो गई।
१६१० में पं० गणेश दत्त पाठक ने 'अर्थशास्त्र प्रवेशिका' नामक पुस्तिका लिखी। यह समूचे हिन्दी साहित्य में अर्थशास्त्र की सबसे प्रथम पुस्तक है। पाठक जी को मण्डला ने कोई नागरिक सम्मान नहीं दिया।
१६२३ में नर्मदा का पूर आया। जो १८६५ के पूर से बड़ा था।
१६२६ में नर्मदा का सबसे बड़ा पूर आया। नर्मदा और बंजर दोनों नदियों में पूर आ जाने से मण्डला को डर हो जाता है। किसी भी एक नदी में पूर होने से कोई डर नहीं।
१६३० के *जङ्गल-सत्याग्रह* में जनता शान्त रही आई।

नेताओं की आज्ञा थी कि नाम मात्र के लिये जंगल कानून तोड़ कर सत्याग्रह किया जावे। । लोगों ने जंगल पर स्वच्छन्द आचरण का अर्थ निकाल लिया। सत्याग्रह स्वार्थसिद्धि या आत्म-लाभ के लिये नहीं होता। डिंडौरी तहसील के दुर्गम स्थानों में छोटे-बड़े-मंझोल किसी भी श्रेणी के नेता नहीं जाया करते। एक तो तहसील समूची दुर्गम हैं। भीतरी भाग वर्षा में और अधिक दुर्गम हो जाता है। अतएव १६३० के आन्दोलन में एक तरफ नासमझ नेताओं की बन पड़ी और दूसरी तरफ स्वार्थी या राष्ट्रद्रोही सरकारी अफसरों की।

नासमझ नेताओं का प्रचार था—'सरकार को मवेशी चराने के पैसे मत दो सरकार के रक्षित वन में पशुओं को चराओ, जंगल जनता का है सरकार का नहीं' वन-विभाग ने पशुओं के गैरकानूनी प्रवेश और चराई से उत्तेजित होकर पशुओं को काँजी हाउसों में बन्द किया। तब नासमझ नेताओं का प्रचार हुआ कि 'सरकार ने गौ माता को जेल में बन्द कर दिया। काँजी हाउसों के फाटकों को तोड़ डालो और गौमाता को जेल से मुक्त कर दो। सरकार के सुरक्षित वनों को काट डालो। वृक्ष रहित इस प्रकार वनों को काटने पर भूमि में राई रमतिला की फसल बो डालो' इन प्रचारों का कई स्थानों में पालन भी हुआ। नासमझ नेताओं के ऐसे नासमझी के प्रचार से यद्यपि जनता शान्त रही आई तथापि सत्याग्रह सत्याग्रह नहीं रह गया। सत्याग्रह के नाम पर स्वार्थ-साधन हो गया। प्रदर्शन पैसा बचाने को और पैसा कमाने को होने लगे। बहुतों पर मुक-

दमे चले और सजाएँ हुईं। इस प्रकार जनता की तरफ से सत्याग्रह में स्वार्थ आ गया।

सरकारी अफसरों में दो स्पष्ट भेद थे। एक भाग में वे देश-भक्त अफसर थे जो चाहते थे कि आन्दोलन महात्मा जी की इच्छानुसार चल कर सफल होवे। दूसरे भाग में वे देशद्रोही अफसर थे जो चाहते थे कि आन्दोलन में हिंसा को ठूँस दिया जावे, आन्दोलन विफल हो जावे। वे जी तोड़ परिश्रम करते थे कि जनता खूब भड़क जावे। भड़की हुई जनता पर अत्याचार करने का और जनता को पीस डालने का उनको स्वर्ण अवसर मिले, अंग्रेज सरकार की निगाह में उनकी कीर्ति हो, तरक्की मिले, खान बहादुरी का सेहरा माथे में बाँधें। मुझे पूरा स्मरण है कि मैंने उपरोक्त विश्लेषण सब डिविजनल मजिस्ट्रेट श्री कामता प्रसाद श्रीवास्तव के सामने प्राइवेट रूप में स्पष्ट किया था। श्री कामता प्रसाद के चिरंजीव श्री भैयालाल श्रीवास्तव आजकल जबलपुर में दन्तचिकित्सक हैं। कामता प्रसाद जी ने समझ लिया था 'कि अमुक-अमुक देशद्रोही अफसर जनता को हिंसा करने के लिये भड़का रहे हैं। जनता स्वयम् शांत रहना चाहती है। जनता की सहानुभूति महात्मा जी के अनुकूल है। देशद्रोही अफसरों का स्वार्थ महात्मा जी के आन्दोलन के प्रतिकूल है अर्थात् जनता के स्वार्थ के प्रतिकूल और जनता की तथा शासन की सुख और शान्ति के प्रतिकूल है।' मैंने यह भी बताया था कि स्वार्थी अफसर तहसीलदार अब्दुल गफ्फार खां का दलाल लाल मुहम्मद जनता को भड़काने का काम कर रहा है। मेरी बात पर अमल करके श्री कामता प्रसाद ने लाल मुहम्मद के भड़काने वाले कुछ लिखितम् भी प्राप्त किये थे जो मुझे दिखाये भी थे। इस प्रकार जंगल का सत्याग्रह आन्दोलन तो एक तरफ धरा रह गया। दो धाराएँ अलग-अलग चलने लगीं।

एक धारा थी कि जंगल-सत्याग्रह चाहे बिलकुल न हो सके; पर देशद्रोही अफसरों को हिंसा कराने का अवसर बिलकुल न मिल पावे। इस नीति में गैरसरकारी व्यक्ति तो थे ही देशभक्त श्रेणी के सब सरकारी अफसर भी शामिल थे। दूसरी धारा में केवल देशद्रोही अफसर थे, जो चाहते थे कि हिंसा और खूब हिंसा हो।

जंगल-सत्याग्रह आन्दोलन की सफलता की कसौटी अब दूसरी हो चुकी थी। यह गौण प्रश्न था कि जंगल सत्याग्रह हो सका या नहीं हो

सका। प्रधान प्रश्न यह हो गया था कि आन्दोलन में हिंसा कराने वाले देशद्रोही अफसर हिंसा में सफल किसी भी तरह न होने पावें। जंगल सत्याग्रह आन्दोलन में यदि किसी भी प्रकार की हिंसा हो जाती तो महात्मा जी न जाने क्या कर डालते। देश के आन्दोलन पर न जाने क्या गति हुई होती इसलिए आन्दोलन में हिंसा नहीं हो सकी और नहीं हो पाई।

लाल मुहम्मद ने जोगीटिकरिया के पास टेलीग्राम का तार काटा था। तहसीलदार अब्दुल गफ्फार खाँ और पुलिस सर्किल इन्सपेक्टर गजनफर अली ने तार काटने का दोष जनता पर मढ़ा। आन्दोलन में हिंसा ठूँसने का यह भी एक प्रयत्न था। डिण्डोरी तहसील के जंगल-सत्याग्रह आन्दोलन की पूर्ण सफलता इस बात में निहित है कि भड़कावों के रहते हुए जनता शान्त और अहिंसात्मक रही आई। हिंसा के सब प्रयत्न विफल हो गये।

एक बार ऐसा रूप दिखा कि डिण्डौरी के पांच-सात हजार निहत्थी जनता सरकारी खजाना तोड़ने के लिये और लाक अप (Lock-up) तोड़ कर अपने गिरफ्तार शुदा नेताओं को ले जाने के लिये इकट्ठा हो गई। उस समय सरकार के पास आत्मरक्षा का कोई साधन नहीं था। जो पुलिस के कानिस्टबल ड्रेस लगा कर लाइन लगा कर खड़े थे वे सब बीमार थे। अस्पताल के इनडोर मरीज थे। उनमें खड़े रहने की भी शक्ति नहीं थी। उस विशाल जन समूह को महात्मा जी की विचारधारा समझाई गई कि इस प्रकार सरकारी खजाना तोड़ना या लाकअप तोड़ना या तोड़ने के प्रयत्न करना महात्मा जी की परिभाषा में घोर हिंसा है। ऐसे कृत्यों से महात्मा जी के दिल को बहुत चोट लगेगी। आन्दोलन का और देश का नुकसान होगा। जनता समझ गई। जनता ने किसी भी प्रकार की हिंसा का कोई भी काम नहीं किया। इतना विशाल जनसमूह शान्तिपूर्वक आया और शान्ति पूर्वक वापिस चला गया। यह महात्मा जी के नाम की और सिद्धान्तों की विजय थी। जिससे राष्ट्र विरोधी अफसरों को मुँह की खानी पड़ी। गोंड़ जाति ने भड़कावे में न आकर प्रलोभनों को ठुकरा कर अपनी ऊंची संस्कृति का परिचय दिया।

सरकारी कागजों में न जाने किस रूप में लिखा है। अगस्त १९५३ में मैंने पूरा प्रतिवेदन अपनी यादगारी से लिख कर भारतीय स्वतन्त्रता

की इतिहास समिति के पास भेजा था। यह भी यादगारी से लिखा है। इसी साल अंग्रेजी राज्य के विरुद्ध किसी देहाती कवि ने प्रसिद्ध लोक गीत 'कर्मा' की रचना की—'या अंग्रेजी राज में कठिन वा जीना रे ॥'

१९३९ की छठीं दिसम्बर को महात्मा गाँधी मण्डला आये। नारायण गंज भी रुके थे। मण्डला में इतनी विशाल जनता और कभी नहीं इकट्ठा हुई। ऐसा विशाल जन समूह स्वतन्त्र भारत में न जाने कब इकट्ठा होगा।

१९४० में सुभाष चन्द्र बोस मण्डला आये। व्याख्यान हुआ। सिवनी जेल से जबलपुर जाने में भी एक रात मण्डला जेल में वे रखे गये थे।

१९४२ की पंद्रह अगस्त को उदय चन्द जैन को गोली मारी गई। जनता भड़क गई। सरकारी अफसर चिन्तित हो गये। जनता ने शव का जुलूस निकाला। शान्ति कायम रखने के लिये कोई सरकारी अफसर हिम्मत नहीं करता था। तब श्री० जे० एस० चौहान ने शान्ति कायम रखने का काम किया। उन्होंने सरकार के सामने एक शर्त पेश की कि जुलूस के मार्ग में कोई भी पुलिस वाला न दिखे। इतनी अधिक उत्तेजना के समय भी जनता ने शान्ति भंग नहीं की।

१९४४ में पूज्य ठक्कर बापा ने 'गोंड़ सेवा मण्डल' की स्थापना की। अब बदला हुआ नाम 'वनवासी सेवा मण्डल' है। संस्था के द्वारा शिक्षा-प्रसार हो रहा है अर्थात् वह जिला बोर्डों की पूरक है। आशा थी कि यह संस्था वनवासियों के धर्म परिवर्तन को रोकेगी। यदि कभी ऐसा हुआ तो ईसाई पादरी लोग संस्था की शिकायत सरकार के समक्ष करेंगे। संस्था सरकारी ग्राण्ट पर चल रही है।

(४) आजादी के मजे

१९५३ अप्रैल में देश के सर्वोच्च शासक राष्ट्रपति महोदय ने अपनी चरण रज से मण्डला जिला की भूमि को पवित्र किया। वे कन्हा किसली के राष्ट्रीय पार्क में आये थे। अंग्रेजी शासन के दिनों में कोई भी गवर्नर जनरल या वाइसराय मण्डला जिला में नहीं आये।

१९५७ में मण्डला जिला का प्रथम और आखरी डाका पड़ा। स्वयम

जिला पुलिस कप्तान ने विवेचना की । तीन दिनों के अन्दर माल और अपराधी सबका पता लगा लिया । विवेचना में अचानक गाँजा की एक अवैध राशि भी मिली ।

१९५७।१९५८ में भयंकर अकाल पड़ा । पहिले प्रान्तीय ने अकाल को क्षेत्रीय प्रश्न समझकर कनबहरी की। कुछ स्थानीय नेताओं ने प्राणों की बाजी लगा दी । प्रान्तीय कैबिनेट का ध्यान आकर्षित हुआ । सरकार ने खुल कर मदद दी । कई हजार मनुष्यों के प्राण बचे । सड़कों के अभाव के कारण वर्षा में सरकारी कार्यकर्त्ताओं ने बहुत कष्ट उठाया । उनकी जान सदैव हथेली में थी । वे लोग साथ में दस-दसबीस-बीस हजार रुपया लेकर घोर वनों में जाते थे । भाग्य से डाकू समस्या नहीं थी और न है ।

१९५८ में मण्डला जिला की पुलिस को प्रदेश भर में सर्वोत्तम विवेचना का पुरस्कार मिला । यह विवेचना शहपुरा थाना की महुआ देवी केस की थी ।

१९५९ जनतन्त्र दिवस उत्सव के समय दिल्ली में राष्ट्रपति ने राष्ट्रीय शिक्षकों के दोनों इनाम मण्डला जिला को दिये । केन्द्रीय सरकार की योजना के अनुसार हर राज्य (प्रान्त) के उत्तमोत्तम शिक्षक को राष्ट्रीय शिक्षक का पद दिया जाने लगा है । पहिली साल के दोनों इनाम मण्डला जिला में आये ।

हाई स्कूलों के राष्ट्रीय शिक्षक का सम्मान डिंडौरी के श्री श्यामबिहारी वर्मा को मिला, और प्राइमरी स्कूलों के राष्ट्रीय शिक्षक का सम्मान मध्यप्रदेश के बाईस हजार शिक्षकों में से मण्डला के श्री सरमन लाल गौतम को मिला ।

छठा अध्याय

आज के गोंड़

(१) विस्तार
(२) वीर गाथाएँ, श्री अनवरसिंह का बयान
(३) वर्ग भेद, समाज-व्यवस्था
(४) बोल-चाल, रहन-सहन और मद्यपान
(५) कृषि, विवाह, मृत्यु होने पर
(६) अनुसूचित, गरीबी, लूटखसोहट, चरित्र, सुगम सहयोग
(७) देवधामी, तीन वक्तव्य, स्पष्टीकरण, जिला की बातें, निवेदन।

(१) विस्तार

भारत देश भर में आदिवासी फैले हुए हैं। वे जङ्गलों और पहाड़ी क्षेत्रों में रहना पसन्द करते हैं या यों कहें कि उन्हें जंगलों और पहाड़ों में रहना पड़ता है। क्योंकि वे उपजाऊ भूमि के क्षेत्रों से भगा दिये गये हैं। गोंड़ और बैगा जाति के सम्बन्ध में ऐसा समझ लेना भूल होगी कि वे केवल गढ़ामण्डला राज्य के विस्तार क्षेत्र में या मण्डला जिला में या मध्यप्रदेश में या छत्तीस गढ़ और बस्तर में ही रहते हैं। उनका क्षेत्र विस्तृत है। नर्मदा से गोदावरी तक तो है ही, आन्ध्रप्रदेश, चांदा, नागपूर, बरार आदि महाराष्ट्र में, मिरजापुर जिला में बिहार और उड़ीसा के क्षेत्रों में भी वे हैं। 'देश और परिस्थिति के अनुसार रहन-सहन और बोल-चाल में भेद भी है। वारंगल जिला के तथा और कई स्थानों के गोंड़ अपने को गोंड़ न कहकर ठाकुर या क्षत्रिय कहते हैं। मण्डला जिला के गोंड़ अपने को किसान कहने में गौरव का अनुभव करते हैं।

आदिवासी प्रतिशत के हिसाब से सर्वाधिक मध्यप्रदेश में हैं। मण्डला जिला में गोंड़ों की संख्या लगभग पैंसठ प्रतिशत है। अतएव नृतत्व शास्त्र में मध्यप्रदेश, मण्डला जिला और गोंड़ जाति का विशिष्ट स्थान है। गोंड़ जाति का थोड़ा बहुत वास्तविक परिचय आवश्यक हो जाता है। अंग्रेजों के लिखे साहित्य में वास्तविक स्थिति का पता नहीं

चलता। वह साहित्य भारत को बदनाम करने के ध्येय से और धर्म-परिवर्तन के ध्येय से लिखा गया था। पहिला प्रश्न गोंड़ जति के मूल-निवास का है। दो प्रकार के उत्तर हैं। एक यह कि गोंड़ 'जाति ही क्या समूची सृष्टि की उत्पत्ति भगवान् निंगो से हुई। दूसरा उत्तर यह है कि गोंड़ जाति का मूलनिवास गोदावरी नदी के मुहाने में कोकोनदा, राज महेन्द्री की तरफ था। वहाँ से उत्तर की तरफ प्रगति हुई। मार्ग स्पष्ट है। चाँदा, वैरागढ़, अर्जुनी, गोंदिया (नाम गोंड़ शब्द पर है), लांजी, बाला-घाट, परसवाडा, इन्द्राबम्भनी, मण्डला, माडौगढ़, गढ़ा, संग्रामपुर, दमोह, सागर, भोपाल। इन सभी स्थानों पर गोंड़ों का आधिपत्य रहा और आधिक्य है। कभी कोई स्थान बढ़ा, कभी घटा। गोंड़ों की गोंड़ी फारसी में तेलुगु का प्रभाव है। इन बातों से मूल निवास गोदावरी डेल्टा ठहरता है। लोक कथा से निंगोगढ़ सिद्ध है ही। अक्सर लेखकगण तीन बातों में गड़बड़ा गये हैं। वे तीन पृथक बातें इस प्रकार हैं। एक गोंड़ जाति का विस्तार, दूसरी अन्य छोटे गोंड़ राजाओं की उन्नति और तीसरी गढ़ामण्डला के एक बहुत प्रतापी राज वंश की उन्नति। गोंड़ जाति का विस्तार अनादि काल से है। महाभारत काल में गोंड़ जाति का वैभव था। नागवंशी क्षत्रियों से अनेक गोंड़ राजाओं ने सन्धि और विग्रह किया। लाँजी के उस गोंड़ राजवंश का इतिहास में कुछ पता नहीं, जिस राजवंश की नौकरी में यादौराय थे। उस राजवंश के अधिकार में गढ़ा था, गढ़ा में यादौराय तैनात थे। उसके बहुत पहिले गोंड़ों के कई छोटे-बड़े राज्य बन चुके थे। यादौराय ने केवल एक गोंड़ राजवंश के राज्य का श्री गणेश किया। अन्य राजवंश अपने राज्यों में रहे आये।

गढ़ा मण्डला का राजवंश बाद के दिनों में सर्वाधिक प्रतापी सिद्ध हुआ। लगातार चौदह सौ वर्षों तक राज्य कायम रहा। गोंड़ राजाओं ने राज्य न भी किया होता तो भी गोंड़ जाति के विस्तार का महत्व है ही। बहुत बड़े क्षेत्र पर उनका और केवल उनका कब्जा था। छोटे राज, राय जमीन्दार, बड़े राजवंश, प्रजा कृषक, मजदूर सब गोंड़ ही थे। मुगल इतिहासकारों ने महाराजा संग्राम साहि के साम्राज्य-विस्तार का वर्णन किया है। उनसे पहिले भी कई ने यथा शक्ति राज्य-विस्तार किया होगा। गोंड़ राजाओं ने जहाँ-जहाँ विस्तार किया प्रायः सब स्थान ऐसे हैं जहाँ पहिले भी उन्नति रही है। वसुधा परिमित है। गोंड़ राजा लोग कहीं से

नया स्थान नहीं ला सकते थे। वैभव कभी बढ़ता है, कभी घटता है। फिर भी गोंड़ राजाओं ने सर्वत्र प्राचीन अवशेषों की रक्षा की। गोंड़ जाति यदि एनिमिस्ट या हिन्दू विरोधी होती तो आज एक भी प्राचीन अवशेष न मिलते। गोंड़ राजाओं की लाचारी के समय मुगलों ने चौसठ जोगनी की मूर्त्तियों को तोड़ा। भगवान् वराह की मूर्तियों को बदजनावर जानकर दीनदार मुसलमानों ने तोड़ने के लिये भी नहीं स्पर्श किया। तोड़ने वाले ने भी पत्थर के वराह को वराह माना। मूर्ति को मान्यता दी। उन दिनों बहशियों के सामने ऐसा तर्क कोई नहीं कर सकता था। आज स्वतन्त्रता के कारण सही सोचने का और सच कह सकने का अधिकार है। मुगलकाल के इतिहास में गोंड़ों के कई घराने प्रसिद्ध हैं। उनमें से कुछ ने इस्लाम धर्म ग्रहण कर लिया कई ने अपने पैत्रिक धर्म में पुनरागमन किया। सबका इतिहास दे सकना कठिन है। मण्डला के स्टेशन का पहिला नाम "गढ़ामण्डला" था। अंग्रेज बहादुर को डर लगा कि गढ़ामण्डला नाम से गढ़ामण्डला नाम से गोंड़ जाति को कहीं प्राचीन गौरव की याद न आ जाय, कहीं गोंड़ों में राष्ट्रीय भावना उदित न हो जाय, कहीं राष्ट्रीयता का प्रचार करने वाली कांग्रेस को इन गोंड़ों से कुछ बल न मिल जाय, तो गढ़ामण्डला रेलवे स्टेशन का नामबदल कर मण्डला फोर्ट कर दिया। मौलिकता जाती रही, चान्दा फोर्ट की नकल हो गई। करीब चार सौ वर्षों से जब से रानी दुर्गावती की पराजय हुई है, तब से लगातार गोंड़ जाति का अपमान किया जा रहा है। लाचारी से विचारों को अपमान सहना पड़ता है। अपमान करने वालों को, अपमान करके अभिमान का अनुभव होता होगा। उन्हें शर्म लगनी चाहिये कि हम किसी का अपमान करके अपनी संस्कृतिहीनता प्रगट कर रहे हैं।

गोंड़ शब्द किसी पुराण में नहीं मिलता। गोंड़ राजाओं का पता न जाने पुराणकारों को था या नहीं, या पुराणकारों ने गोंड़ राजाओं के लिये अलग शब्द की आवश्यकता ही नहीं समझी या गोंड़ शब्द नया है। पहिले क्षत्रिय ही माने जाते रहे हों। चन्द कवि ने पृथ्वीराज रासो में गढ़ा के गोंड़ राज्य का वर्णन किया है। सर ए. कनिंघम ने इस वर्णन को, आर्कोलियोजिल सर्वे, पोथी नौ, पेज १५२ में क्षेपक माना है। तीन शब्द उच्चारण में क्षम्य समानता रखते हैं। गौर, गौड़ और गोंड। फिर भी तीनों समाजों के अलग-अलग क्षेत्र हैं। गौर क्षत्रियों में होते

हैं। गोंड़ ब्राह्मणों में और कायस्थों में होते हैं, और ये दोनों गोंड़ जाति को अपने से अलग मानते हैं। गोस्वामी तुलसीदास ने "गोंड़ राजा" शब्द लिखा है। गोंड़ जाति प्रधानतया शैव है। सम्भव है कि कुछ समय के लिये बौद्ध या जैन हो गये हों, या न भी हुए रहे हों। हो गये हों, कह सकने का प्रमाण इतना ही है कि बहुत स्थानों में बौद्ध और जैन मूर्तियाँ मिलती हैं। गोंड़ों ने शंकराचार्य के शैव मत के प्रचार का बहुत स्वागत किया होगा। उनके मन की बात थी। गोंड़ों में माघ कृष्ण चतुर्थी के गणेश व्रत को शुद्ध वैष्णव विधि से मनाया जाता है।

गोंड़ जाति में गोत्र होते हैं। हर गोत्र वालों के अलग-अलग गढ़ होते हैं। हर गोत्र वालों के देवताओं की संख्या निर्धारित है। यही परम्परा इनके गोत्र प्रवर आदि की है। जैसे निंगोगढ़ के स्वामी धुरये गोत्र के हैं। मरावी गोत्र वालों का गढ़ गढ़ा है। 'गढ़ेश नृपवर्णनम्' के अनुसार गोंड़ लोग कच्छवाह क्षत्रिय हैं। मरकाम और टेकाम गोत्रों वाले सात देवता पूजते हैं, और कछवा (कच्छ) को अपना पूर्वज मानकर प्रणाम करते हैं। वे कछवा का मांस कदापि नहीं खा सकते। यह विषय ही अलग है और विस्तृत है कि गोंड़ों में कितने गोत्र होते हैं, किस गोत्र के कौन गढ़ हैं, वे गढ़ कहाँ हैं, आजकल उन स्थानों के क्या नाम हैं, किस गोत्र के कितने देवता होते हैं, किस गोत्र के पूर्वज का क्या नाम है, भगवान के किस अवतार को वे अपना पूर्व पुरुष मानते हैं? इत्यादि।

रावण और सहस्रार्जुन का युद्ध, कलचुरि जाति का और गोंड़ जाति का युद्ध रहा होगा। उस युद्ध में रावण का हार हुई। बाद के कई युद्धों में कलचुरि भी हारे। गोंड़ों ने राज्य किया। गोंड़ों और नाग वंशियों के युद्ध महाभारत काल में हुए होंगे। जब नागवंशियों[illegible]ह की सितारा बुलन्द था। समय बदलता रहता है। कभी कोई जीतता[illegible]वल जाति कोई हारता है। गोंड़ जाति अति प्राचीन है। गोंड़ों में वैदि[illegible]ता है। दस-बौद्ध और जैन काल की कई रीतियाँ अभी भी कायम हैं[illegible] कई व्यक्तियों सम्पत्ति में पुत्री का अधिकार, लाड़ूराज, मद्यपान, न[illegible] साहित्य को ऊँचे हल्दी पानी सींचने से हो जाता है), वह चाल [illegible]ये यह नमूना है। वे ने वशिष्ठ के स्वागत प्रसंग में किया है, गोंड़ों [illegible]म्र ७६ वर्ष। पुत्र अर्जुन पीढ़ी पहिले तक थी। इन सब तथ्यों से[illegible]। सब भूल गये। हस्ताक्षर कि गोंड़ जाति विशाल हिन्दू समाज की [illegible]म सुन पड़ता है। *बयान* इस

हिन्दूओं से भिन्न या हिन्दू विरोधी अलग ट्राइब कहना चाल या अज्ञानता है।

(२) वीर गाथाएँ

गोंड़ों का राज्य बहुत बड़े क्षेत्र में था। बहुत वर्षों तक था। छोटे-बड़े न जाने कितने वीरों की गाथाएँ प्रचलित हैं। वीर गाथाओं का संग्रह करके साहित्य में बहुत वृद्धि की जा सकती है। वह स्वस्थ साहित्य होगा। गोड़ों की वीर गाथाएँ गाने वाले चारणों को पठारी कहते हैं। वे गोंड़ों के घर में जाकर 'किंगरी' बजा कर गीत गाते हैं। पुरस्कार में गृहिणी सूपा भर दुदई देती है। उसी में एक रुपया और साक्षी के रूप में दो पैसे रहते हैं। दक्षिणा की 'भूरसी'। कई गीत प्रसिद्ध हैं।

पण्डवानी गीत में कौरव पाण्डव के गृहकलह तथा युद्ध का वर्णन होता है। सतीत्याग के गीत में सीता का रूप जो सती ने लिया था उसका वर्णन तथा महादेव द्वारा सती के त्याग का वर्णन होता है। रायगढ़ के पासी बिरवा राजा के गीत में ऐश्वर्य वर्णन होता है। हीरा खान के गीत में डून्ड़ा कलार की कथा है। गोंड़ी राजा के गीत में राजा प्रेम साहि के शराब पीने का वर्णन है।

हीरा खान (खानि = खदान, न कि अरबी का खान) की कथा का संक्षेप इस प्रकार है—हीराखान क्षत्रिय हीरागढ़ का राजा था। उसके राज्य में हीरागढ़, वैरागढ़, सिरपुर टोला, भानपुर नगरी, छैपारा आदि गढ़ थे। हीरा खान ने रैया सिघौला पर चढ़ाई की। हीरा खान को ...रदी गढ़ से सहायता मिली। हीरा खान की रानी का नाम कमल
चा... था।' इस कथा से गढ़ामण्डला के राजवंश का कोई सम्बन्ध
कर रह... में नहीं दीखता। इतिहास में हीराखान का कोई पता नहीं है।
गोंड़ ...ों के नाम का गीत में वर्णन आता है, वे स्थान ऐतिहासिक
जाने पुराण... हैं। गाने वाले अपढ़ पठारी लोग स्थानों के नामों का
अलग शब्द के... हैं, पर यह भी नहीं जानते कि उन स्थानों का अस्तित्व
पहिले क्षत्रिय ही ...स्थिति जानना तो दूर की बात है। हीरागढ़ तो नहीं
गढ़ा के गोंड़ राज्य का... वर्णन है। वैरागढ़ चाँदा के पास है। परिशिष्ट
को, आर्कोलियोजिल सर्वे... का नाम सिरपुर है पुराना उच्चारण श्री पुर
शब्द उच्चारण मे क्षम्य सम... रायपुर के पास बौद्ध अवशेषों का प्रसिद्ध
फिर भी तीनों समाजों के अ... काल के विदर्भ में वरधा नदी (वरदा) के

किनारे भानपुर कई मण्डला जिला में हैं। छैपारा, छपारा का उच्चारण भेद है। रैयासिधौंला के लिये परिशिष्ट में सिधौली देखिये। हरदी गढ़ सम्भवत: वर्तमान हरदा गढ़ है जो छिंदवाड़ा जिला में है। इस प्रकार एक साधारण-सी लोककथा में बहुत से ऐतिहासिक स्थानों का वर्णन मिलता है। हीराखान की कथा में 'कमल हीरो' शब्द आश्चर्य में डाल देता है। कमल हीरो शब्द में, पद्म और मणि इन दो शब्दों का समास है। तिब्बत के बौद्ध मत में 'मणिपद्म' शब्द बहुत व्यवहृत होता है। कमल हीरो शब्द में बौद्धमत की स्पष्ट छाप है। शब्द में अति प्राचीनता है।

वीर गाथा का एक रूप देखने के लिये परिशिष्ट में कुमारी गाँव का हाल देखिये। गोंड़ राजा के आश्रय में दो बार वाजपेय यज्ञ किये गये एक बार माधव पाठक द्वारा और दूसरी बार जयगोविन्द द्वारा। इतनी बड़ी उदारता को वीरता नहीं तो और क्या कहना चाहिये।

नरेन्द्र साहि (नं० ५७) के समय में गोंड़ राजा की सेना के सेनापति अहमदखाँ थे। वे अत्यन्त ईमानदार और विश्वासपात्र थे। उनकी गौरवगाथा के स्मारक रूप ने, राजा ने या प्रजा ने अहमदपूर नाम के दो गाँव बसाये। एक अहमद पूर अंजनियाँ से तीन मील पूर्व है और दूसरा छाछा के पास है, जिसे साल्हेंठन्डा अहमद पूर कहते हैं। वर्तमान उच्चारण हमानपूर होता है। हमान पूर शब्द में अहमदखाँ की ईमानदारी और वीरता की झलक नहीं है। गोंड़ों की वीर पूजा वृत्ति की झलक भी नहीं है। हमानपुर मण्डला से दस मील वायव्य है।

श्री अनवर सिंह का बयान

यह बयान अगस्त १९५९ में लिया गया। श्री अनवर सिंह की स्मरण शक्ति से आश्चर्य होता है। यह अपढ़ सरीखा व्यक्ति केवल जाति गौरव की भावना से इतने अधिक नामों को स्मरण रख सकता है। दस-पचास गाँवों में ऐसे बहुज्ञ कोई-कोई मिल सकते हैं। ऐसे कई व्यक्तियों के बयान संग्रह करने पर उनका सम्पादन करने पर साहित्य को ऊँचे दरजे की निधि मिल सकेगी। विद्या प्रेमियों के लिये यह नमूना है। वे मण्डला के कारीकौन मुहल्ला में रहते हैं। उम्र ७६ वर्ष। पुत्र अर्जुन सिंह गल्ले का धन्धा करता हैं। थोड़ा पढ़े थे। सब भूल गये। हस्ताक्षर नहीं कर सकते। अब कम दीखता है। कम सुन पड़ता है। *बयान इस*

प्रकार है :—हम राजगोंड़ लोग सूर्यवंशी क्षत्रिय हैं। हम लोग अपने देवी देवताओं को खून नहीं चढ़ाते। गोंड़ों का एक और भेद है, रावन-बन्सी जो मांस चढ़ाते हैं और मांस खाते हैं। मेरा गोत्र इनवाती है। मेरा घराना बटका गढ़ खापा का राज घराना है। जो हरई के उस पार है। लांजी गढ़ वाले राज का तेकाम गोत्र है। गढ़ा मण्डला वालों का भरावी गोत्र है कावेली गढ़ वाले राजा का उञ्चिका गोत्र है। कावेली गढ़ को आजकल केवलारी पलारी कहते हैं। सिवनी जिला में है। आजकल राजा सकरी सरेखा में रहते हैं। अहीरी वाले राजा ससराम गोत्र के हैं। उन्होंने इटका (नैनपुर के पास) की सभा में गोंड़ों की गिनती तीन करोड़ अस्सी लाख पाँच हजार बताई थी। लखनादौन तहसील में छूरवाड़ा के राजा कुमरा गोत्र के हैं। रायगढ़[1] के राजा का नाम पाली बिरवा था. वे बरकड़ा गोत्र के थे। रायगढ़ कोई गांव नहीं है। रायगढ़ इलाका अंजनिया के उस पार से लग जाता है। रायगढ़ की राजधानी भीमडोंगरी[2] में थी। मोतीनाला और मंगली के बीच में है। गढ़ामण्डला राज्य के वर्तमान वंशज का नाम श्याम शाह है। वे दुर्ग 'जिला के पानावरस नामक स्थान में रहते हैं। उन्होंने मेरे जिम्मे रामनगर के महल की और मण्डला के किले की देख-रेख सुपुर्द कर दी है। मैं प्रेसिडेण्ट हूँ।

(२) गोंड़ जाति बहुत विस्तृत है। उनकी एक उपजाति परधान या पठारी है। देव पुजारी भी कहते हैं। उनका बाना किंगरी है। मंगलसिंह राज नेगी मौजा कूचावाडा, पोस्ट लामटा ने एक किताब पुराने गोंड़ वंशों के बाबद छपाई थी। किताब सन् १६१८-१६१६ में छपी थी। अब मंगल सिंह का देहान्त हो चुका है। लड़का भावसिंह है। वह किताब सरकार से मंजूर हो चुकी है। उस किताब में बड़े-बड़े गोंड़ राजाओं के हस्ताक्षर हैं। उस समय से परधान का नाम उड़ गया। जो कोई अब पठारी या परधान कहेगा उसको तीन साल की सजा होगी और एक सौ रुपया जुर्माना होगा। सब एका हो गया। अब सब गोंड़ हो गये। (पुस्तक की एक प्रति मण्डला के नगरपालिका वाचनालय में है। नाम है—'गोंड़ी धर्म विचार' मुद्रक-रेवा विलास प्रेस जबलपुर, प्रकाशक-ठाकुर देवी सिंह मालगुजार, बरगाँव, पोस्ट बीजाडाँडी, तहसील

---

(१) देखिये परिशिष्ट में रामगढ़

(२) देखिये परिशिष्ट में भीमडोंगरी

निवास जिला मण्डला। पुस्तक में अन्य पुस्तकों का विज्ञापन है जैसे सनातन गोंड़ी धर्म की पुस्तकें—गोंड़ी धर्म पुराण, गोंड़ी, लवेद, गोंड़ी भजन माला, बड़ा देव दर्शन)

(३) गोंड़ राजा बुरहान शाह[3] का लड़का आटमशाह नागपूर का राजा था। उसने सावजानखाँ का सिर, लकड़ी के खाँड़ा से काटा था। एक भैंसा का सिर भी लकड़ी के खाँड़ा से काटा था। बुरहानशाह ने सावजान खाँ की बेगम को अपने रनिवास में रख लिया। रानी बना लिया। दस बारह पीढ़ी तक मुसलमान रहा। अब उसके सब वंशज गोंड़ समाज में ले लिये गये। सिवनी की सभा में शामिल किया गया[4]।

(४) लखना दौन तहसील में रीटा भज़िया—जो गुधना गुवारी, गोसाईखमरिया के पास है—के पास प्रेमपुर भीलवाडा में एक गरीब गोंड़ राजा था। राजा मर चुका था। राजा का पिता जीवित था। उस राज्य पर अत्याचार करके दिल्ली दरबार वालों ने राज कन्या से जबरदस्ती विवाह कर लिया और डोला ले जाने लगे। ऐसा दिखा कि राज्यकन्या दिल्ली जाने को तैयार है। डोला जब दो तीन मील जा चुका तो राज कन्या ने कहा 'मुझे लौट कर तो आना नहीं है अपने पिता की समाधि के दर्शन कर लूँ।' डोला रुका वह डोला से उतरी। दर्शन करने लगी। वहीं उसने कटार मारकर आत्म हत्या कर ली। वह अपना धर्म नहीं

३—बुरहान शाह ऐतिहासिक नाम है। सन् १७३८ में चाँद सुलतान की मृत्यु के बाद उनकी विधवा रानी राम रतन कुँअरि ने अपने पुत्र बुरहान शाह की सहायता के लिये राघो जी भोंसला से मदद माँगी। राघो जी आये। युद्ध हुआ। दुश्मन हारा। राघो जी ने बुरहान शाह को गद्दी दिला दी। चार वर्ष बाद बुरहान शाह की विरोध भाई अकबर शाह से हो गया। फिर राघो जी भोंसला की मदद की आवश्यकता हुई। भोंसले ने अकबर शाह को पाटन साँवगी में हरा कर देव गढ़ का राज्य अपने राज्य में मिला लिया।

४—गोंड़ों के एक राजवंश ने इस स्पष्ट शर्त पर इस लाभ को स्वीकार किया था कि—'भात में शामिल पर साथ में नहीं' अर्थात् खाना-पीना होगा, पर शादी ब्याह नहीं। मुसलमान हो चुकने पर भी इस वंश के लड़का-लड़कियों के सम्बन्ध गोंड़ों में होते थे। इस राजवंश को और उनके सब सम्बन्धियों को गोंड़ जाति में वापिस ले लिया गया है।

छोड़ना चाहती थी। दिल्ली नहीं जाना चाहती थी। राजकन्या की माता और आजी तालाब में डूब कर मर गईं। उस स्थान में हजारों मूर्तियाँ हैं। सब लोग पत्थर हो गये थे। उन्हीं की मूर्तियाँ हैं।

(५) नर्रई के युद्ध में रानी दुर्गावती की विजय हो चुकी थी। सुलह हो चुकी थी। युद्ध बन्द हो चुका था। गोंड़ सैनिक विजय का आनन्द मना रहे थे। तब आसफ खाँ ने विश्वासघात किया। रात को गोंड़ों के खेमे में तोप से गोले चलाये। तब इस प्रकार विश्वासघात[5] से रानी की हार हुई।

(६) रानी दुर्गावती के नाती निजाम शाह ने[5] घोषणा की कि जो कोई भी आसफ खाँ[6] का सिर लावेगा उसको खूब-खूब इनाम और एक खूँट राज्य दिया जावेगा। खलौटी के एक महाबली नामक योद्धा ने शर्त स्वीकार की। महाबली ने मण्डला में जशन रचा और आसफ खाँ को निमन्त्रित किया। जशन में जब गाना बजाना हो रहा था, महाबली ने फरेब से आसफ खाँ का सिर काट लिया। इनाम में महाबली को वर्धा का राज्य दिया गया। आसफ खाँ का सिर मण्डला के किले में गड़ा है। और धड़ मण्डला के मड़ई भाटा में गड़ा है।

(७) जब हिरदैशाह गर्भ में थे तब गर्भस्थ बालक के भाग्य से पिता प्रेमशाह को रत्नों का दफीना मिला। नासमझी से प्रेमशाह ने सब रत्न पाँच रुपया और पाँच कुरे कोदों के बदले में डून्ड़ा कलार के हाथ बेच दिया। डून्ड़ा कलार ने अपनी अटारी में अपने पलङ्ग में रत्न लगाये। रात को रत्नों की चमक से दिल्ली के बादशाह का ध्यान आकर्षित हुआ। बादशाह ने डून्ड़ा कलार से पूछा। उसने प्रेमशाह से रत्न की खरीद का हाल बतला दिया। प्रेमशाह ने भी मन्जूर किया कि उसने रत्नों का दफीना पाया है और डून्ड़ा कलार को बेचा है। बादशाह प्रेमशाह पर प्रसन्न हो गये। मण्डला के राज्य का पट्टा देकर बारह साल की टाकोली माफ कर दी।

समय पाकर हिरदैशाह राजा हुए। उनके मन्त्री परधान वंश के

---

(५) नर्रई का युद्ध १५६४ में हुआ। निजाम शाह का शासन काल १७४६-१७७६ था। समकालीन नहीं थे।

(६) आसफ खाँ ने मण्डला जिले की भूमि में कदम नहीं रखा। नर्रई से वापिस चला गया।

भागवत राय थे। रामनगर में भागवत राय का महल है। राय भगत का महल कहलाता है। हिरदे शाह की कीर्ति सुनकर दिल्ली के बादशाह ने वायदा के खिलाफ बारह साल की टाकोली वसूल करने के लिये आदमी भेजे। हिरदेशाह ने शर्त के अनुसार टाकोली नहीं दी और शाही आदमियों की दुर्गति की। उन्होंने दिल्ली में शिकायत की। दिल्ली दरबार ने हमला किया। वे लोग हिरदेशाह को गिरफ्तार करके दिल्ली ले गये। उनको छुड़ाने के लिये मंत्री भागवत राय दिल्ली गये।

भागवत राय ने दिल्ली में गाना-बजाना शुरू किया। भागवत राय का संगीत सुन कर और हिरदे शाह का रूप देख कर बादशाह की जवान लड़की 'चिमनी' मुग्ध हो गई। वह बाईस वर्ष की हो जाने पर भी अविवाहित थी। उसने हिरदेशाह को अपने महल में बुलवाया। रोज सहवास होने लगा। गर्भ रह गया। पुत्र हुआ। तब बादशाह को पता चला। शहजादी ने अपना अपराध स्वीकार करते हुए स्वयंबर कर चुकना बतलाया। शहजादी हिरदे शाह को मिल गई। दायजा भी बहुत मिला। हिरदेशाह उसे राम नगर ले आये। उसके लिये अलग-बेगम महल बनवा दिया, जो चौगान के रास्ते में है। वह चिमनी नामक शहजादी रामनगर में ही मरी। राजा हिरदेशाह की और सन्तान अपनी बिरादरी की ब्याहता रानी से हुई। जिसे राज्य मिला। राजा हिरदेशाह अपनी बिरादरी में रहे आये। हिरदेशाह 'चिमनी' के हाथ का खाते नहीं थे।

(३) वर्ग भेद, समाज-व्यवस्था

गोंड़ सब एक हैं। सब में बराबरी है। ऊँच-नीच का भेद नहीं है। बराबरी रहते हुए भी थोड़ा-सा वर्ग-भेद है। ऊँचे और नीचे में जमीन आसमान का नहीं, १९ और २० का या २० और २१ का भेद जैसा भेद है। समझने के लिये चार वर्ग होते हैं। राजगोंड़, खटुलहा, धुर या रावनबंसी और पठारी। राजगोंड़ धनवान शासक और भूमि के स्वामी हैं। गरीब हो जाने पर भी अपना राजगोंड़ पद नहीं छोड़ना चाहते। रहन-सहन और आचरण ऊँचे दरजे का होता है। जनेऊ पहनते हैं। व्रत करते हैं।

खटुलहा हर बात में राजगोंड़ सरीखे हैं। रहन-सहन, आचरण सब बिल्कुल वही। राज गोंड़ों की दृष्टि में थोड़े हीन माने जाते हैं। हीन

और ऊँचे का भेद नगण्य सरीखा है। खटोला गाँव पर से खटुलहा कहलाते हैं।

धुर्र गोंड़ को रावनवंसी भी कहते हैं। पहिले के दो भेद, धनवान राजा और भूमि के मालिक हैं, तो यह तीसरा भेद धुर्र गोंड़ गरीब और प्रजा का है। जिस प्रकार एक जाति में धनवान और गरीब सभी उसी जाति के माने जाते हैं। राजा और प्रजा माने जाते हैं उसी प्रकार ये भेद हैं। इस नाम में रावनवंशी शब्द ध्यान देने योग्य है। वे लोग अपने को 'रावनवंशी' गौरव और अभिमान से नहीं दीनता और संकोच से कहते हैं। इससे उस रावनवंशी शब्द में और 'विश्वास जमता है। इस शब्द से रामायणकालीन प्राचीनता स्थिर होती है। लंकाधिपति रावण अत्यन्त पुरुषार्थी था। वे जन्म से ब्राह्मण, कर्म से क्षत्रिय और मत से शैव थे। गोंड़ जाति भी जन्म से ब्राह्मण, कर्म से क्षत्रिय और मत से शैव है। गोंड़ के उपास्य देव बड़ा देव हैं। बड़ा देव महादेव शिव का पर्यायवाची है। गोंड़ कन्याओं के माथे में त्रिसूल या अर्धचन्द्र के गुदना गुदे रहते हैं।

जो लोग लंकाधिपति रावण को तिरस्कार की दृष्टि से देखते हैं वे रावण के पराक्रम की तरफ ध्यान नहीं देते। रावण ने सहस्रबाहु से और राम से युद्ध किया था। वे लोग वैष्णव मत के प्रचार के कारण रावण का अकारण तिस्कार करते हैं। समझदार वैष्णव लोग रावण को भी अवतार मानते हैं। कई राजगोंड़ भी वैष्णव मत मानते हैं। और कट्टर परहेजगार होते हैं।

गोंड़ जाति के एक विशाल अंश का या समूची गोंड़ जाति का रावण के नाम से सम्बन्ध मिलना, बहुत महत्व की बात है। गोंड़ों का एक गोत्र धुरवे कहलाता है जो पौराणिक ध्रुवकुमार (तारा) के नाम से है। धुरवा एक नृत्य का भी नाम है। गोंड़ों के कई गोत्र पौराणिक ऋषियों के नाम पर से हैं। अध्ययन का एक अलग क्षेत्र है।

गोंड़ लोग सदैव प्रसन्न रहते हैं। और बैगा लोग अपने को ब्राह्मण से भी ऊँचा (दैवज्ञ-दिवार) समझते हैं। दोनों इतने सीधे होते हैं कि नासमझ समझे जाते हैं। उनके धनु भूमि तथा धर्म का हरण हो रहा है। उनका सीधापन उनको बहुत मँहगा पड़ रहा है। जंगलों में स्वाभाविक रूप से राजा की तरह निर्भय और निर्द्वंद दिखते हैं। शहर में आने से गोंड़ और बैगा का दबा हुआ, गिरा हुआ, चिन्ता युक्त

रूप दिखता है। वैसे ही जैसे कि जंगल का शेर और सर्कस का शेर। गोंड़ जाति की *समाज-व्यवस्था* अति सुगठित है। उचित श्रम-विभाजन है। उनके राज्य शासन, धार्मिक कृत्य, गृहस्थ जीवन, सब को समझने के लिए, जातियों के तीन भेद करना सुविधाजनक होगा (१) गोंड़ों की आश्रित जातियाँ, (२) अन्य आदिवासी जातियाँ और (३) गैर आदिवासी जातियाँ। इनमें से पहिले कुछ आश्रित जातियों का वर्णन दिया जा रहा है।

सब से मुख्य *आश्रित जाति पठारी* है। पठारी को अलग जाति मानने से अधिक अच्छा होगा कि गोंड़ों की एक उपजाति ही माना जावे। पठारी जाति के कई उपनाम हैं। परधान, प्रधान, नेगी, राज-नेगी, मुकासी, दसौंधी, देवपुजारी आदि। इनके गोत्र वे ही हैं जो गोंड़ों के हैं। गोंड़ का छोटा भाई पठारी। गोंड़ राजा तो पठारी प्रधान (मंत्री) पठारी का काम राजस्व वसूल करना था। अपने कमिशन के रूप में दशमांश पाने से दसौंधी कहलाते थे। दसौंधी शब्द का अर्थ एक विद्वान ने 'दस दरवाजा भटकने वाला' लिखा है। गलत लिखा है। आजकल भी कलकत्ता के शेयर बाजार में दसौंधी शब्द आमदनी के दशमांश के अधिकारी के लिये प्रयुक्त होता है। पठारी का काम गोंड़ों का कीर्ति गान करना भी है। गोंड़ राजा के चारण हैं। पठारी गोंड़ों से दान लेते हैं। मृतक कर्म कराते हैं। महापात्र भी हैं। जब कोई पठारी गोंड़ों के घर में वीरगाथाओं का गान करने जाता है, तो अपना "बाना" "किंगरी" अवश्य साथ में रखता है। किंगरी शक्ल सूरत में सारंगी का आदि रूप या विकृत रूप है। किंगरी शब्द का प्रयोग मलिक मुहम्मद जायसी ने किया है। 'राज तजा राजा भा जोगी। औ किंगरी कर गहेऊ वियोगी।' दसौंधी शब्द का अर्थ दस दरवाजा भटकने वाला नहीं होता। आजकल दसौंधी शब्द कलकत्ता के शेयर बाजार में आमदनी के दशमांश के अधिकारी के लिये प्रयुक्त होता है। *ओझा* उपजाति जनकल्याण के लिए झाड़-फूँक जादू टोना में विशेषज्ञ मानी जाती है। पश्चमी विद्वानों ने झाड़-फूँक को ब्लैक मैजिक या विच क्रैफ्ट कहकर भूल की है। मैथिल, गुजराती और सरयूपारीण ब्राह्मणों में ओझा आस्पद होता है। गोंड़ों के ओझा इनसे बिल्कुल भिन्न हैं। *भौना* भवन-निर्माण करने वाली उप जाति है। हिरदेनगर के आस-पास अधिक है। *ढुलिया* उपजाति नहीं है। नीचे हैं। पर अस्पपृश्य नहीं। ढोल बजाते हैं। बाँस की टोकनी आदि

बनाते हैं। इनका एक भेद नगरची है। *भिम्मा और कोलाभूता* संगीत और नृत्य की आश्रित जातियाँ हैं। भिम्मा अपनी स्त्रियों को सार्वजानिक स्थानों में नचाते हैं, खुद किंगरी सरीखा एक बाजा बजाते हैं, उस बाजे में तूसा लगा रहता है और भीख माँगते हैं। कोलभूता जाति न तो कोल हैं और न भूत शब्द से कोई सम्बन्ध है। जो काम मराठी भाषा वाले क्षेत्र में कलावना का होता है, वही गाने बजाने का काम कोलभूता करते हैं। संभव है मराठी शब्द का अपभ्रंश हो। कोलभूता जाति में वेश्यावृत्ति भी होती है। तब नर्तकियों के नाम छोटी जान, उम्दा जान आदि होते हैं। कोई कोलभूता, मुसलमानी ढंग से दाढ़ी रखते हैं।

गोंड़ी अहीर और गोंड़ी लुहार ये दोनों जातियाँ गोंड़ों की उप जातियाँ ही हैं। पूरी तौर से गोंड़ ही हैं। यह दूसरी बात है कि उत्तर भारत में भी अहीर और लुहार नाम की जातियाँ होती हैं। उत्तर भारत के अहीर और लुहार से गोंड़ की उपजाति वाले अहीर और लुहार से कोई सम्बन्ध नहीं। विलायती विद्वानों ने और जन-गणना के सरकारी अधिकारियों ने इस महीन भेद को नहीं समझा। सब अहीर और सब लुहार एक नहीं हैं। अब जनगणना में जाति की कोई बात नहीं है। गोड़ी अहीर गाय चराने के लिये केवल 'भैंस पांडर' की लकुटी का प्रयोग करते हैं। दूसरी लकड़ी का प्रयोग नहीं करते। उनका विश्वास है कि कृष्ण भगवान् ने भैंसपांडर की लकड़ी से गाय चराया था। यहाँ तक गोंड़ों की आश्रित जातियों का वर्णन हुआ।

अब उन अन्य आदिवासी जातियों का वर्णन है जो जातियाँ गोंड़ों के साथ रहती हैं। *पनका* स्वतन्त्र जाति है। गोंड़ों के मुकाबिले में हीन माने जाते थे। महात्मा कबीर दास ने कबीर चबूतरा में बहुत वर्षों तक रह कर महरा और पनका जाति को कबीर पन्थ की दीक्षा दी। बहुत उन्नत तरीके से समाज-सुधार किया। पनका और महरा जातियों में कबीर मत को मानने वाले कबीरहा या कबीरपन्थी कहलाते हैं। कबीर पन्थ को न मानने वाले सकटहा, सकतहा (शाक्त) कहलाते हैं। सकतहा महरा और पनका में खाने-पीने की आजादी है। मण्डला जिले के महरा और महाराष्ट्र प्रान्त महार में बहुत अन्तर है। महार अस्पृश्य थे। मण्डला जिला के महरा अस्पृश्य नहीं थे। गोंड़वाना में

अस्पृश्यता का कलंक नहीं था जो पनका और महरा कबीरपन्थ की दीक्षा ले लेते हैं, वे मांस-मदिरा त्याग देते हैं। बकरी को छूते भी नहीं, कोई-कोई बकरी का नाम भी नहीं लेते। उच्चारण तक से परहेज करते हैं। ध्यान रखने की बात है, कि गोंड़ों में कबीरपन्थी और सकतहा का भेद नहीं है।

अन्य आदिवासी जातियों में *अगरिया* का स्थान महत्वपूर्ण है। शब्दार्थ या उत्पत्ति में चाहे जैसी कल्पना की जावे, चाहे आग से, चाहे अग्र से या चाहे जिस शब्द से। अगरिया जाति ने प्रस्तर युग के बाद, सब से पहिले लौह युग आरम्भ किया। गृह उद्योग में लोहा बनाते हैं। सब वैज्ञानिक विधियाँ पूरी होती हैं कोई भी उद्योगपति देख कर आश्चर्य में पड़ जायगा कि वैज्ञानिक विधियाँ केवल आधुनिक लोगों को ज्ञात नहीं हैं। पहिले भी ज्ञात थीं। बैगा और अगरिया दोनों जातियाँ गोंड़ों से प्राचीन हैं। दो में से कौन प्राचीन है कहना कठिन है। अनादिकाल में जब भूमि जोतने का प्रश्न उठा तब बराह ने कहा कि मेरी खीस से भूमि जोतो। बात नहीं मानी गई। भैंसा ने सहायता का वचन इस शर्त पर दिया कि अगरिया हलकाफन बना दे। बात मान ली गई। अगरिया आज तक उसी शर्त की तामीली कर रही है। *धोबा* जाति के सम्बन्ध में कुछ भी प्रकाश में नहीं आया है। एक जन गणना में धोबी समझ लिये गये थे। देखने से पूरी तौर से उत्तर भारत की जाति जँचती है। गोंड़ों से पहिले के हैं। गोंड़ों सरीखे नाटे और सांवले नहीं ऊँचे और गोरे होते हैं। रहन-सहन में साफ-सुथरे होते हैं। साफ मकान और स्वच्छ चौड़ी सड़कों वाले गांव होते हैं। गाय को पूज्य मानते हैं। गाय को जोतने पर जाति से बाद हो जानते हैं। एक धोबा दस गांव का मालगुजार था। मवई राजस्व विभाग में अधिक हैं। *भरिया और रजभर*—भरिया मजदूर जाति है, समनापुर क्षेत्र में बहुत हैं। रजभर कृषक जाति है मण्डला के आस-पास बहुत हैं। आर्यों से पहिले मध्य प्रदेश में 'भर' नामक जाति थी। न जाने उसी जाति का रूप है या स्वतन्त्र जाति है। रजभर जाति की हालत अच्छी है अपने को रघुवंशी कहते हैं। इन जातियों का अध्ययन लाभप्रद होगा। कोल जाति आर्यों से पहिले की है बहुत परिश्रमी होते हैं। चाय पत्ती वाले बहुत ले जाते है। जहाँ राठौर हैं वहां कोल अवश्य हैं।

अन्य आदिवासी जातियों में सब से प्रमुख जाति बैगा है। बैगा जाति गोंड़ों से भी पहिले की है। बैगा गोंड़ों के लिये प्राकृतिक तत्वों के पुरोहित होते हैं। बैगा जाति को 'दिवार' भी कहते हैं। दिवार का अर्थ दैवज्ञ माना जाता है। बैगा जाति तो होती ही है। कुछ दूसरी जाति के व्यक्ति बैगा का पेशा करने के कारण अपने को बैगा कहने लगते हैं। मकान कहाँ बनाना, कब बनाना, गाँव कहाँ बसाना, फसल कब बोना, किसी कुपित दैवी शक्ति को किस प्रकार शान्त करना आदि प्रश्नों पर बैगा दैवज्ञ की सलाह ली जाती है और मानी जाती है। बैगा को शुल्क दिया जाता है। बैगा जड़ी बूटियों का वैद्य भी होता है। बैगा जाति के कीर्ति चन्द्र में चटपटे और गन्दे साहित्य के प्रचार का ग्रहण लग चुका है। अति आवश्यक है बैगा जाति का वास्तविक और निष्पक्ष परिचय फिर से लिखा जाय। कोई सहानुभूतिपूर्ण और पक्षपात रहित विशेषज्ञ लिखेगा। बैगा जाति के अध्ययन में बहुत अन्याय हुआ है। अत्यन्त आवश्यक है कि बैगा जाति के सम्बन्ध में वास्तविक बातों के अध्ययन और प्रसार से गलतफहमियों का निराकरण किया जाय। कुछ तथ्य इस प्रकार हैं।

बैगा जाति मण्डला जिला या मैकल पर्वत तक के संकुचित दायरे में नहीं है। मध्य प्रदेश से बाहर भी बैगा जाति बिहार और उड़ीसा के भागों में है तथा उत्तर प्रदेश के मिरजापुर जिला में भी है। बैगा (और गोंड़ भी) हिन्दू हैं। सत्तर अस्सी वर्षों से अँग्रेजों का प्रचार हो रहा है कि बैगा और गोंड़ अलग जमात (ट्राइब) हैं, हिन्दू नहीं हैं। ऐसा प्रचार स्वार्थवश हुआ। भ्रमोत्पादन के ध्येय से हुआ। आधुनिक भारतीय भी इसी भ्रम में हैं। इस भ्रम को निकाल दिया जाना चाहिये। बैगा जाति के हिन्दू होने के कुछ प्रमाण इस प्रकार हैं। मण्डला के किले में एक विष्णु-मूर्ति है। जिसमें विष्णु गोंड़ और बैगा की तरह पीताम्बर के स्थान में तीन अंगुल चौड़ी लगोटी लगाये हैं और अन्य देवी के कानों में गोंड़ या बैगा तरुणियों की तरह तरकी पहिनाई गई है। ये मूर्तियाँ चार-पाँच सौ वर्षों से अधिक प्राचीन हैं अर्थात् भ्रमोत्पादक प्रचार से प्राचीन है और भ्रमोत्पादक प्रचार का खासा उत्तर है। गोंड़ और बैगा विष्णु को मानते थे। और उन्होंने अपने हिसाब से विष्णु के वेश-भूषा की तनाई अतएव गोंड़ और बैगा दोनों हिन्दू थे, आज भी हैं। प्रचार हिन्दुत्व के विरुद्ध है।

किसी भी जाति की धर्म में आस्था जानने के लिये उस जाति की शादी ब्याह रीति रिवाज से सहायता मिलती है। बैगा अपने को दिवार (दैवज्ञ) कहते हैं, स्वयं पुरोहित हैं। उन्हें ब्राह्मण पुरोहित की कोई आवश्यकता नहीं। ब्राह्मण तो बाद में आर्य सभ्यता के साथ आये। बैगा पहिले से हैं। बैगा जाति में गोत्र प्रवर शाखा के स्थान में अपने गढ़ों के ऊपर से गोत्र होते हैं। बैगा जाति में विवाह जाति के अन्दर और गोत्र या गढ़ के बाहर होते हैं। गोत्र और गढ़ों का बचाव करते हैं। केवल यह सिद्धान्त उनको हिन्दू सिद्ध करने के लिये यथेष्ट है : विवाह की बात-चीत कन्या पक्ष से आरम्भ होती है। वर की बारात हाथी में जाती है। हाथी पहिले के जमाने में चाहे सुप्राप्य रहे हों। आजकल दो खटियों को जोड़ कर उन पर काला कम्बल डाल कर और एक कृत्रिम सूँड़ बना कर हाथी की कल्पना कर लेते हैं। वह हाथी कन्या पक्ष वालों को रौंदता है। अर्थात् कुछ नेग के नाम पर लेन-देन हो जाता है। विवाह का मण्डप बनता है। स्तम्भ गाड़ा जाता है स्तम्भ के आस-पास सात फेरे होते हैं। यही इनकी सप्तपदी है। वर और कन्या के वस्त्रों में गाँठ जोड़ी जाती है। सब उपस्थित रिश्तेदार लोग अक्षत की वर्षा करते हैं।

मृत्यु होने पर नौ दिनों का मृत्यु शोक मनाते हैं। घर में चूल्हा नहीं जलता। रिश्तेदारों के यहाँ से पका पकाया भोजन आता है। बाल मुड़वाते हैं।

वैदिक यज्ञों में जिस प्रकार दो लकड़ियों को रगड़ कर अग्नि प्रज्वलित करने की चाल थी उसी प्रकार अग्नि प्रज्वलित करते हैं। पैरों में पहिनने की लकड़ी की खड़ाऊँ उसी प्रकार होती है जैसी देश में कहीं भी।

ऐसे ही प्रमाणों पर से निष्कर्ष निकलता है कि बैगा और गोंड़ पूर्ण रूप में हिन्दू हैं। उनको हिन्दुओं से विरुद्ध अलग जमात कहना गलत है। बेवर काश्त को अंग्रेज शासकगण, जंगली और असभ्य प्रथा समझते थे। अंग्रेज सरकार ने थोड़े से क्षेत्र-बैगा चक में बेवर काश्त की इजाजत का बहुत अधिक प्रचार किया। इस प्रचार के हल्ला में यह बात दब गई कि बैगा जाति आजादी से नेटिव राजाओं की कवर्धा रियासत में और पडरिया जमीन्दारी में बहुत बड़े क्षेत्र में बेवर काश्त करते हैं।

अंग्रेजों को अपनी बैगा चक वाली इजाजत का एहसान बताना था सो बताया। कवर्धा और पडरिया जमीन्दारी के जंगलों के नष्ट होने से अंग्रेजों को कोई गम नहीं था। अब स्थिति बदल गई। न अंग्रेजी राज्य है न नेटिव राज्य हैं। भारत में सब एक हो गये। समूची बैगा जाति के विस्तृत क्षेत्र को एक-सा मानना है। प्राचीन बेवर प्रथा पर पुनर्विचार आवश्यक है। बैगा जाति केवल मण्डला जिला में हो ऐसी बात नहीं है। कवर्धा के पास चिलफ़ी में वन-विभाग ने सागौन के घने जंगल लगवाये हैं। देखने से आनन्द होता है। इस राष्ट्रीय उद्योग में बैगा जाति का प्रबल सहयोग है। जिन्हें जंगलों के नाश करने वाले कहा जाता था उन्हीं बैगा लोगों ने वन का निर्माण किया है। परिशिष्ट में देखिये बाघ मार।

गोंड़ों की समाज व्यवस्था का तीसरा भेद उन जातियों का है जो आदिवासी नहीं होते हुए भी गोंड़ों की समाज व्यवस्था के आवश्यक अंग बन चुके थे। जैसे *वाजपेयी* सरयूपारीण हैं। सर्वे पाठक के वंशज हैं। सरयूपारीणों में वाजपेयी आस्पद और कहीं नहीं है। महाराजा संग्रामसाहि के शासन काल में कालीकर पाठक के पुत्र माधव पाठक ने वाजपेय यज्ञ किया। तब से सर्वे पाठक का वंश वाजपेयी कहलाने लगा। एक और वाजपेयी वंश की उपाधि हिरदेसाहि के समय में जुझौलिया जयगोविन्द को दी गई थी। राजा का यज्ञ अश्वमेध कहलाता है, ब्राह्मण का वाजपेय। वाजपेयी वंश में एक कवि वीर वाजपेयी थे जिन्होंने शुद्ध व्रजभाषा में 'प्रेमदीपिका' नामक काव्य ग्रन्थ लिखा है। छप चुका है। विश्वभारती के हिन्दी अध्यापक श्री मोहन लाल वाजपेयी इसी वंश के हैं। कुछ दिन रोम में अध्यापन कार्य कर चुके हैं। सिनेमा क्षेत्र में भी वे प्रसिद्ध हैं। दिवारा के *ज्योतिषी* की उपाधि भी गोंड़ राजाओं की दी उपाधि है। वे लोग पिंडी के तिवारी हैं। लोक कथा है कि रानी दुर्गावती के समय में मन्त्री अधार सिंह *कायस्थ* ने मुगल दरबार में सोने का बना करेला पेश किया था। उनके नाम का अधार-ताल जबलपुर के पास है। युद्ध क्षेत्र में रानी ने अधारसिंह को आज्ञा दी थी कि मेरा कत्ल कर दो। अधारसिंह ने रानी की आज्ञा नहीं मानी, मान भी कैसे सकते थे। अधारसिंह ने युद्ध में वीरगति प्राप्त की। चौरागढ़ के जौहर के अधिकारी कोई "भोज" कायस्थ थे। निजामशाह ने अलमोड़ा से नील कण्ठ कायस्थ वैद्य को बुलवाया। अलमोड़ा का अर्थ

वह स्थान माना जाता है, जहाँ से हनुमान जी लक्ष्मण के लिये संजीवनी बूटी लाये थे। इस वैद्य वंश का निवास महाराज पुर में है। गोंड़ राजाओं की सेना में *लोधी* भी थे। कभी आश्रित कभी विरोधी। कभी कृपा कभी कोप। लोधी राजा का रामगढ़ राज्य १८५७ में अंग्रेजी राज्य में मिलाया गया। गोंड़ राजाओं के वैद्य मुड़हा थे। मण्डला में मुड़हो का मुहल्ला वैद्य घाट कहलाता है। मुड़हा केवट की उपजाति है। मुड़हा वैद्य लोग अभ्रक और लौह आदि की भस्में, अच्छी और जल्दी बनाने की अनोखी विधि जानते थे। अब मजदूरी करते हैं।

गोंड़ जाति की वास्तविक जनसंख्या जानने के लिये जनगणना में, राजगोंड़, गौंड़ पठारी, गौंड़ी अहीर, गोंड़ी लुहार और भौना, सबको शामिल करना उचित होगा। नहीं तो आंकड़ों का रूप सही नहीं होगा।

(४) बोलचाल, रहन-सहन और मद्यपान

गोंड़ लोग हिन्दी बोलते हैं। बैगा भी हिन्दी बोलते हैं। क्षेत्र के अनुसार हिन्दी में कुछ रूपान्तर है ही। कहीं बुन्देल खण्डी, कहीं छत्तीसगढ़ी और कहीं मराठी का पुट मिल जाता है। है सब हिन्दी ही हिन्दी के सिवाय, आपसी बात चीत में कहीं-कहीं गोंड़ लोग अपने में एक अलग प्रकार की बोली बोलते हैं, जिसको "गोंड़ी फारसी" या "गोंड़ी पारसी" कहते हैं। साधारण व्यक्ति नहीं समझ पाता इससे फारसी या पारसी कहते हैं। उससे फारस या पारसी या परशिया का अर्थ नहीं लगा लेना है। गोंड़ बोली की कोई लिपि नहीं है। बुढ़नेर नदी के आस-पास रायगढ़, बंभनी क्षेत्र और चौरासी क्षेत्र में गोंड़ी बोली प्रचलित है। छत्तीसगढ़ और नागपुर तरफ भी गोंड़ी बोली प्रचलित है। गोंड़ी बोली सर्वत्र एक-सी है। स्थान भेद से परिवर्तन नहीं है। जैसे हिन्दी में बुन्देलखण्डी, छत्तीस गढ़ी आदि का स्थान भेद स्पष्ट है वैसा गोंड़ी बोली में नहीं है। गोंड़ी बोली में गिनती केवल सात तक है। आठ नौ दस के लिये गोंड़ी बोली में कोई शब्द नहीं। इनके लिए हिन्दी शब्द ही प्रयुक्त होते हैं। दो, तीन, चार, पाँच, छः, सात को क्रमशः रण्ड, मूँद, लालू, सइयो, सारो, ऐरो कहते हैं। गोंड़ी-अंग्रेजी का एक शब्द कोष छपा है। ईसाइयों की धर्म पुस्तकें तथा ग्राम सुधार की कुछ पुस्तिकाएँ छप चुकी हैं। सब में नागरी लिपि में ही, गोंड़ी बोली लिखी है। हर हालत में गोंड़ी बोली बहुत प्राचीन है, भाषाशास्त्र की दृष्टि से गोंड़ी

बोली का अध्ययन बहुत लाभप्रद होगा। बोलने वालों के विशाल क्षेत्र की सुविधा भी है।

गोंड़ी (फ़ारसी) में तेलुगु का बहुत प्रभाव है। दक्षिण के लोग गोंड़ी बोली में से कुछ-कुछ समझ लेते हैं। हिन्दी भाषी मुँह ताकते रह जाते हैं। गोंड़ी और तेलुगु का तुलनात्मक अध्ययन बिलकुल नई चीज होगी। भाषाविज्ञान के विद्यार्थियों के लिये सुगमता से अच्छा क्षेत्र मिल सकता है। पी० एच० डी० सरल है।

गोंड़ों के साथ बोल-चाल में बंगाली का प्रभाव कई बार झलकता है। रहन-सहन में भी बंगाल का प्रभाव झलकता है। बंगालियों की तरह गोंड़ों में भी पितामह और पौत्री के बीच में हँसी-मसखरी उचित मानी जाती है। बंगालियों की तरह किसी स्त्री से तमाखू या बीड़ी माँगने का और ही अर्थ माना जाता है। पति की तमाखू रखने के लिये पत्नी ही कोषाध्यक्ष मानी जाती है। बंगाली के एक लोकगीत का भाव है "एक दिन, श्री हरि हाथ में हुक्का लेकर राधा के कुञ्ज में पोंहचे; और राधा से बोले कि थोड़ी सी तमाखू देओ।"

बंगाली का प्रभाव कई शब्दों में झलकता है। जैसे पत्नी की छोटी बहिन को साली न कहकर गोंड़ लोग "सारिन" कहते हैं। अर्थात् स्त्री-लिंग शब्द को दुबारा स्त्रीलिंग बनाते हैं। उसी प्रकार जैसे पढ़े-लिखे लोग "कागजातों" शब्द का प्रयोग करते हैं। बहुवचन को एक बार और बहुवचन बनाते हैं। गोंड़ लोग दारू पीने को "दारू खाना" कहते हैं। मुहल्ला को "टोला" दो को "दोठो" (बंगाली दुइटा) कहते हैं। "अन्दर" शब्द जनानखाने के अर्थ में होता है। पूर्वी बंगाल में जनान-खाना को "अन्दर" ही कहते हैं। गोंड़ों के प्रयोग में "अन्दर के भित्तर" का अर्थ "जनान खाना के अन्दर" होता है।। बंगाल में जिस वाक्य को "आमि करितें पारिबेन ना" कहेंगे उसी को भोजपुरी में "न सपरही" कहेंगे, उसे ही गोंड़ लोग कहेंगे,—"में न सकहौं।"

बंगाली का प्रभाव "रमोला" शब्द में भी स्पष्ट है। रमोला शब्द बंगाल में चालू स्त्री नाम है। गोंड़ों में भी रमोला नाम स्त्रियों में चालू है। गोंड़ी का एक लोकगीत है—"हनमा हनमा वो रमला, केवालारी बंगला वो" जिसका अर्थ होता है, हे रमोला, कोयला वाले साहब के बंगला में मत जाना। अर्थात् साहब दुराचारी है।

बंगाली में हिन्दी की तरह क्रिया में लिंग-भेद नहीं है। गोंड़ लोगों में

"दादी" शब्द उत्तर भारत की तरह स्त्री लिंग में नहीं प्रयुक्त होता। उत्तर भारत में दादी कहते हैं पिता की माता को। गोंड़ लोगों में दादी शब्द पुरुषों के लिए आदर सूचक शब्द है। उसी प्रकार जिस तरह दादू शब्द प्रयुक्त होता है ज्येष्ठ पुत्र के लिये या पिता के बड़े भाई के लिये।

संस्कृत का प्रभाव भी कुछ शब्दों में मिलता है। मछली को मीन कहते हैं। शराब को मन्द मन्ध (मधु) कहते हैं। सिर में रखे जाने वाले लकड़ी के गट्ठर को मौरी (मौलि) कहते हैं। एक स्थान में संस्कृत के शब्द की बड़ी दुर्गति भी दिखी। सुनने में आया 'मुखार-विन्द में आग लग जाये।' स्पष्ट है कि इस प्रयोग में केवल मुँह का अर्थ है, उपमेय निरर्थक है।

चाय के बगीचों में आने जाने के कारण असम प्रान्त के डिंगुआ और मैकी शब्द भी प्रयोग में आते हैं। डिंगुआ अकेले पुरुष को कहते हैं, और मैकी अकेली स्त्री को कहते हैं।

कई शब्द और मुहाविरे साधारणतया समझ में नहीं आ सकते। संसर्ग से ही समझे जा सकते हैं। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं। जैसे:—

डौका बीमारी—पुरुष के जननेन्द्रिय के रोग।

डैकिहाई—स्त्री (डैकी) बावद कोई मुकदमा।

खरीद देना—बेच देना। मैंने अपना खेत खरीद दिया। अर्थ होगा बेच दिया।

मारफत—मार पीट का मुकदमा।

घोड़ा जैसी तकदीर—भाग्यशाली। विशाल माथे वाला पुरुष।

लबेद—अलिखित परम्परा। विरुद्ध शब्द-वेद-लिखित परम्परा। जैसे, वर की बारात जाना वेद की बात है। पर कन्या की बारात वर के घर जाना लबेद की बात हुई। लगभग चालीस वर्ष पहिले मैंने गोंड़ी लबेद नामक एक पुस्तिका देखी थी। लबेद शब्द से और लबेदा गाँव (प्रसिद्ध बाँदर से चार मील दक्षिण) से कोई संबन्ध नहीं जँचता।

चढ़व्याह—विवाह का वह प्रकार जिसमें कन्या की बारात वर के घर जाती है। विवाह की यह विधि समाज की मान्यता प्राप्त कर चुकी है।

खसुआ नून—वह भुसभुसा और पुरुषत्व विहील नमक जो कण्ट्रोल के

दिनों में मिलता था। गोंड़ लोग, खड़े दाने वाला खाड़ा गोड़ा नमक पसन्द करते हैं।

अरनी बरनी—अंग्रेजी का early burning वनविभाग का शब्द।

लमैटा—लड़का या लमैटा बाप, मान लीजिये एक पुरुष के पास एक सबालक तरुणी आ गई, तो वह बालक उस पुरुष का औरस पुत्र नहीं है। फिर भी पुत्र तो है। तो उस पुत्र को उस पुरुष का लमैटा लड़का या लमैटा बेटा कहेंगे, और उस पुरुष को उस लड़के का लमैटा बाप कहेंगे। लमैटा लड़का दत्तक नहीं है।

तत्काल या अर्जेंट पत्र—जो लोक-कर्म-विभाग में मजदूरों के द्वारा भेजे जाते हैं, उन पत्रों को मजदूर बाँस की खपची में फँसा कर ले जाते हैं। उस खपची में एक लालमिर्च भी फँसा दी जाती है, ताकि हर पाने वाला और ले जाकर दूसरे मजदूर को देने वाला समझ जाता है कि पत्र का तत्काल भेजना है। और पत्र अपने गन्तव्य स्थान में उचित अफसर के पास सचमुच में तत्काल पहुँच जाता है।

समय का वर्णन घड़ी से केवल शिक्षित लोगों में होता है। अपढ़ लोग समय का अनुमान इस तरह करते हैं। 'एक बाँस दिन चढ़े' का अर्थ हुआ, करीब नौ बजे दिन। 'एक चिलम तमाखू पीते तक' का अर्थ हुआ ढाई तीन घंटे तक। एक बार चिलम पी चुकने के बाद जब दूसरी बार चिलम पीने की आवश्यकता प्रतीत हुई, उस बीच के समय का यह वर्णन हुआ। यह मुहाविरा चेन स्मोकर के हिसाब से नहीं माना जाता। स्त्रियों में समय का वर्णन 'एक पायली आटा पीसते तक' शब्दों से होता है। उतना समय जितने में आधा सेर पिसी का आटा पिस सकता है, अर्थात् करीब बीस मिनट।

दूरी के वर्णन के लिये कोस शब्द प्रसिद्ध है। उत्तर में दो मील का कोस होता है। गोंड़ों में तीन मील का कोस होता है। गोंड़ों का 'धाप' किसी स्पष्ट नाप का सूचक नहीं है। आधा मील भी हो सकता है। कहीं-कहीं तीन चार मील भी हो जाता है।

जिस प्रकार उपरोक्त शब्दावली गोंड़ों की रहन-सहन का कुछ परिचय देती है, उसी प्रकार कुछ लोकोक्तियाँ भी उनके रहन-सहन का

परिचय देती हैं। शब्दावली में बुद्धि का प्राधान्य है। थोड़े में बहुत कहने की बुद्धि प्रधान शब्द योजना लोकोक्ति में हैं। जैसे—

'पंडित पठारी पनका और पठान, तो गाव नठान"	ये चार झगड़ालू जातियाँ हैं।
'कमाये लंगोटी वाला खाये धोती वाला	गोंड़ों द्वारा अपनी दीनता का वर्णन है।
'गोंड़ बराबर दाता नहीं, बिन जूता के देता नहीं'	अत्याचारी छोटे अफसरों का अत्याचार करके रिश्वत लेने का औचित्य है।
'बरसौं राम पकै धनिया, खाय किसान मरै बनिया'	वर्षा के लिये प्रार्थना, कि धान पके। पैदा करने वाला खाये। मुनाफा कमाने वाला मुनाफा न कमा पाये।
'शहर बसै सो देवा नाम, गंवई बसै सो भूतानाम'	शहर के सुखों को तरसने वाले की आत्म निन्दा।

एक बहुप्रचिलत लोकोक्ति का इतिहास इस प्रकार है कि कोई पंडित जी किसी सम्पन्न गोंड़ गृहस्थ के घर पहुँचे। भोजन की आशा से आशीर्वाद देकर पंडित जी ने रूखा सूखा स्वागत प्राप्त किया। इतने में कोई सरकारी अधिकारी वहीं पर पहुँच गया। उसने आदत के अनुसार गाली-गलौज की। उसका चकाचक स्वागत हुआ। सरकारी अधिकारी ने मुफ्त के माल में पंडित जी को भी शामिल कर लिया। दोनों ने खूब माल चाभा। पंडित जी ने अपने इस अनुभव के मूल मन्त्र को इस लोकोक्ति में प्रगट किया :—

भली रही ये अब्बे, तब्बे, हलुआ पुड़ी लिलाई।
आशीर्वाद की ऐसी तैसी, एकौ काम न आई॥

दूसरी भाषा के शब्दों का बिगाड़ हर बोली में हो जाता है। सबसे अच्छा आनन्द अंग्रेजी के लैसन्स शब्द के बिगाड़ में है। उस लैसन्स शब्द को गोंड़ लोग 'लहसुन' कहते हैं।

दरोगा शब्द बहुत प्रचलित है। किसी भी निरीक्षक अधिकारी को दरोगा कह दिया जाता है। जैसे 'लोक कर्म' विभाग के ओवरसियर को 'सड़कहा दरोगा', पुलिस के थानेदार को 'पुलसहा दरोगा', फारेस्ट के

रेंजर को 'जंगलहा दरोगा', आबकारी के सब इन्स्पेक्टर को 'भट्टिहा दरोगा' आदि। कहीं-कहीं शाला के उपनिरीक्षक को 'स्कूलिहा दरोगा' भी कहते सुना जाता है। यह आवश्यकता नहीं है कि 'दरोगा' शब्द का अधिकारी 'गणवेष' धारी ही हो।

कुछ शब्द निरर्थक अक्षरों की पुनरुक्ति द्वारा सार्थक और ओजपूर्ण बन जाते हैं। जैसे बकर-बकर खाता है [बिना स्वाद के]। मुटुर-मुटुर निहारता है, केवल देखता है कुछ समझता नहीं। जेर-जेर रोती है। खुसुर-खुसुर बात करते हैं। (whisper talk)। जकर-बकर चमकता है या आश्चर्य से चौतरफा निगाह डाल कर भी कुछ समझ नहीं पाता। तितरा या तितरु उस पुत्र को कहते हैं जो तीन कन्याओं के बाद जन्मता है। छोटे बालकों को लड़का कहते हैं। लिंग भेद करने के लिये टूरा लरका और टूरी लरका कह देते हैं।

एक वृद्धा का इकलौता पुत्र कतल में फँस गया। फाँसी की सजा के भय से वृद्ध माता चिन्तित थी कि कहीं गोद सूनी न हो जाय। सत्र न्यायाधीश ने पुत्र को निर्दोष छोड़ दिया। वृद्धा माँ आनन्द विभोर हो गई। उसने सत्र न्यायाधीश को हृदय से आशीर्वाद दिया 'भगवान तुमको ऊँचा पद दे। तुमको पुलिस का हवलदार बना दे।' वह समझती थी कि सत्र न्यायाधीश से भी ऊँचा पद पुलिस के हवलदार का होता है।

रहन-सहन

प्रायः सभी आदिवासियों का शरीर ठिनगा होता है। नसें, तार सरीखी कड़ी होती हैं। शरीर का हर अवयव सुगठित और मजबूत होता है। रंग साँवला, चेहरा चपटा और माथे में उभार नहीं होता। धोबा जाति में शरीर ऊँचा और रंग गोरा होता है। गोंड़ कन्याओं के माथे पर अर्धचन्द्र या त्रिशूल का गुदना गुदाया जाता है। वे शैव हैं। अधिकांश स्त्रियाँ देह भर में गुदने गुदवाती हैं। विश्वास है कि मृत्यु होने पर जब शरीर छूट जाता है, गुदने साथ जाते हैं।

पुरुष लंगोटी लगाते हैं या छोटी धोती पहिनते हैं। भगवान ने गोंड़ पुरुष को बड़ी धोती दी थी। गोंड़ ने थोड़ा कपड़ा रखा। बाकी अनावश्यक कह कर भगवान को वापिस कर दिया। देह में बण्डी पहिनते हैं। थोड़ा सा कपड़ा पगड़ी का काम देता है। धनवानों के कपड़े कुछ

अच्छे और अधिक होते हैं। एक लबादा-सा ओढ़ लेते हैं। वर्षा और शीत में गले से कम्बल बाँध लेते हैं। जाड़े में यात्रा करते समय रजाई कम्बल का बोझा नहीं ढोते। रात को कोदों के पैरा की खर ही में लुक जाते हैं। रात भर जाड़ा नहीं लगता। सुबह हुई तो फिर चल निकले। एक धोती से काम चल जाता है। जाड़े में घर में भी कपड़े का सहारा कम रहता है। अग्नि और पैरा से काम चलता है। कपड़े रहते ही कम हैं। स्त्रियाँ लाल रंग की साड़ी और काले रंग की कन्चुकी पसन्द करती हैं। पतले कपड़ों की रुचि नहीं है। खादी प्रचार की आवश्यकता नहीं। स्त्रियों के आभूषण सामाजिक स्थिति के अनुसार होते हैं। पैर की अँगुलियों में चुटकी, गले में पोतों का छूटा एक या अधिक हमेल जिसमें रुपये गुथे रहते हैं। कान में तरकी या ढारें। केशकलाप में पीछे फुन्दरा और कंघी। कंघी के दाते अलग-अलग रहते हैं, तार या सूत से गुँथे जाते हैं। सिर ढाँकना आवश्यक नहीं। परदा प्रथा नहीं है।

प्रातः करीब आठ बजे पेज पीते हैं। तीसरे पहर मरँया पेज पीते हैं, रात का भोजन कुछ अच्छा होता है। पेज, कुदई, कुटकी, चावल या मकई का बनता है। जंगली पत्तों की भाजी और नमक का ही सालन होता है। रोटी रोज नहीं खाते। मांस खाने की रुचि रहती है। खाने-पीने में छूत का विचार जाति के अन्दर नहीं रहता। दूसरी जाति से परहेज मानते हैं। खाने पीने में अनाचार से जाति का बन्धन लग जाता है। जाति से बन्द हो जाते हैं।

मकान के प्रधान और केन्द्रीय हिस्से में अन्त रखने की कुठिया रहती है। बैठने के कमरे को बंगला कहते हैं। पशुशाला अलग रहती है। मकान बाँस के या मिट्टी के रहते हैं। छप्पर फूस का रहता है। पानी रखने की घिनौची मकान के बाहर डरिया के नीचे जमीन से ऊँचे स्तर पर खुल्ला में बनाई जाती है। हर मकान के इर्द-गिर्द तमाखू लगाई जाती है। मकानों को झोंपड़ी कहना अधिक उपयुक्त होगा।

रोगों में बनौषधियों से इलाज होता है। इन प्रयोगों को पढ़ कर ही इनकी नकल करके प्रयोग नहीं कर डालना है। हर औषधि के प्रयोग में अपने अनुभवी वैद्य डाक्टर से सलाह लेनी चाहिये। मैं वैद्य नहीं हूँ। प्रयोगों को सुन कर केवल सुनकर मैंने लिखे हैं। विष प्रयोगों से सदैव बचते रहना है। पाप है। जुर्म है। कुछ सुने हुए प्रयोग इस प्रकार हैं—

काटती है, जो अपनी खराब करनी से कष्ट भोगता है, वह व्यर्थ ही गरीब आदिवासियों को बदनाम करता है।

सामूहिक आमोद प्रमोदों में करमा नृत्य प्रधान है। पुरुषों का युद्ध नृत्य सैला कहलाता है। सैला में प्रहार की और रक्षा की फुर्ती देखते बनती है। सैला नृत्य में पैंतरेबाजी की कला है। महिलाओं का संगीत-मय नृत्य रानी कहलाता है। अवकाश के समय सुआ गीत आदि होते रहते हैं। खुले मौसिम में कबड्डी, चरी, खो खो आदि किशोरों के खेल हैं। वर्षा के अन्त में जब कीचड़ हो जाता है, लड़के गेंड़ी में चढ़कर घूमते हैं। आदिवासियों में असन्तोष है कि उनकी युवतियों को सार्व-जनिक प्रदर्शनों में नचाया जाता है। ऐसे प्रदर्शनों को वे जाति के स्वाभिमान के विरुद्ध समझते हैं कि नेता लोग हमारी गरीबी का अनु-चित लाभ उठाते हैं।

सब से अधिक प्राचीन वाद्य यन्त्र भैंसा की सींग है। केवल फूंक से बजता है। प्रधान बाजा मांदर है। कच्ची मिट्टी के घांघरे पर चमड़ा चढ़ा रहता है। कच्ची मिट्टी धूप में सुखाई जाती है। आग में नहीं पकाते। मांदर का स्वर ढोलके से अधिक मधुर होता है। मान्दर पर पड़ी थाप अत्यन्त उन्मादकारिणी होती है। प्रसिद्ध चलचित्र, झनक झनक पायल बाजे' में मान्दर को और गेंड़ी नृत्य को महत्व पूर्ण स्थान मिला है। चमड़ा के बाजों में टिमकी और सींगबाजा बहुत प्रचलित है। सींगबाजा में सींग केवल प्रदर्शन के लिये रहते हैं, प्रहारक वस्तु चमड़े की होती है, लकड़ी की नहीं। बजाने वाले के हर अवयव फरकते रहते हैं। लकड़ी के वाद्य यन्त्रों में बांसुरी प्रधान है। दो बांसुरियों को इकट्ठा करने पर जुड़वां बांसुरी या अलगोजा बन जाता है। करीब तीन फीट की लम्बी बांसुरी को डंडा बांसुरी कहते हैं। एक कलाकर के पास चार पांच इंच की लम्बी अर्थात् छोटी सी बांसुरी दिखी थी। धातु के बाजे कम हैं। अहीरों के नाच में थाली बजाई जाती है। पैरों में लोहे के पैजन पहिनते हैं, उनमें कंकर पड़े रहने से आवाज होती है। पठारियों की किंगरी में धातु के तारों के बदले तात के तार रहा करते हैं। धातु के तार रहते भी हैं, तो गौण रूप में।

मद्य-पान

आदिवासियों में मद्य पीने की चाल है। शादी, ब्याह, पूजा आदि

कई अवसरों में आवश्यक सा हो जाता है '। अनादिकाल से प्रचलित है। महाराजा संग्राम साहि भैरव के भक्त थे। संभवतः पीते रहे हों। प्रेमसाहि के पीने की कथा लोकगीतों में है। और किसी अन्य मनोरंजन के अभाव से, मौसम की खराबी में, मृत्यु में, थकावट में, खुशी में, रोग में, अच्छी फसल की आशा में, फसल की प्राप्ति में अर्थात् प्रसन्नता प्रगट करने के लिये तथा दुःख भुलने करने के लिये सभी लोग पीते हैं।

बहुत से गोंड़ और बैगा कभी नहीं पीते। स्वभाव से पसन्द नहीं करते। पीने में धार्मिक या सामाजिक निषेध न होते हुए भी कई की अरुचि रहती है। अहीर लोग दिवाली के त्यौहार में बहुत पीते हैं। औसतन गोंड़ और बैगा, आबकारी के या शराब के कानून की कोई इज्जत नहीं करना चाहते। अपने परम्परागत अधिकारों का हनन समझते हैं। भय से जो कानून की इज्जत करना पड़ती है, वह कोई इज्जत नहीं। अवसर मिलते ही उसका रूप दूसरा हो जाता है। पेट की ज्वाला चाहे जो करा डालती है।

दूसरा पक्ष यह भी है कि समाज सदैव उन्नति चाहता है। समाज उनकी निन्दा नहीं करता, जो कभी-कभी और थोड़ी-थोड़ी पीते हैं। नित्य या अधिक 'पीने वाले निन्दनीय माने जाते हैं। समाज सुधारकों ने गोंड़ों में और बैगाओं में, मद्य की प्रथा कम कर दी है। समाज का अर्थ है जन शक्ति। जो जन शक्ति चौपाल, पनघट, हाट-बाट और बाजार में होती है। को चाहे उसका, संगठन, संविधान उद्‌घाटन प्रेसरिपोर्ट, आँकड़े, अनुदान, दल .बन्दी, कुछ भी न हो, फिर भी विशाल शक्ति शालिनी जनशक्ति है। वह सदैव सुधार चाहती है उसको सर्वश्रेय है।

एक और पक्ष है। जिनमें पीने की प्रथा नहीं थी उनमें मद्य का प्रचार बढ़ रहा है। ऊँचे समाज में पीना-पिलाना फैशन बन चुका है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने ठीक लिखा है, कि—

"पियत भट्ट के ठट्ट अरु, गुजरातिन के वृन्द।
गौतम पियत अनन्द सों, पियत अग्र के नन्द।"

मण्डला जिला में मद्यपान की वस्तुस्थिति जानने के लिये, "मड़ई" शब्द का परिचय आवश्यक है। शरद ऋतु में, चण्डी पूजा के सामूहिक उत्सव, और उस उत्सव के अंग बाजार को मड़ई कहते हैं। मड़ई का

कार्यकाल साढ़े तीन महीने का होता है। सबसे पहिली मड़ई, मण्डला की दीवाली के बाद की द्वितीया को होती है। और सबसे अन्तिम मड़ई माघी पूर्णिमा के दिन, मड़ई की होती है। इन साढ़े तीन महीनों में, मड़ई के मेलों में, बहुत मद्यपान होता है। मड़ई भराने का संयोजक, मद्य की दूकान का ठेकेदार होता है। किसी भी मड़ई में मद्य पान के दृश्य देखे जा सकते हैं। हर बाजार के दिन मड़ई की जेबी आवृत्ति होती है।

इन साढ़े तीन महीनों में यदि कोई सम्बाददाता या वृत्त चित्र प्रदर्शक, चलचित्र केमरा लाकर, हर मड़ई में मद्य की दूकान के ग्राहकों के चलचित्र लेवे, तो मद्यपान की विशालता का अनुमान हो सकेगा। यह भी अनुमान हो जायेगा कि मद्य निषेध का प्रचार, उन क्षेत्रों में नहीं हो रहा है, जहाँ होना चाहिये।

जिस प्रकार कलकत्ता में नैपाली गाँजा की बहुतायत है, उसी प्रकार इस अन्चल में बैगानी गाँजा बहुत बिकता है। बैगा लोग, घोर जंगलों में, गाँजा की अवैध काश्त करते हैं। बैगानी गाँजा नापकर, एक या दो रुपया का एक पायली बिकता है। आबकारी विभाग की हरकतें अप्रिय होती हैं।

आबकारी विभाग के अधिकारी जानते हैं, कि त्यौहारों में और उत्सवों में अधिक मद्य का प्रचार होता है और अवैध मद्य का प्रयोग भी होता है। अतएव वे ऐसे अवसरों पर हमले करते हैं और बहुत मुकद्मे पकड़ लाते हैं। जनता भी ऐसी स्थिति आ जाने पर किसी एक को पकड़ा देती है, जिसे अर्थ दण्ड हो जाता है। गाँव भरके लोग सहकारिता से धन इकट्ठा करके दण्ड चुका देते हैं और अवैध मद्य गृह उद्योग पूर्ववत् चलता रहता है। बेचारा अधिकारी उसी उसी गाँव में बार-बार नहीं जा सकता। कभी-कभी मुकद्मा पकड़ते समय गाँव वाले हिंसक वृत्ति पर उतर आते हैं। आबकारी अफसरों को सतर्क और भयभीत रहता पड़ता है। ऐसे अवसरों पर उनको विभागीय प्रशंसा (White mark) मिलने का अवसर होता है। मैं ऐसा नहीं कह रहा हूँ कि आबकारी विभाग के सब अफसर दूध के धोये होते हैं।

मद्य-पान खराब है। मद्य-निषेध उससे अधिक खराब है। मद्य-पान पारिपाटी और आवश्यकता पर आधारित है। मद्यनिषेध खास व्यक्तिओं

के आवेश पर आधारित है। परम्परा के क्षेत्र अलग होते हैं। आदर्श के क्षेत्र अलग होते हैं।

भूल वहीं प्रारम्भ होती है जहाँ सरकार अपने को उपदेशक समझ कर ऊपर से मद्यनिषेध का प्रचार करती है और उपदेश देती है। सरकार भूल सी जाती है कि समाज भी अपना कल्याण समझता है। समाज मद्यपान की स्थिति से स्वयं त्रस्त है। समाज मद्यपान को कम करना चाहता है। मद्यनिषेध का प्रचार ऊपर से नहीं नीचे से आना चाहिये। सब से अच्छा मद्यनिषेध का प्रचारक वह होता है, जो मद्यपान करता रहा हो और जिसने त्रस्त होकर मद्यपान छोड़ दिया हो। समाज की तरफ से धीरे-धीरे और ठोस तरीकों से आप ही आप विना प्रदर्शन के मद्यनिषेध का प्रचार हो रहा है।

जब सरकार की तरफ से वेतन भोगी मद्यनिषेध प्रचारक समाज में प्रचार करने जाते हैं तब जनता को मैंने कई स्थानों में कहते हुये सुना है कि :—

"कौन-सी नई बात कह रहे थे। हम भी जानते हैं कि मद्यपान नहीं करना चाहिये। नौकरी वाले आदमी हैं ये नहीं बोलते पगार बोलती है। इनका क्या ? आज आये कल चले। अपने डेरे से पीकर प्रचार करने निकले थे। रात हमारे साथ बैठ कर पीते हैं। ऐसे प्रचारकों से कोई प्रचार नहीं हो सकता। सरकार की दुरंगी नीति है। एक तरफ सरकार ठेके बेच कर पीने का प्रचार करती है, दूसरी तरफ सरकार प्रचारकों को भेज कर मद्यनिषेध का प्रचार करती है।"

समालोचना बहुत कुछ सही है. या तो मद्यनिषेध प्रचार को बिलकुल त्याग दिया जाय या नीति पर पुनर्विचार किया जाय।

समाज सुधार कनून से नहीं होता। समाज सुधार सरकार से नहीं हो सकता। समाज का सुधार समाज ही करेगा, करना पड़ेगा और कर रहा है। चाहे प्रदर्शन न हो, चाहे आंकड़े पेश न हों, पर काम अपनी शैली से हो रहा है। सरकार व्यर्थ ही अपनी प्रभुता बताती है। दिशा दर्शन करने के बहाने दाल-भात में मूसरचन्द बनकर कूद पड़ती है। सरकार के हस्तक्षेप से सुधारकों के मार्ग में अवरोध उपस्थित हो जाता है। समाज अपना कल्याण समझता है। समाज अपने तरीकों से ही

सुधार करता जावेगा। सरकार के वेतन भोगी सज्जन समाज को इतना हीन न समझें कि समाज कुछ भी नहीं समझता। समाज-सुधार राष्ट्रीय चरित्र से होता है।

गोंड़ों में मद्यपान की चाल पुरानी है रावण मद्य पीते थे। महाराज संग्रामसाहि को भैरव का इष्ट था। वे भी पीते रहे होंगे। प्रेम साहि के मद्य पीने की कथा घर-घर में कही और सुनी जाती है। वे अपने गोंडों में मद्यनिषेध का प्रचार धार्मिक 'तरीकों से करता होगा। धर्म-निरपेक्ष राज्य में धार्मिक तरीकों का प्रयोग सम्हल कर करना पड़ेगा। प्रचार में बतलाना पड़ेगा कि वे राजा थे। वे समर्थ थे। वे अग्नि, गंगा, वायु और पृथ्वी की तरह पवित्र थे। उनको सब सोहता था। आजकल का समय बड़े लोगों की खराब आदतों की नकल करने का नहीं है। आज-कल का समय दाल-रोटी कमाने का है। किफायत करके राष्ट्र-निर्माण करना है। आज के गरीब गोंड़ को मद्यपान नहीं सोहता।

(५) कृषि, विवाह, मृत्यु

गोंड़ अपने को किसान कहने में गौरव का अनुभव करते हैं। पिछड़े हुए क्षेत्रों में प्रायः सर्वत्र ऐसी ही स्थिति है कि अच्छी भूमि कम है, पहाड़ आदि अधिक हैं।

मण्डला जिला में ४६ प्रतिशत भूमि में रक्षित वन है, तेईस प्रतिशत भूमि में कृषि होती है। बारह प्रतिशत ऊसर है और ग्यारह प्रतिशत भूमि बिना जोती पड़ी है। पाँच हजार वर्ग मील के जिला में प्रति वर्ग मील में १०७ व्यक्तियों की आबादी है। वन में जो ४६% भूमि है वह सब भूमि कृषि के लिये अयोग्य नहीं है। देश में खाद्यान्न की विकट समस्या है।

मण्डला जिला में भूमि का अनुपयोग और दुरुपयोग हो रहा है। वन को ४६% भूमि अनुपात से अधिक है। कृषि में २३% भूमि अनुपात से कम है। स्थिति की इस गम्भीरता को तीन सौ वर्ष पहले महाराजा हिरदेशाह ने समझ कर कुरमी और पन्सारी जाति को बुला कर बसाया। जिस प्रकार कुरमी धान के लिये अति उत्तम कृषक हैं उसी प्रकार गेहूँ के लिये राठौर अति उत्तम हैं।

१८६६ की प्रथम बन्दोबस्त रिपोर्ट में कैप्टेन वार्ड ने स्थिति की गम्भीरता को समझ कर सलाह दी है कि बाहर से अच्छे कृषक बुलवा

कर मण्डला जिला में बसाये जावें। कैप्टेन वार्ड की सलाह पर अंग्रेज सरकार ने ध्यान नहीं दिया। कृषि योग्य भूमि को पड़ी रहने देना या कृषि योग्य भूमि पर वन लगे रहने देना देश की अन्न-समस्या के प्रति अन्याय है। मण्डला जिले में हर प्रकार की भूमि है अतः हर प्रकार का अन्न और तिलहन उत्पन्न होता है। घोर वनों में भी बैगर लोग बैगानी रहर पैदा करते हैं। बैगानी रहर का दाना बड़ा होता है। दाल सुन्दर होती है। जल्दी पकती है। जबलपुर के बाजार में डिंडौरी से आती है। तीन-चार रुपया मन अधिक दाम में बिकती है। बहुत माँग रहती है। बैगानी ककड़ी गरमी की ऋतु में मिलती है। लम्बाई में १८ से २५ इंच तक और परिधि में १० से १५-१८ इंच तक होती है। सुगन्ध रहती है। स्वाद में खट्टी होती है। बैगानी भाटा आकार में छोटा होता है। रंग आकर्षक नहीं होता। काटने में कड़ा होता। फुसफुसा नहीं होता। सिद्ध हो चुकने पर अत्यन्त स्वादिष्ट होता है, चिकनई होती है जैसे मक्खन डाल दिया गया हो।

वन-भूमि में वन-विभाग ने थोड़े क्षेत्रफल में अधिक मूल्य वाली वनसम्पत्ति का रोपण आरम्भ किया है। गुवारी के पास सागौन के साथ-साथ हिमालय की चीड़ भी लगाई है। पहले भी गौरैया डीवर में बर्मा टीक लगाई गई थी। सिपुनी नदी के किनारे सड़वा छापर के पास सरई की एक किस्म "सींगन सरई" होती है, जो अधिक लम्बी और अधिक मजबूत होती है। ऐसे क्षेत्रों में जहाँ वन सम्पत्ति कमजोर हो और जहाँ की भूमि कृषि के लायक हो वहाँ धीरे-धीरे कृषि कार्य में भूमि को ले आना ठीक होगा। जहाँ वन नहीं हों, वहीं पर वन महोत्सव उचित है। मवई और मोती नाला क्षेत्र का वन महोत्सव मुझे कभी नहीं जँचा। कैप्टेन वार्ड ने वन-सम्पत्ति के उपयोगों की अच्छी सूची लिखी है।

बरसात में पहाड़ों में भी वर्षा होती है। खराब भूमि में भी बरसात में फसलें ली जाती हैं। एकाध जगह गोंडों ने पहाड़ियों में फलोद्यान लगाये हैं। दस-बीस दरख्त ही पुरुषार्थ सिद्ध करते हैं। गरीब गोंड़ बहुत अच्छा कृषक होता है। पथरीली या भरी जमीन में, दुर्बल और छोटे बैलों से जोत न सकने के कारण केवल खरोंच कर, गोंड़ कृषक कोंदों, कुटकी, रमतिला पैदा कर ही लेता है। कम वर्षा में कोदों आ ही जाती है। लोकोक्ति है—'कोदों रानी, तीन पानी।' गोंड जाति का प्रबल

दोष है उसकी लापरवाही। एक फसल ले चुकने पर, भूमि में खाद डाल कर उसकी उर्वराशक्ति को पुनर्जीवित नहीं करता। दूसरी परती जमीन उसे सुलभ है। गरीब गोंड किसान से अधिक लापरवाह धनवान गोंड़ कृषक होता है। सहृदय, दयालु, उदार, सन्तुष्ट यही दोष हैं। वह कभी अधिक कमाई नहीं करना चाहता। उसमें अधिक खर्च करने की सामर्थ्य कभी नहीं आ पाती। गोंड़ हरवाहा ईमानदार, आज्ञाकारी सहनशील परिश्रमी प्रसन्न और सन्तुष्ट रहता है। गुण भी ये ही हैं, और देशकाल के अनुसार ये गुण ही दोष हैं। देश को अधिकाधिक अन्न की आवश्यकता है। सन्तुष्ट रहने वाली गोंड़ जाति, देश की अन्न की आवश्यकता को पूरी करने में बहुत अधिक हाथ बाँट सकती है। गोंड़ जाति को तथा सबको और अधिक अन्न उत्पन्न करना है। गोंड़ जाति की लापरवाही का अनुभव करके महाराज हिरदैशाह ने बाहरी और अच्छे कृषकों को बुलाया था। भूमि के हर इंच से उपज निकालने का समय आ गया है। पहाड़ों की और टौरियों की ढलानों पर सीढ़ीदार खेत बनना हैं। लखनपूर क्षेत्र में कपास की खेती बढ़ाना है। बगान क्षेत्र में फिर कपास की खेती शुरू करना है। अभी बहुत काम करने को है।

कृषि के सम्बन्ध में कुछ स्थानीय तथ्य इस प्रकार हैं।

मण्डला जिला गजेटियर (१९१२) के पेज ११७ में लिखा है कि—मण्डला जिला की सुकरहाई पिसी का दाना सफेद और नरम होता है। इंग्लैण्ड में बहुत पसन्द किया जाता है। क्योंकि इसके आटा से अति शुभ्र रोटी बनती है। डिण्डौरी तहसील की हलकी जमीन में बहुतायत से पहाड़ी पिसी होती है। दाना छोटा पीला और कड़ा होता है। अरेबिया और जिद्दा में बहुत माँग रहती है।

कोदों कभी-कभी "मतौना" हो जाता है। विष कम करने के लिये कोदों की राशि में कुम्हड़ा (काशीफल) रख देते हैं, तो मतौनी कुटई का सब विष कुम्हड़ा में केन्द्रीभूत होकर कोदों निर्विष हो जाती है। दो चार महीनों के बाद उस कुम्हड़ा को निकाल कर जमीन में गाड़ देते हैं। जिससे कि विषमय कुम्हड़ा को कोई खा न सके।

हल जोतना : स्त्रियों के लिये हल चलाना बद्तमीजी समभी जाती है। बैगा के लिये हल चलाना बेतहजीबी मानी जाती है। आदि-

काल का बैगा पुरुष हल चलाकर अपनी धरती माता का पेट कैसे चीर सकता है। यही कारण है कि बैगा बेवरकाश्त पसन्द करता है। छोटे बच्चे अशक्तता के कारण हल नहीं चलाते। बच्चा हल चलाने लगा अर्थात् बच्चा यहीं किशोरावस्था को प्राप्त हो गया।

गारपगारी :—एक खास किस्म का पंडा जो ओलों को कंट्रोल करता है। ओला गिरने की मर्यादा बसन्त पञ्चमी से अक्षय तृतीया तक मानी जाती है। जिस गाँव को गारपगारी बांधेगा उस गाँव में ओला नहीं गिरेंगे। गारपगारी को गाँव भर से शुल्क के रूप में विरत (वृत्ति) मिलती है। गारपगारी एक जाति भी होती है।

महाउट :—माघ महीने के आस-पास की थोड़ी सी वर्षा जिससे गेहूँ चने, में सिंचाई हो जाती है। गेहूँ, चने में पानी नहीं देते। महा-उट पर निर्भर रहते हैं। फागुन शुक्ल में वर्षा होने पर यदि मेघ अड़े रहे तो गेरुआ (Rust) का डर रहता है। इस डर से आजकल बटरा की काश्त अधिक होने लगी है।

खाद :—गरमी में तालाबों के सूख जाने पर तालावों के फर्श की मिट्टी को तालाबों से लाकर खेतों में डालते हैं। यह लदी की खाद बहुत उपज देती है। इसमें जल की वनस्पतियों के अवशेष रहते हैं। इस प्रथा को अपढ़ किसान जानते हैं। कृषि विद्या के विशेषज्ञ, जानते हों, या न जानते हों; दिंदौरी के सरकारी फार्म में मुरमीली भूमि में खाद्य डालकर बरसात में आलू की कीमती फसल अधिक मात्रा में पैदा की गई थी। आमदनी के इस व्यावहारिक प्रदर्शन से जनता ने लाभ नहीं उठाया। *भूक्षरण*, (Erosim) पहाड़ी क्षेत्रों में सीढ़ीदार खेत बना कर भूक्षरण का प्रतिकार हो सकता है। समतल भूमि में तीव्र प्रवाह के कारण जो भूक्षरण होता है उस भूक्षरण को रोकने के लिये स्थानीय देहाती कृषक *रतबिला* नामक वनस्पति लगाते हैं। रतबिला की जड़ें मिट्टी को पकड़े रखती हैं। मिट्टी नहीं बह सकती। यह प्रयोग देश में चाहे जहाँ किया जा सकता है। अपढ़ देहाती जानते हैं। और लाभ उठाते हैं।

पशु-पालन :—साधारण और सम्पन्न किसान के घर में गाय, बैल, भैंस, मुर्गी, सुअर आदि नाना प्रकार के पशु पाले जाते हैं। सब का अपना अपना उपयोग है। पशुओं की संख्या अधिक और हालत कम-

जोर है। शुद्ध दूध दुर्लभ है। पानी आजादी से मिलाया जाता है। दूध में पानी मिलाने वालों को जब दण्ड देने का अवसर आता है, तब दया उभर पड़ती है। पशुओं के स्वामी पशुओं की देख-रेख कम करते हैं। आवारा छोड़ देते हैं या चाहे जहाँ चराते हैं। न कोई अपने पशु-धन के लिये चरु बोता न घर में पशुओं को चराते। पशुधन के लिये किसी भी प्रकार का धन नहीं खर्च करते। केवल आमदनी चाहते हैं। रात की सड़कों में और दिन को क्रीड़ा क्षेत्रों में या मैदानों में आवारा पशु बहुत दिखते हैं। किसी भी शिक्षा-संस्था के क्रीड़ा-क्षेत्र में पशु कृत गड्ढे हैं, जिन गड्ढे में "देश के भावी निर्माणकारी" बालकों को चोट लग सकती है।

हमारी भूलें दुतरफा हैं। एक तरफ हम लोग कानून बनाकर समाज सुधार करते हैं। दूसरी तरफ हम लोग कृषि के या पशु-धन के कल्याण के लिये, कानून नहीं बनाते। इस प्रकार भूलें दुतरफा हैं। पशुपालन में सुधार के लिये, सख्त कानून की आवश्यकता है। पशुधन की हालत गिरती जा रही है।

बम्बई में दूध में पानी मिलाने पर हजार पांच सौ का दण्ड होता है। जेल भी होता है। बम्बई में इस कारण से शुद्ध दूध मिल सकता है। मण्डला जिला में शुद्ध दूध नहीं मिलता। अर्थ दण्ड के सिवाय मण्डला जिला के लिये, एक सरल युक्ति है। जो व्यक्ति दूध में पान मिलाकर बेचने लावे, उससे कहा जाय कि उस दूध में से एक तोला भर दूध, वही बेचने वाला, मेहतर या चमार से स्पर्श करा के पी ले, वह कदापि न पियेगा। उसको भय होगा कि पानी तो है ही। पानी को मेहतर या चमार ने स्पर्श कर लिया है। मैं यदि पी लूँगा तो मैं मेहतर या चमार का स्पर्श किया जल पी चुका। मेरी जाति वाले मुझे जाति से बहिष्कृत कर देंगे। मुझे दो पांच सौ की रोटी देना पड़ेगा।

पशुधन देश के स्वास्थ्य, कृषि तथा अन्नोत्पादन की बुनियाद है। कानून बनाने वालों को और कानून का प्रयोग करने वालों को भीतरी भय है कि यदि जनता पर जनता की भलाई के लिये ही सख्ती होगी, तो जनता विरुद्ध हो जायगी। परस्पर सहानुभूति के कारण जनता में से बहुत से सस्ते नेता आगे आ जावेंगे। संभव है कि हमारी सामाजिक स्थिति में फरक पड़े। सच्चे समाज सुधारक ऐसे विरोधों से नहीं

डरते। जब जनता अपना कल्याण नहीं समझती, तो सरकार को कानून बनाने में और कानून का पालन कराने में सख्ती करना आवश्यक हो जाता है।

एक सस्ते नेता का दास्तान इस प्रकार है। वह अत्याचारी है और जनता में अप्रिय है वह किसी छोटे चुनाव में हार गया। उसके घर के सदस्यों ने वोटरों को जोर-जोर से गाली देना शुरू किया कि हे भगवान जिन वोटरों ने हमारी पेट की रोटी छीन ली है। उन वोटरों का सर्वनाश कर दो। इस शाप को लोगों ने सुनकर नेता को समझाया-बुझाया कि जनतन्त्र के युग में इस प्रकार का शाप अशिष्ट आचरण होता है। तब बात शान्त हुई।

मण्डला जिला में मकई की कड़वी को नष्टकर डालते हैं। जो पशुओं के चारे के काम में आ सकती है। किसानों को कड़वी का उपयोग सिखाना है। जो किसान मकई आदि की कड़वी को नष्ट न करें, और चारा के उपयोग में लावें, उनको पारितोषक देकर उनका उत्साह बढ़ाना चाहिये। स्वस्थ परम्परा चल निकलेगी। पशुधन को पुष्टिकर चारा मिलने लगेगा। कड़वी काटने का काम हसिया या गँड़ासे से हो सकता है। मशीन का शुरू में प्रचार अप्रिय हो सकता है।

उद्योग :—कृषि की तरह गृह उद्योग भी जनता की समृद्धि में सहायक हो सकते हैं। पहाड़ी क्षेत्र में खनिज पदार्थों का सर्वे होना आवश्यक है। वनस्पति के उद्योगों का अच्छा वर्णन कप्तेन वार्ड ने अपनी बन्दोबस्त रिपोर्ट में किया है। उस वर्णन को भूल जाने से हानि हो रही है। आजकल का समय परिश्रम और पैसे का है। सरकार का या किसी का मुंह ताकने का समय नहीं है। लकड़ी है, लोग बढ़ईगीरी सीख सकते हैं। तेंदू की पत्ती है, लोग बीड़ी बनाना सीख सकते हैं। इन बातों में सरकार को दोष देना ठीक नहीं।

बाढ़ी:—फसल बोने के लिये कभी किसान को बीज कर्ज में लेना पड़ता है। फसल आने पर गल्ला ही वापस किया जाता है। नगदी में मूल्य परिवर्तन का प्रश्न ही नहीं उठता। वापिस करते समय जो ब्याज या वृद्धि दी जाती है, उसे बाढ़ी कहते हैं। बाढ़ी तीन प्रकार की होती है। सवाई, ड्योढ़ी और दूनी माँग और परिस्थिति के अनुसार जैसी शर्त हो जावे कि सवाया गल्ला या डेवढ़ा या दूना देंगे। शैनी के समय माँग

अधिक रहने से गल्ला का भाव तेज रहता है। फसल के समय मद्दा भाव हो जाता है। भाव से फरक नहीं पड़ता। गल्ला लिया और गल्ला दिया, भाव चाहे जब चाहे जो हो। यह व्यवस्था दोनों पक्षों की ईमानदारी पर निर्भर रहती है। लड़कपन में सुना था कि कोई धनवान गोंड़ रुपया भी बाढ़ी में देता था और गल्ला की तरह कुरे में नापकर देता था। गिनना नहीं जानता था। उसकी रकम नहीं मानी जाती थी। सवाई बाढ़ी समेत घर बैठे रुपया आ जाते थे। ऐसी लेन-देन अब बन्द हैं।

आजकल भी, सम्पन्न सीधे सज्जन गोंड़ को जो हर प्रकार की बदनीयतों से पाक और साफ रहता है, ऐसे गोंड़ को आदर के लिये भोई 'शब्द' से सम्बोधित करते हैं। मुहाबिरेदार भाषा में ऐसे भाई लोगों को 'भाई भोपाल' कहते हैं। गुजराती में भाई शब्द से नाविक का बोध होता है। चौपाटी के कुछ हिस्सा को पहिले भोई वाड़ा कहते थे।

आजकल बकरी पालने का नया उद्योग, उन्नति पर दिख रहा है। मंडला में हर इतवारी बाजार में खुले मौसम में तीन-चार सौ बकरा-बकरी बिकते हैं। अर्थात् बारह पंद्रह हजार को बिक जाती हैं। मंडला से सिवनी होकर नागपुर जाती है। वहाँ के लिये भोज्य पदार्थ है।

विवाह

विवाह जाति के अन्दर और गोत्र के बाहर होते हैं। देवताओं की संख्या के बाहर सात देवता मानने वाले कुटुम्ब का लड़का सात देवता मानने वाले कुटुम्ब की लड़की से नहीं ब्याहा जा सकता। गोत्र और देवताओं का बरकान करते हैं। ब्याह की बात वर पक्ष से शुरू होती है। वर की बारात जाती है। एक प्रकार के विवाह में कन्या की बारात जाती है, उसे चढ़ ब्याह कहते हैं जो कम प्रचलित है। बाल विवाह नहीं होते। कन्या की इच्छा को उचित महत्व प्राप्त है। कन्या हल्दी पानी सींच कर स्वयंबर कर सकती है। एक प्रकार का विवाह लमसनाई जीतना कहलाता है, जिसमें वर अपने होने वाले ससुर के घर में केवल भोजन वस्त्र पर नौकरी करके कन्या के विवाह का अधिकारी बन जाता है। वेतन नहीं लिया अर्थात् कन्या का मूल्य दिया। यह प्रथा समाज द्वारा मान्य है। इसमें विवाह से पहले कोई संसर्ग नहीं होता। इस प्रथा को बिलायती Trial marriage नहीं समझ लेना है। धनवानों में बहुपत्नी प्रथा है

जिससे कृषिकार्य में मजदूरी बच जाती है। अनेक पत्नियाँ कृषिकार्य में सहायक होती हैं।

विवाह की रीति देश, काल तथा आर्थिक स्थिति पर निर्भर रहती है। विवाह के बजट में मुख्य खर्च दारू, बीड़ी और बाजा घर पर होता है। यह आवश्यक है कि वर कन्या की माता को दूध की कीमत दे। कन्या ने जो शैशव में अपनी माता का दूध पिया है, उस दूध की कीमत पाने का अधिकार कन्या की माता का अधिकार समाज द्वारा मान्य है। उसके बदले में कन्या की माता को एक नवीन वस्त्र दिया जाता है, जिसे माईसारी कहते हैं।

मामा की लड़की से विवाह उचित माना जाता है। 'दच्छिणे मातुली' कन्या वाली उक्ति चरितार्थ होती है। ससुर को मामा कहते हैं। विवाह के मण्डप में स्तम्भ के आस-पास सात फेरे पड़ते हैं। यही सप्तापदी है, तेल भी चढ़ता है। कलश पूजा मृत्तिका पूजा होती है। गांठ जुड़ती है। अक्षत वर्षा से आशीर्वाद होता है। वर कन्या के हाथों में कंगन बाँधा जाता है। स्त्री पुरुष एक दूसरे के नाम का उच्चारण नहीं करते। विवाह में गारी गाई जाती है जिन्हें भड़ौनी कहते हैं। हर नेग के हर कृत्य के अलग-अलग लोक गीत हैं।

विवाह के एक लोकगीत में इस प्रकार का भाव है कि कन्या के पिता ने शराब के लोभ में अपनी कन्या को खो दिया। विवाह में शराब का बहुत महत्व है।

विवाह के सभी लोकगीत अति महत्वपूर्ण हैं। विवाह का एक लोक गीत 'करसा करवा' गोदने' का गीत कहलाता है। अर्थात् कलश के पात्र में चित्रकारी करने का गीत इस लोक गीत का सरगम है—"तरीना कीना, ना ना रे, ना नी मोरे, तरी, ना कीना" बाद के बोलों में पूर्व पुरुषों का स्मरण और आराधना है। प्राचीन गौरव का इतिहास है। बोल इस प्रकार हैं—आ जा रे, आ जा मोरे, धरती माता मोरे, ठाकुर दादा मोरे, निंगोगढ़ मोरे, चन्द्रागढ़ मोरे, बीजागढ़ मोरे, देवड़गढ़ मोरे, हरदीगढ़ मोरे, सांजीगढ़ मोरे; इत्यादि। अपढ़ गाने वालियों ने अत्यन्त प्राचीन ऐतिहासिक महत्व के नामों को कितने अच्छे तरीकों से सुरक्षित रखा है। वे स्थानों की स्थिति नहीं जानतीं। इतिहास नहीं जानतीं। परम्परावश गीत गाती हैं। जिनमें प्राचीन इतिहास और गौरव सुरक्षित

आजकल की सभ्यता की हवा लग जावे तो सब भूल कर फिल्मी गीत गाने लगें।

विवाह के मण्डप (मड़वा) के लिये, साल्हें की थून, और बांस, आदि जंगल से काट कर लाने का अधिकार या उत्तरदायित्व, मान (बहनोई या दामाद) का होता है। बहुपत्नी प्रथा केवल धनवानों में है। सब धनवानों में बहुपत्नी प्रथा आवश्यक है, ऐसा समझ लेना भूल होगी। गरीब के लिये एक पत्नी का प्रतिपालन कर सकना कठिन होता है। सन्तान भी होती हैं। आर्थिक कारणों से गरीब को एक ही पत्नी का प्रतिपाल कठिन है। स्त्री जाति आश्रित नहीं रहती। स्त्री परिश्रम करती है। एक गरीब मुसलमान युवक ने बताया कि अमुक व्यक्ति उसका भाई है। मुझे बात नहीं जँची कि गरीब का भाई धनवान कैसे, गरीब युवक ने बताया कि दोनों की माँ, गोंडनी थी। पिता अलग-अलग बाप का क्या ? खेत तो एक ही है मेरा धनवान भाई मेरी हर प्रकार से सहायता करता है। मैं धनवान भाई से मिला उसने ताईद की। इस छोटे से संवाद से गोंड़ संस्कारों में माता का महत्व सिद्ध होता है।

मृत्यु होने पर

धनवानों के शरीर का अग्निदाह होता है। गरीबों के शरीर को मिट्टी दी जाती है। मरघट जलाशय के पास होते हैं। जलाते समय या उड़ाते समय, सिर उत्तर की तरफ रहता है पैर दक्षिण की तरफ। उत्तर दिशा को "भरी मुँह" भी कहते हैं। सिरहाने में अन्न, जलपात्र और द्रव्य रख देते हैं। मृतक के वस्त्र महापात्र (पठारी) को दिये जाते हैं। मरणाशौच मानते हैं। सात या नौ दिनों में शुद्धि स्नान होता है। तेरहई (त्रयोदशाह) होता है। सयाने की मृयु होने पर, पुरुष भद्र कराते हैं। वारिसों को पगड़ी पहनाई जाती है। गरीबी के कारण, दो गिरह कपड़े से ही दस्तूर पूरा कर सकते हैं। पितर मिलौनी होती है। एक जलपात्र में चावल के दो दाने डाले जाते हैं। दोनों दाने मिल गये तो, मृतक पितरों में मिल गया, ऐसा माना जाता है। "दिन पानी" पूस में या वैषाख तक होता है। बिरादरी और रिस्तेदारों का भोजन होता है। महापात्र (पठारी) को नान मिलता है। किसी भाग्यशाली का स्मारक बनाया जाता है। छोटे-छोटे पत्थरों को इकट्ठा करके, पत्थरों के उस ढेर को कूर कहते हैं। यह

कूर ही स्मारक है। कूर में त्रिशूल, छोटा थून, लाल वस्त्र के ध्वज आदि चढ़ाये जाते हैं। रानी दुर्गावती की समाधि के पास कई कूर हैं। जैसे सरमन हाथी का कूर, बग्घराज का कूर, और भी कई कूर हैं।

गोंड़ जाति में पुनर्जन्म मानते हैं। विश्वास है कि मृतक अपने कुटुम्ब में ही जन्म लेता है। भूत और चुड़ैल भी मानते हैं कि पापी स्त्री चुड़ैल होते हैं। इनसे आत्म रक्षा करनी पड़ती है। अच्छे पुरुष देवत्व प्राप्त करते हैं। खराब पुरुष भूत होते हैं। हर प्रकार से गोंड़ों की मृतक प्रथाएँ पूरी पूरी तरह से उनको हिन्दू ही सिद्ध करती हैं। विदेशी विद्वानों ने एनिमिस्ट कहकर या भूल की या नीति से कहा। भारतीय विद्वान् उन विदेशियों की नकल करके गोंड़ों को हिन्दुओं से भिन्न ट्राइब मानते हैं।

(६) अनुसूचित, गरीबी, लूट खसोट, चरित्र, और सुगम सहयोग—

गोंड जाति के सम्बन्ध में अबुलफजल कहता है—"Gonds, a low-caste tribe' who 'Mostly live in the wilds' despised by the people of Hindustan and regarded by them as 'Outside the pale their realm and religion.'

जब से भारतीय कांग्रेस ने अँग्रेजों से स्वराज्य की माँग की तभी से अँग्रेज जाति कोई न कोई बहाना बनाकर कांग्रेस की माँग को कमजोर करने के प्रयत्न करती रही। अँग्रेज चाहते थे कि भारत की पिछड़ी जातियाँ अँग्रेज शासन की अन्ध भक्त रही आवें और राष्ट्रीय कांग्रेस का विरोध करती रहें। कांग्रेस कमजोर बनी रहे। अँग्रेज़ शासक कांग्रेस से कहते थे—

"आप स्वराज्य चाहते हो आपके समाज का एक अंग आपसे अलग है।"

"पिछड़ी जातियाँ कांग्रेस के साथ नहीं है। वे हमारे भक्त हैं। पहले अपना घर तो सुधारो।"

"फिर स्वराज्य के ख्वाब देखना।" ऐसा कहना अँग्रेजों की चाल थी कि पिछुड़ी जातियों को हिन्दुओं से भिन्न या हिन्दू-विरोधी बनाकर उनको हिन्दुओं का और कांग्रेस का विरोधी बना दिया जाय। हिन्दू

समाज को और कांग्रेस को क्षतविक्षत और टुकड़े-टुकड़े बनाये रखें। एक-एक टुकड़े को अपने में मिलाते रहे। समाज संगठित नहीं हो पाएगा। स्वराज्य की माँग आप ही आप निर्बल हो जायेगी। यह भेद-नीति थी।

अँग्रेजों ने गोंड़ों को अलग जमात मानकर अबुलफजल की ताईद की। इस प्रकार अनुसूचित जाति के नाम का जन्म हुआ। उसी प्रथा को राष्ट्रीय सरकार ने जीवित रखा। अनुसूचित जाति और अनुसूचित वर्ग की सूची अधिकाधिक ,लम्बी होती जा रही है। अनुसूचित जमात का अर्थ गैर हिन्दू या हिन्दू विरोधी लगाने में, ईसाई पादरियों का स्वार्थ है।

मण्डला जिले में अनुसूचित जाति और अनुसूचित वर्ग मिलकर, ६५ प्रतिशत से अधिक की आबादी है। उनकी कुछ ठोस सेवा नहीं हो रही है। कुछ को छात्रवृत्ति, कुछ को पटवारी, चपरासी या पुलिस कानिस्टेबल का पद दे देने से या एक दो को विधान सभा में भेज देने से केवल व्यक्तियों की सेवा होती है या दल की सेवा होती है। जाति की सेवा नहीं हो पाती। इस नीति पर पुनर्विचार आवश्यक है। जाति की सेवा, जाति की उन्नति से होती है। जाति की उन्नति के लिये, आवश्यक नहीं कि पिछुड़ी जाति के समुन्नत व्यक्तियों को भी केवल जाति के बल पर संरक्षण दिये जावें। पिछुड़ी जाति के समुन्नत व्यक्ति संरक्षणों को प्राप्त करने के पात्र नहीं हैं। इसी प्रकार की एक और भूल हो रही है। जिस जाति को पिछुड़ी जाति नहीं माना जाता, उस जाति के संरक्षण और सहायता पाने योग्य व्यक्तियों को केवल इसीलिये कोई संरक्षण या सहायता नहीं प्राप्त हो पाती कि वे एक किसी समुन्नत जाति के हैं, पिछुड़ी जाति के नहीं।

यद्यपि गोंड़, बैगर आदि जातियाँ रहन-सहन रस्मोरिवाज से पूर्ण हिन्दू सिद्ध होते हैं, तथापि विलायती विद्वान् और ईसाई मिशनरी समस्त आदिवासियों को हिन्दुओं से अलग ट्राइब मानते हैं। उनका स्वार्थ ऐसे प्रचार में ही है। संरक्षण के आडम्बर में, आदिवासी अनुसूचित रहे आवें। सेवा करने के बहाने से, धर्म-परिवर्तन करने के लिए निर्विरोध क्षेत्र मिलता रहे है। किसी ने धर्म परिवर्तन के विरुद्ध यदि आवाज उठाई, तो सीधा-सादा जवाब होता है कि :—

"आप अति नीच हैं, जो सेवा के विरुद्ध ऐतराज कर रहे हैं। हम तो हर प्रकार से सेवा कर रहे हैं। शिक्षा की सेवा, औषधि की सेवा समाज सुधार की सेवा आदि। आप ऐतराज करने वाले होते कौन हैं। सब पिछड़ी जातियाँ आपके विशाल हिन्दू समाज से अलग हैं। वे हिन्दू नहीं हैं। आप पिछड़ी जातियों को अपनी तरह हिन्दू मानते होते तो आप स्वयं उनकी सेवा करते। आप न तो खुद उनकी सेवा करते और न हमें सेवा करने देते। अब आपका पिछुड़ी जातियों पर अत्याचार अधिक दिन नहीं चल सकता। आप पिछुड़ी जातियों को सदैव अपना दास बनाये रखना चाहते हो। हम विदेशों से धन लाकर और अपना तन लगा कर पिछड़ी जातियों की सेवा करते हैं। अपने स्वार्थ वश हमारी निःस्वार्थ सेवा के विरुद्ध, ऐतराज कर रहे हो।"

दलबन्दी के नेता लोग भी चाहते हैं कि सब पिछड़ी जातियाँ खास कर आदिवासी गोंड़ लोग अनुसूचित वर्ग में रहे आवें। उनका स्वार्थ सरल और सस्ते वोटों से हर प्रकार की मेम्बरी में है।

आदिवासी तथा अन्य अनुसूचित लोग स्वयं अनुसूचित बने रहना चाहते हैं, ताकि सरल मार्ग से सरकार द्वारा धन, नौकरी, तरक्की, आदि की सहायता मिलती रहे।

उपरोक्त तीन-चार दृष्टिकोणों के वर्णन से समझ में आ जाता है कि अनुसूचित वर्ग जाति की प्रथा का जारी रखना, कहाँ तक ठीक है। इन्हीं दृष्टिकोणों से स्पष्ट हो जाता है कि गोंड़ और बैगर जाति को अनुसूचित श्रेणी से अलग करने में कितना प्रबल विरोध होने की सम्भावना है। सेवा और रक्षा के सब मार्गों का सदैव स्वागत होना चाहिये। स्वार्थ और शोषण का जहाँ ध्येय हो और सेवा का केवल बहाना हो; वहाँ गम्भीर पुनर्विचार आवश्यक है। भय है, कि सरकारी सहायता से अपनी हीनता अनुभव करने लगे या और अधिक पिछड़ी जावें। मानसिक हार नहीं होने देना है। उनका उद्बोधन करना है। अनुदान और संरक्षण के धन से, कल्याण अवश्यम्भावी नहीं है। सरलता से आया धन प्रायः, अपव्यय में सहायक होता है। संघर्ष से प्राप्त धन अवश्यमेव कल्याणकारी होता है। हर पिछड़ी जाति को परमुखापेक्षी या सरकार का मुँह ताकने वाली न बनने देकर आत्मनिर्भर बनाना है।

एक पहलू और है। पिछड़ेपन की या संरक्षण और अनुदान प्राप्त

करने की योग्यता की कोई वैज्ञानिक कसौटी नहीं है। चाहे जिस जाति को पिछड़ी मान लिया जाता है। कई ऊँची जातियाँ धन-लाभ की तृष्णा से पिछड़ों की सूची में आना चाहती हैं। एक ऐसी होड़ लग रही है, कि कितनी अधिक जातियाँ अपने को पिछड़ी कहलाने का गौरव प्राप्त कर सकती हैं। इस होड़ में सब से पीछे ब्राह्मण और कायस्थ हैं।

इतना सब होते हुए भी कोई दो मत नहीं हो सकते कि गोंड़ और बैगा, पिछड़ी जातियाँ हैं और अनुदान तथा संरक्षण में प्राप्त धन का बहुत महत्व है। चाहें, तो अनुसूचित बने रहें। जब वे चाहें तब अनुदान और संरक्षणों से इन्कार कर दें। अभी उस स्थिति के आने में बहुत समय लगेगा। तब तक सरकार के लिये संरक्षण देना ही श्रेयस्कर है। अन्य उन्नत जातियों को अपने संरक्षण प्राप्त करने की होड़ के बदले संरक्षण त्यागने की होड़ करना चाहिये। इस होड़ में सब से पीछे गोंड़ और बैगा ही रहें, तो ठीक।

जंगली जातियों को अनुसूचित कह कर उनके आर्थिक शोषण के खिलाफ जितनी आवाज उठाई गई है, उससे शतांश आवाज भी उनके आध्यात्मिक शोषण के खिलाफ नहीं उठाई। उनका आध्यात्मिक शोषण धर्म परिवर्तन के द्वारा होता है।

गरीबी

गरीबी बहुत है। गरीबी की भयंकरता का शब्दों से वर्णन नहीं किया जा सकता। गरीबों के बीच में रह कर अनुभव ही किया जा सकता है। गरीब सहानुभूति के पात्र होते हैं। जो रहीम दीनहिं लखें, दीन-बन्धु सम होय। कई संस्थाएँ गरीबों की मदद करना चाहती हैं। उस मदद का बहुत कम भाग गरीबों तक पहुँच पाता है। बीच वाले बड़ा भाग (मदद का) मार देते हैं। ५७-५८ के अकाल में भी यही दिखा कि भूखे मरने वालों की सरकारी मदद को भी मेरा अर्थ है कि मदद के कुछ हिस्से का खाने वालों ने बेरहमी से खाया। ऐसे खाने वालों का न जाने क्या भविष्य होगा?

मण्डला में एक रोजगारी संस्था है, जिनको स्थानीय बोली में 'कंगाल बैंक' कहते हैं। वे गरीबों के साथ थोड़ी-थोड़ी रकम की साहूकारी करते हैं। शायद ही किसी को दस बीस रुपयों से अधिक देते हों। उनका तरीका इस प्रकार है। किसी ने बीस जनवरी को दस रुपया

उधार लिया। लिखा पढ़ी न जाने कैसी होती है। पर अदाई इस प्रकार होती है कि २७ जनवरी को २॥) ३ फरवरी को २॥) १० फरवरी को २॥) १७ फरवरी को २॥) और २४ फरवरी को २॥)। इस तरह पाँच सप्ताह में १०) के १२॥) वापिस लेते हैं। किसी किस्त के चूकने पर प्रति किस्त का एक रुपया और अधिक देना पड़ता है। इस तरह की अदाई में व्याज का दर बहुत अधिक पड़ता है। जोखिम कम रहता है क्योंकि वसूल करने वाले की आत्मा मर चुकी है। जिनको आवश्यकता पड़ती है, वे लेते हैं। जिनको कमाई करना है वे कमाई करते हैं। समाज सेवक दोष देते हों, तो देते रहें। कर्जदारों की साख बिलकुल कम हो चुकी है।

कंगाल बैंक या काबुलियों के पनपने के कारण हैं। करीब बीस-तीस वर्षों से कर्ज के ऐसे कानून चालू हैं कि देशी साहूकारी प्रथा (इनडेजेनस बैंकिंग) समाप्त प्रायः हो चुकी है। कानून ने बदले की भावना से देशी साहूकारी प्रथा को समाप्त-सा कर दिया। जनता को आवश्यकता रही आई। महँगाई से बढ़ी और आवश्यकता बढ़ती जा रही है। जनता की आवश्यकताओं को पूरी कर सकना कानून के या समाज सेवक के बूता के बाहर है। साहूकारी के कड़े कानूनों से गरीबों अधिक नुकसान में न पड़े। गरीबों को काबुली और कंगाल बैंक की शरण में जाना पड़ा। गरीब और गरीब हो रहे हैं। काबुली और कंगाल बैंक पनपते जा रहे हैं। देशी साहूकारों ने लैसन्स और परमिट का धन्धा पकड़ लिया। नेतागीरी करने लगे।

गरीबी दूर करने के उपाय वैज्ञानिक तरीकों से तलाशना है। सर्वेक्षण के तरीके से विशेषज्ञ लोग दस बीस गाँवों के छोटे से क्षेत्र में, सर्वेक्षण करके जो प्रतिवेदन बनावेंगे, उससे वस्तुस्थिति का ज्ञान होकर उसी से उपाय निकलेंगे। छोटी-सी सर्वेक्षण समिति में अर्थशास्त्र का एक विशेषज्ञ यथेष्ट होगा। प्रश्नावली की शैली से सहायता मिलेगी। मिल एरिया और उद्योग क्षेत्रों की प्रश्नावली काम न देगी। पिछड़े क्षेत्रों के सर्वेक्षण में नीचे लिखी बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिये।

(१) पूछ-ताछ पिछड़े लोगों तक या जाति विशेषज्ञों तक सीमित न रखी जाय। नये व्यापारी जो जल्दी धनवान बन जाते हैं, प्रायः अत्याचारी होते हैं। अत्याचारियों के शत्रु पूछ-ताछ में सहायक होंगे। सर-

कारी छोटे पदों से बहिष्कृत, फारिस्टगार्ड, कानिस्टेबल, पटवारी, शिक्षक आदि श्रेणी के लोग ऊँचे दर्जे के प्रजापीड़क बन जाते हैं या सरकारी नौकरी में रहते हुए किसी समीपी द्वारा अनुचित धनोपार्जन करते हैं।

(२) जादू टोना का बहाना करने वाले पण्डा लोग, रिश्वत के दलाल देहाती बैरिस्टर, नेता, नाप-तौल में कम देने या अधिक देने, वाले आदि प्रकार के लोगों की कृतियों से, सर्वेक्षण में सहायता मिलेगी। गरीबी बरबादी का नाम है।

बरबादी के कई कारण होते हैं। शादी व्याह, मुकदमा, कर्ज अभिमान दैवी विपत्ति आदि।

(३) कर्जदारों की रक्षा का कानून—प्रोटेक्शन आफ डेटर्स एक्ट—पुस्तकों तक सीमित है। उसका प्रयोग बहुत कम—नहीं के बराबर होता है। जिसका निष्कर्ष यह नहीं है कि कर्जदारों को काबुली सरीखे साहूकार तङ्ग नहीं करते। निष्कर्ष यह है कि तङ्ग होने वाले कानून की शरण में नहीं जाते। वे जानते है कि कल फिर जरूरत पड़ेगी। तब कानून कर्ज नहीं देगा। उसी काबुली सरीखे साहूकार की शरण में जाना पड़ेगा। तो उससे द्रोह क्यों किया जाय।

(३) बीस पचीस शादियों के खर्च का लेखा-जोखा लगाने से पता चलेगा. कि शादी खर्च के मुख्य उद्देश्य क्या हैं, और उनमें किफायत की गुञ्जाइस कहाँ है, या कहीं किफायत नहीं हो सकती। शादियों में खर्च के मुख्य मुद्दे बीड़ी, दारू, बाजा, कुदई, हलदी, कपड़ा हैं। जिन्दगी में एक बार थोड़ी छूट होना ही चाहिये।

(४) यदि कोई कुटुम्ब गाँव से हाल में भागा है तो उसके गाँव छोड़ने के क्या कारण हुए। विपत्ति या अत्याचार और अत्याचारी की सफलता के कारण।

(५) मुकदमा बाजी के खर्च की परीक्षा कोर्ट फीस के अतिरिक्त वकील फीस में कितना लगा। रिश्वत खर्च, रिश्वत के दलालों का खर्च गवाहों की रिश्वत का खर्च आदि सब प्रश्नों के उत्तर समाज की आंखें खोल देंगे।

(६) कर्ज न चुक सकने के कारण या तो दैवी होते हैं या घरू तथा व्यक्तिगत। एक काबुली का कर्जदार मर गया। कर्ज चुकता हो चुका था काबुली और रुपया चाहता था। उसने गांव में आकर मृतक की कब्र

की तलाश की कि या तो मुझे इतना रुपया दो नहीं तो मैं मृतक को कब्र पर लघु शंका करूँगा। इस कथन और धमकी का असर पुत्र पर क्या पड़ेगा समझने की बात है। एक काबुली से पूछा गया कि तुम्हारे धर्म में ब्याज हराम है. तो ब्याज क्यों लेते हो। उसने उत्तर दिया कि हम लोगों को फतवा मिल चुका है कि हिन्दुस्तान में हिन्दुओं से व्याज लेना हलाल है। काबुल में व्याज लेना हराम है।

(७) सर्वे क्षणों में ऐसी या ऐसी अन्य बातों पर ध्यान देने से, प्रतिवेदन सांगोपांग बन सकेगा। अनुभवों से ही पुस्तकस्थ विद्या बनती है। ऐसे हर कमीशन के लिये, समाज सेवक वृत्ति के व्यक्ति बहुत मिल सकते हैं।

(८) सर्वेक्षण में, गरीबी के कारण, लड़कियों को भगाने और बेचने के धन्धे का पता चलेगा। आये दिन पुलिस इस प्रकार के मुकदमे चलाया करती है।

लूट-खसोट

अपने सीधेपन के कारण, गोंड़ लोग बहुत लूटे जाते हैं। लोकोक्ति है—

"गोंड़ बराबर दाता नहीं, बिन जूता के देता नहीं" अर्थात् आम धारणा यही है कि गोंड़ पर अत्याचार करते रहो, उसे लूटते रहो।

प्रश्न—कौन लूटता है, और किन तरीकों से लूटता है?

उत्तर—सब लूटते हैं, और सब तरीकों से लूटते हैं।

इतिहासकारों ने झूठा इतिहास लिख कर लूटा। नृतत्व शास्त्रियों एन्थ्रोपोलाजी लिख कर लूटा। व्यापार में रोजमर्रा गाँव का बनिया लूटता है, तेली, कलार, तमेरा, सुनार कुछ भी हो। अपने देहात में बिना पैसा के लकड़ी पाने वाला देहाती जब शहर में आता है तो उसको लकड़ी खरीदने के पैसे अखर जाते हैं। दूकानदार अपने घर से एक दो रुपयों की लकड़ी और राशन मुफ्त देता है। सौदे में दस बीस काट लेता है। दस पचीस उस देहाती को नहीं अखरते। वह नहीं समझता। मुफ्त की लकड़ी ही समझता है। एक दूकानदार का तकिया कलाम है "चुन के बिडा पीले बेटा" जैसे बड़ा त्याग कर रहा हो।

सबसे अधिक लूट, अदालतों में और सरकारी दफ्तरों में होती है। कोई भी अत्याचारी मैत्री या सेवा का आडम्बर रचकर, और शासन की

कृपा प्राप्त कर, ऐसा इकरार सामने लाता है, जो इकरार कानून के शब्दों में न्याय संगत दिखता है। अतः शासकीय और अदालती मान्यता सुलभ हो जाती है। अत्याचारी सदैव शासन का पक्षकार होता है। इस तरफ कम लोगों का विचार जाता है कि इकरार के दोनों पक्षों के बीच में समझदारी का विशाल अन्तर है। एक पक्ष सीधा, अपढ़, नासमझ आदिवासी होता है। दूसरा पक्ष चुस्त, चालाक और कानून दां (कोर्ट वर्ड सरीखा) होता है। कानून के व्याकरण के अनुसार ऐसे इकरार जन्म से अवैध होते हैं। केवल शब्दों को मान्यता देने वाले व्यक्ति, भूल से या स्वार्थ से, ऐसे इकरारों को वैध कहते हैं या शंका करके भी कानून के शब्दों के सामने झुककर लाचार हो जाते हैं।

ऐसी मनोवृत्ति का स्पष्टीकरण मध्य प्रदेश की विधान सभा ने कानून नं० ११ सन् १६५६ में किया है। वह कानून आदिवासियों के दरख्तों में अधिकारों की रक्षा करता है। उसकी धारा ६ के अनुसार उसमें पुलिस हस्तक्षेप का विधान है और धारा ८ के अनुसार छः माह तक के सपरिश्रम कारावास का तथा दो हजार रु० तक के अर्थ दण्ड का विधान है। इस कानून के बनाने में भी मध्य प्रदेश ने वही सही रुख अपनाया है कि आदिवासी की बुद्धि अपरिपक्व है, अतएव उसके स्वार्थों की रक्षा करना सरकार का कर्तव्य हो जाता है। ऐसे रुख के लिये मध्य प्रदेश की सरकार को बधाई देना चाहिये। और केन्द्रीय सरकार को बधाई देना चाहिये जिसने इस कानून में राष्ट्रपति की स्वीकृति ता० २१, ६, १६५६ को दिला दी।

आश्चर्य की बात तब होती है जब आदिवासियों को जमीन और दरख्त के तबादले के लिये अपरिपक्व बुद्धि का मानते हुए, केन्द्रीय सरकार या विधायक गण, धर्म के परिवर्तन के लिये पूर्ण परिपक्व बुद्धि का मान लेते हैं। धर्म परिवर्तन के लिये भी क्यों नहीं उस आदिवासी को अपरिपक्व बुद्धि का माना जाता ?

लाचारी से कहना पड़ता है कि सब लूटते हैं और सब तरीकों से लूटते हैं। धर्म की, धन की, शील की, सब की लूट हो रही है। चरित्रवान अधिकारियों के जीवन में संकटों की भरमार है। चरित्रहीनों की पांचों अँगुली घी में हैं। बेगार प्रथा का आधुनिक नाम, सहयोग, जन सम्पर्क और श्रमदान हो रहा है। आदिवासी जनता का विशेष सम्पर्क

सरकार के पाँच विभागों से है। पटवारी, पुलिस, वन, आबकारी, और शिक्षा। मण्डला जिला के भीतरी भागों का जिनको अनुभव है वे इतने में ही सब समझ जावेंगे। मैं अनुभव की बातें कह चुका। तर्क से कह सकने में असमर्थ हूँ। मेरी असमर्थता मेरा दोष है। जिसको वस्तुस्थिति जानना हो तो स्वयं अनुभव करलें। या मेरे इशारे को समझ जावें। अत्याचार के अस्तित्व में और अत्याचारी की समृद्धि में देश का अकल्याण अवश्यम्भावी है। मर्यादा है कि जहाँ अपूज्य की पूजा होती है, जहाँ पूज्य की पूजा में व्यक्तिक्रम होता है. वहाँ दुर्भिक्ष मरण, और भय, ये तीन बातें होती हैं।

मण्डला में एक गोंड़ है जो अपने १०-१२ वर्ष के पुत्र के साथ दर-दर भीख माँगता है। जटा बढ़ा ली है। तिलक लगाने लगा है। उसकी स्त्री, धन, भूमि सब लुट चुका है। दुःख के कारण उसकी आँखें जाती रहीं। वह पैदल भीख मांगते-मांगते भोपाल गया था। उसकी किसी ने नहीं सुनी। इसी प्रकार वह दिल्ली गया। वह कहता है कि उसने पं० नेहरू के दरवाजे में तीन दिन अनशन किया। सेक्रेटरी कोई श्री खन्ना ने उसका अनशन तुड़वाया। उसकी बात प्रेम से सुनी। उसको मण्डला वापिस भेजा। उसके संबन्ध में ऊँचे अफसरों से पूछने पर पता चला कि उसके साथ घोर छल किया गया है। पर अफसर लोग कानून की कमजोरियों के कारण लाचार पड़ जाते हैं।

लूट-खसोट का एक और रूप चाय पत्ती के लिये आसाम में कुली ले जाने वालों का होता है। गोंड़, बैगा, और बोल अपने स्वस्थ शरीर के कारण आसाम की जलवायु के दोषों को सह सकते हैं और अज्ञानता के कारण अत्याचार सहन कर लेते हैं। कुली ले जाने वाले चपतिया सरदार बहुत से गृहस्थों की सुख शान्ति नष्ट कर डालते हैं। जाने वाले कुली का नाम, पिता का नाम, जाति, गांव सब कुछ का कुछ लिखाकर उसका पता नहीं लगने देते। सब कानून धरे रह जाते हैं। उपाय सरल है कि एक ही डिपो से कुली जावें। सब कुलियों का फोटो लिया जाय। ऐसे फोटो कि जिससे पहचाने जा सकें। अलग-अलग फोटो ठीक होंगे तो तलाशने वालों को न तो कई डिपो में भटकना पड़ेगा और न बदले हुए नामों से भ्रान्ति हो सकेगी। पता लग जाने पर भगाने वाला या भगाने वाली. सरदार को दण्ड दिया जा सकेगा।

चाय पत्ती वाली विदेशी और स्वदेशी कम्पनियाँ भी कहती होंगी कि हम सेवा करते हैं।

चरित्र

गोंडों का चरित्र ऊंचा होता है। सचाई, ईमानदारी, सीधापन, प्रसन्नता, निश्चिन्तता आदि उनके गुण हैं। क्षमा, उदारता, स्वाभिमान आदि गुण राजवंश की संस्कृति के साक्षी हैं। जेठ और बहू (भयोह) का परहेज बहुत अधिक मानते हैं।

स्वाभिमान के विरुद्ध या कुल कलंक की बात में आन्दोलन या क्रोध-प्रदर्शन नहीं होता। कतल भले हो जावे। असत्य के प्रमाण चुनाव के समय ही और नेतागीरी के अमरबेल में ही मिलते हैं। बहुत आदिवासियों में धनुष-बाण का प्रयोग होता है। प्रयोग करने वालों में से अधिकांश बाण चलाते समय अँगूठे का प्रयोग नहीं करते। अँगूठा गुरु-दक्षिणा में द्रोणाचार्य को एकलव्य ने दे दिया था। इसलिए बिना अँगूठा लगाये बाण चलाते हैं। प्राचीन वाग्दत्त मर्यादा का पालन होता आ रहा है और होता जावेगा।

गांव की आबादी का स्थानान्तर करने के पहिले नये स्थान में "थून" देकर एक साल तक सगुन विचारते हैं। थून देने के बाद साल भर तक सब अच्छा अच्छा रहा, सब सुखी रहे, कोई शोचनीय घटना, नहीं हुई, फसल अच्छी आई तो समझ लेते हैं कि नया स्थान शुभ है और नये स्थान में सबों के मकान बनकर आबादी हट जाती है। साल भर में अशुभ घटना होने से नये स्थान में मकान नहीं बनाते। फिर से बैगा दैवज्ञ की सलाह से थून देने के लिये दूसरा स्थान चुनते हैं।

स्त्री यदि दूसरे पति के पास चली जावे तो पहिले पति को अधिकार रहता है कि दूसरे पति से शादी का खर्चा "दावा बूंदा" ले लेवे। इस प्रथा को स्वीकारोक्ति माना जाता है। दूसरा पति जाति वाला ही होता है। जाति से बाहर वाले दूसरे पति से दावा बूंदा नहीं लिया जाता। तब स्त्री का और विजातीय द्वितीय पति की खैर नहीं। दावा बूंदा आपसी बातचीत में तय हो जाता है। कम अवसरों में दीवानी के दावे होते हैं। दावा करना ही पड़ा तो फौजदारी कानून की धारा ४९७ का आश्रय लिया जाता है। अदालती खर्चा कम लगता है और राजी

नामा का प्रावधान है। केवल अदालती आंकड़े देखने वाले लोग निष्कर्ष निकाल लेते हैं कि ४६७ के मुकदमे बहुत होते हैं। अतः अनैतिकता अधिक है। ऐसे निष्कर्ष भ्रमोत्पादन करते हैं। मुकदमों से अनैतिकता सिद्ध नहीं होती। अनैतिकता उसे कहते हैं जो कृत्य समाज की मर्यादा के बाहर हों। मुकदमों से समाज में प्रचलित अधिकारों की पूर्ति होती है। अधिकार प्राप्त करने का सरल तरीका मात्र है।

कानूनी आंकड़ों में जंगल और आबकारी कानूनों के विरुद्ध आचरण करने के मुकदमे बहुत आते हैं। केवल आंकड़े देखकर निष्कर्ष निकाल लिया जाता है कि गोंड़ लोग कानून के विरुद्ध बहुत आचरण करते हैं। वस्तुस्थिति बिलकुल विपरीत है कि गोंड़ लोग कानून बहुत मानते हैं। जंगल और अधिकारी कानूनों के उल्लंघन का दोष गोंड़ों पर नहीं है। कानूनों का प्रयोग करने वाले छुटभइया अधिकारियों पर है। कुछ अंश तक कानून पर भी दोष है। छुटभइया अधिकारी अत्याचार करते हैं, पिटते हैं, खुद सरकार का प्रतिष्ठित बनना चाहते हैं, ह्वाइट मार्क पा जाते हैं। और गोडों को अधिक भयभीत करने के लिये उन पर बात-बात में ३५३ आदि बड़ी धारा लगा कर अपना आतंक जमाते हैं। सज्जन अधिकारियों के रहते ऐसे उपद्रव नहीं होते। कानून पर दोष इस प्रकार हैं कि कानून बनाने वाले गोंड़ समाज की प्राचीन रहन-सहन पर विचार बिना किये ही कानून बना डालते हैं। अनुभव रहित कानूनों को जनता पर थोप देते हैं। समाज नहीं बदलता। या धीरे-धीरे बदलता है। कानून और सरकारी नीतियां जल्दी जल्दी बदलती हैं। कानून बनाने वाले यदि जनता के सहयोग से जनता को मित्र बनाकर जनता की तकलीफों को ध्यान में रखकर कानून बनावें तो कानूनों की प्रतिष्ठा कायम रहे। जनता तब कानून बनाने वालों को पूर्ण सहयोग देगी और कानून का पालन करेगी। वन-विभाग के और आबकारी कानूनों में सहानुभूति पूर्ण दृष्टिकोण में आमूल परिवर्तन की आवश्यकता है। स्वतंत्र देश में कानून थोपे न जावें वरन् जनता के सहयोग से बने। जिनके लिये कानून बनता है उनकी स्थिति को ध्यान में रख कर कानून बनाये जावें।

सुगम सहयोग

केन्द्रीय और राज्य सरकारों की प्रबल इच्छा है कि आदिवासियों का कल्याण हो और जल्दी हो। सरकारों की इस शुभेच्छा को केवल

पढ़े-लिखे लोग जान पाये हैं। कल्याण-योजनाओं को भी न्याय की तरह ऐसी दिखना भी आवश्यक है कि कल्याण की योजना काम कर रही है। हर समाजकर्त्ता का अनुभव है कि आदिवासियों में कुछ ऐसी धारणाएँ जम चुकी हैं कि सरकारें केवल कहती हैं, कुछ करती नहीं। अतएव सरकारों को अपने ही हितों में अपनी सदिच्छाओं का प्रदर्शन करना आवश्यक है। इस क्षेत्र में मेरे कुछ सुझाव हैं।

(१) जब कोई अफसर अपने कुकृत्यों के कारण सरकार की आँखों में खटकने लगता है, तो सरकार उसको आँख से ओझल करना चाहती है। सरकार उस व्यक्ति को पिछड़े क्षेत्र में भेज कर अपना सिर दर्द कम करती है। कुकृत्य वाले अफसर को खराब जलवायु में रहने से दण्ड मिलता है। इस गलत नीति से पिछड़े क्षेत्रों के निर्दोष लोगों को खराब अफसर के त्रास का दण्ड अकारण भोगना पड़ता है। प्रायः हर पिछड़ा क्षेत्र (Punishment district) दण्ड क्षेत्र कहा जाता है। पिछड़े क्षेत्र में आकर कुकर्मी अफसर अधिक कुकर्मी हो जाता है। पिछड़े क्षेत्रों में चरित्रवान् अफसरों को भेज कर सरकार बिना किसी विशेष खर्च के पिछड़े क्षेत्रों की अमूल्य सेवा कर सकती है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि कोई चरित्रवान अफसर सरकार के किसी व्यक्ति का कोपभाजन बन कर पिछड़े क्षेत्र में आ जाता है। वह सज्जन जनता का अति-कल्याण करता है।

(२) इसी प्रकार नये अफसरों को नौकरी के आरम्भ में तालीम (ट्रेनिंग) के लिये पिछड़े क्षेत्रों में भेजने से कभी-कभी भूल हो जाती है। इस नीति का दूसरा पहलू भी है कि नये खून में सेवा की मात्रा अधिक होती है।

(३) हर समाजकर्ता का, चाहे वह सरकारी नौकरी में हो, चाहे राजनीति में चाहे केवल समाज सेवक हो, अनुभव है कि मण्डला जिले की दो विशेषताएँ हैं—एक यह कि आदिवासियों पर अत्याचार होता है, दूसरा यह कि जिलाध्यक्ष के पास शिकायत के या गुहार के बहुत से आवेदन पत्र आते हैं। उन्नत क्षेत्रों में स्थिति दूसरी हैं। न तो अत्याचारों की बहुतायत है और न आवेदन पत्रों की झूठी शिकायतों के लिये उचित गुंजाइश दे चुकने पर भी प्रश्न गम्भीर बना रहता है। इस प्रश्न पर मेरा सुझाव इस प्रकार है:—हर पिछड़ी तहसील के लिये सरकार एक स्पेशल अफसर नियुक्त करे। स्पेशल अफसर का काम इतना

ही हो, कि आदिवासियों की अत्याचार वाली शिकायतों की जाँच करके जिलाध्यक्ष को प्रतिवेदन दे। प्रतिवेदन में कानून की शर्तों के बजाय औचित्य पर ध्यान केन्द्रित रहे। स्पेशल अफसर पर और काम न लादे जावें। झूठी शिकायतों को निरुत्साहित करने के लिये स्पेशल अफसर झूठा शिकायत करने वालों को तथा झूठी शिकायतों के लिये भड़काने वालों को दण्ड भी दे। वह दलबन्दी के प्रभाव में न आवे। वह अत्याचारी के लिये वज्रादपि कठोर हो। त्रस्त के लिये मृदुल कुसुमादपि हो। तब कहीं, पिछड़े लोगों का शासन पर विश्वास जमेगा। तब वे समझेंगे कि उनको स्वराज्य मिला है। तब वे सरकार के लिये शरणम्गच्छामि सोचने लगेंगे। अत्याचारी त्राहि-त्राहि पुकारने लगेगा। अत्याचारी का तिल मिलाना ही शासन का गौरव है। स्पेशल अफसर में समाज सेवा की वृत्ति हो। उसमें पत्रकार की योग्यता हो, उसे दण्ड देने का अधिकार हो इस नीति से त्रस्त को राहत मिलेगी और समाज सुधरेगा। स्पेशल अफसर त्रस्त से स्वागत की आशा न करे और अत्याचारी का स्वागत स्वीकार न करे। यदि स्पेशल अफसर अत्याचारी का अतिथि बन गया, तो न्याय धरा रह जावेगा। साल दो साल के लिए एकाध स्थान में ऐसे परीक्षण से अनुभव हो जाएगा। सरकार के पास विश्वासपात्र अफसर अवश्य होंगे। न हों, तो किसी समाज-सेवी-संस्था से डेपुटेशन में लिये जा सकते हैं।

(४) सम्राट् अशोक की लाट पर सिंहों की मूर्ति वाला भारत सरकार का राजचिन्ह बहुत पवित्र है। भारत के नोटों में वही चिन्ह है। वह ही राजचिन्ह शराब की बोतलों में भी देखा जाता है। चाहे शेर छाप हो चाहे हिरन छाप। राजचिन्ह का यह अपमान सरकार बन्द कर सकती है। जनता की श्रद्धा का दुरुपयोग हो रहा है।

(५) मण्डला जिला के बैगर और गोंड़ कृषक सरकार से विशेष पुरस्कार के अधिकारी हैं। सरकार के सामने सही दृष्टिकोण पेश करना है। मण्डला जिला के आदिवासी रद्दी पथरीली भूमि में कमजोर बैलों की सहायता से भूमि को केवल खरोंच कर कोदों, कुटकी, रमतिला, आदि उत्पन्न करते हैं। वैसी स्थिति में कृषि विद्या के आचार्य और कृषि-कला के पण्डित कुछ भी उत्पन्न करने में अवश्य ही अपनी असमर्थता प्रगट करेंगे। आंकड़ों को देखने से अधिक आवश्यक है पुरुषार्थ की तरफ

देखना। इस पुरुषार्थ के लिये आदिवासी कृषकों को सरकार विशेष पुरस्कार देने की योजना बनावे।

(६) बालकों की पाठशाला में दीवार के अन्दर बी० सी० जी० के टीके लगते हैं। दीवार के बाहर क्षयरोग के कीटाणु बिकते हैं। किसी भी शहर और कस्बे में बीच की छुट्टी के समय खोनचे वाले उबले बेर और अधसड़ी सामग्री बेचते देखे जा सकते हैं। इस कुव्यवस्था का दोष सब पर है। सरकार, नगरपालिका, ग्राम पंचायत आदि। ऐसे खोनचे वालों को कानून टीबी फैलाने का अधिकार नहीं देता। किसी नेता के द्वारा इसको रोकने के शुभ अभियान का उद्घाटन आवश्यक है।

(७) हर पाठशाला के क्रीड़ा-क्षेत्र में पशु चरते हैं। कहीं सर्वसाधारण के, कहीं प्रधान शिक्षक के, कहीं स्कूल कमेटी के। अध्यक्ष की भावना है कि गौ के चरने में पुण्य होता है। धीरे-धीरे भैंस, घोड़ा, गदहा और सुअर भी चरने लगते हैं। जिन बालकों का क्रीड़ा-क्षेत्र है, बालकों को अधिकाधिक जल मिश्रित दूध मिलता है स्वार्थमय पुण्य को मर्यादित करने का समय आ चुका है। गौ चरती हैं तो भैंस, पड़ा घोड़ा, गदहा, बकरा, सुअर सभी चरते हैं।

(८) सांस्कृतिक वस्तुओं का संग्रहालय कालपी, बोंदर, मोतीनाल या मण्डला में आरम्भ किया जा सकता है। जिसमें आदिवासी जीवन की आवश्यक वस्तुओं का संग्रह हो। छोटे रूप में आरम्भ होगा। भवन उद्घाटन और अनुदान की बात शुरू में करने से कुछ नहीं हो सकेगा। वहाँ वस्त्र, फांदा, तीर कमान, मछली मारने के जाल, आभूषण सज्जा, कृषि सामग्री, शृंगार प्रसाधन, मांदर टिमकी, अलगोजा डंडाबांसुर आदि संग्रह पहिले हो। बाद में मनुष्यों की मृण्मयी मूर्ति बना कर सामग्रियों का उपयोग दिखाया जाय। जिससे एक ही स्थान में बाहरी जिज्ञासुओं को आदिवासियों के वास्तविक जीवन की उचित और सच्ची झाँकी देखने को मिल सके।

(९) दो-तीन जिलों के संयुक्त प्रयत्नों से देशी और विदेशी भ्रमण यात्रियों को आकर्षित करने के लिये विज्ञापनों के कई तरीके अपनाये जावें। एक जिला के स्तर पर कार्य कठिन होगा और प्रान्तीय स्तर की आशा करने से खींचा तानी मच जावेगी। विज्ञापनों में भिन्न-भिन्न रुचियों का ध्यान रखनेसे प्राकृतिक दृश्य, वनस्पति, वन्यजन्तु पुरातत्व, उद्योग,

खनिज, अमरकंटक भेड़ाघाट आदि से सफलता की आशा है जनपदों का और मोटर कम्पनियों का सहयोग आसानी से मिल सकेगा। शिकार कराने वाली संस्थाएँ सफलतापूर्वक अपना धन्धा चला रही हैं।

(१०) शासन की सुव्यवस्था के लिये हर दूर के पुलिस थाने से सम्पर्क स्थापित करना आवश्यक है। जिससे अपराधी आसानी से भाग न सकें। हर थाने में वायरलेस टेलीफोन लगाना अच्छा होगा।

(११) जिस तरह लोक-कर्म-विभाग के विश्रान्ति घरों में विश्राम करने वालों को ऊँचे अधिकारियों की आज्ञा आवश्यक नहीं है उसी तरह की सुविधा वनविभाग भी देवे। ताकि वनविभाग के विश्रान्ति घरों में भूले भटके यात्री बिना डी० एफ० ओ० की आज्ञा के उचित शुल्क देकर विश्राम कर सकें।

(७) देवधामी, तीन वक्तव्य, स्पष्टीकरण, जिले की बातें, निवेदन

देवधामी—गोंड लोग बहुत से देवी देवताओं को मानते हैं। भय हो, और दैवी कोप शान्त करने के लिये तथा परम्परा निबाहने के लिये मानते हैं। अज्ञानता के कारण, या अनिष्ट के भय से हर प्राचीन वस्तु को देवता या पाट मान लेते हैं। उनमें यदि भय न होता तो आज हम लोगों को प्राचीन अवशेष मूर्ति आदि न मिल पाते। कई गाँवों में उखरी पाट या बिलना पाट की पूजा होती है।

मोटे हिसाब से देवधामी को दो भागों में बाँटना ठीक होगा। एक भाग वह जिसे सब गोंड़ पूजते हैं, जैसे बड़ा देव ठाकुरदेव निंगोदेव नारायणदेव आदि। दूसरा वह भाग जो खास कुटुम्ब के देव होते हैं जिनको उसी कुटुम्ब वाले पूजते हैं अन्य नहीं। दोनों भागों का थोड़ा वर्णन इस प्रकार है।

"*बड़ादेव*"—अर्थात् महादेव। गोंड़ शैव हैं लिंगार्चन का प्रचार कम है। यदि गोंड़ों का आदि निवास गोदावरी के डेल्टा में मान लें तो वहाँ के लिंगायतों के अनुसार गोंड लोग शैव मत अभी मानते जाते हैं। मूलस्थान की प्रथा है।

"*निंगोदेव*"—या निंगोगढ़ का वर्णन काल्पनिक नहीं है। अस्तित्व

का परिचय परिशिष्ट में है। लिंगायतों को क्या निंगोगढ़ का पता है या नहीं।

"ठाकुरदेव"—की निराकार कल्पना है। सर्वव्यापी है। अतः हर गांव में स्थान होता है न मूर्ति होती है और न वेदी होती। एक तरफ गोंडों को बहुधर्मी मानने से बहुदेव पूजक कहते हैं पर दूसरी तरफ निर्गुण निराकार ठाकुरदेव की ऊंची कल्पना के कारण गोंड़ों की किसी ने स्तुति या प्रशंसा नहीं की। गोंड समाज ने बहुदेवतावाद का समन्वय ठाकुर-देव की निराकार कल्पना से किया। कर्मकांडियों ने विश्वेदेवा से समन्वय किया। वेदान्तियों ने वही समन्वय निर्गुण ब्रह्म से किया।

"नारायणदेव"—से विष्णु भगवान नहीं समझ लेना है। कई ने विष्णु भगवान समझा, कई ने नारायणदेव बने भगवान सूर्य नारायण का संक्षिप्त रूप समझा है। सूर्य पूजा प्रकृति के अंश की पूजा है। वैदिक काल से प्रचलित है। गोंड़वाना में सूर्य की बहुत अधिक मूर्तियाँ हैं। ध्यान वही शास्त्रीय रथ का एक चक्रा सात घोड़े लंगड़ा सारथि किरणें आदि। सूर्य पूजा में भास्कराचार्य के और कोणार्क मन्दिर के निर्माण के समय में वृद्धि हुई। उड़ीसा के कोणार्क में कृष्ण के वंशज के महारोग का इलाज हुआ था। गुजरात और उड़ीसा के बीच रास्ता में पड़ने से गोंड़वाना में सूर्य पूजा का प्रचार बढ़ा। कोई लोग अज्ञानतावश अपनी घरू पूजा में नारायणदेव को मुर्गा का रक्त और शराब चढ़ाते हैं। ऐसे उदाहरण अत्यन्त कम सुने गये। कई स्थानों में सूर्य मूर्ति और जैन मूर्ति पास पास मिलती हैं। सहअस्तित्व रहा होगा।

"शक्तिपूजा"—बहुत प्रचलित है। देवी के उपासक को पंडा कहते हैं। प्रायः हर गांव में एक पंडा होता है। और एक मढ़िया होती है। रानी दुर्गावती को भगवती दुर्गा मानते हैं। चौगान की शक्ति पूजा में सात्विक आराधना है। मड़ई में भी देवी की आराधना होती है। बंगाल आसाम की शक्ति पूजा में शास्त्रीय आराधना है। "साकत" (शाक्त) पनवा में आहार-विहार की आजादी है। कबीर मत ले लेने से आजादी समाप्त हो जाती है। स्थान भेद और जाति भेद के अनुसार शाक्त पूजा की भिन्न-भिन्न परम्परा है। शक्ति पूजा का प्रभाव "गनपती-माता" शब्द से स्पष्ट हो जाता है कहीं-कहीं ऐसी अज्ञानता का प्रयोग भी सुनने में आता है। इस प्रकार के देव धामियों को सब वर्ग पूजते हैं।

कौटुम्बिक देवता भी होते हैं। अपने अपने कुल की प्रथा होती है। एक कुटुम्ब में मकान की दीवारों को गोबर से ही पोतते हैं। चूना या छुई मिट्टी का प्रयोग निषिद्ध है। एक कुटुम्ब चार देवता पूजता है। तो दूसर चार देवता वाले को सगोत्र मान कर विवाह संम्बन्ध नहीं करेगा। पांच देवता वाले सारस को पूजते हैं। छः देवता वाले शेर को पूजते हैं। सात देवता वाले नेवला को पूजते हैं। टेकाम और मरकम गोत्र वाले कछवा को पूजते हैं। जो कुटुम्ब जिसको पूजता है, उसको अपना पूर्व पुरुष मान कर देखने पर प्रणाम करता है। इस सब का अर्थ हुआ कि टेकाम और मरकाम गोत्र वाले, भगवान् के कूर्मावतार के उपासक हैं। शेर को पूजने वाले, नृसिंहावतार के उपासक हैं। नेवला को पूजने वाले, नागों से द्रोह को निभाये जा रहे हैं। इस कुटुम्ब का कभी नागवंशी क्षत्रियों से युद्ध हुआ होगा। बाहरी आदमी इन बातों को समझने का प्रयत्न नहीं करते। इन बातों में विशाल अध्ययन की और गहरे खोज की सामग्री भरी पड़ी है। ऐसा अध्ययन सचमुच में एनथ्रोपोलो जी कहलावेगा प्रचलित साहित्य चटपटा, मसालेदार, विषयवासना पूर्ण, और विदेशों में भारत की उपकीर्ति करने वाला है। इस प्रकार के साहित्य को एन्थ्रोपोलोजी समझ लेना आत्मवन्चना है।

कोई कोई तेवहार, तिथि चूक चुकने के बाद भी मनाये जा सकते हैं। जिसे कर्मकाण्ड की भाषा में "अतिक्रान्त पर्व" कहते हैं। गोड़ों में ऐसी छूट है। जैसे नवरात्र के दिनों में किसी के घर में, कोई बीमारी रही कोई मरणाशोंच हो गया, या किसी प्रकार की अव्यवस्था हो गई, तो उस घर वाले बाद में भी अपनी सुविधा के अनुसार नवरात्र मान कर व्रत करेंगे और जवारे बो लेंगे। ऐसी छूट महालक्ष्मी पूजा और दिवाली पूजा में भी है। होली मना में छूट नहीं है। ऐसा नहीं होता कि आज हमने होली मानी कल आपने मानी। इस रियायत की प्रथा से त्योहार मानने में सुविधा होती है और त्योहार का अनध्याय नहीं होता। होली में बाजारू रंग के बदले में पलाश के फूलों का रंग काम में लाया जाता है।

तीन वक्तव्य

जनतन्त्र राज्य प्रणाली में जनता के प्रतिनिधि का सर्वाधिक महत्व होता है। वह तो जनता की आवाज को बुलन्द करने वाला, जनता का मुख होता है। मण्डला जिला और आस-पास की जनता की तरफ से संसद के लिये चुने हुए प्रतिनिधि (एम० पी०) सेठ गोविन्ददास हैं। अपने चुनाव क्षेत्रमें ईसाई मिशनरियों की हरकतों को उन्होंने समझा और जनता की धार्मिक भावनाओं पर पड़ने वाले आघातों का अनुभव किया। सेठ जी के कोमल हृदय को चोट लगी। सेठ जी का वक्तव्य प्रकाशित हुआ। वक्तव्य इस प्रकार है।

जबलपुर के हिन्दी दैनिक "नव-भारत" दिनांक चौबीस फरवरी १९६० के अंक में प्रसिद्ध राष्ट्रवादी नेता सेठ गोविन्ददास एम० पी० के संबन्ध में प्रकाशित हुआ कि—

"देश में मिशनरी सोसायटियों का कुचक्र
सेठ गोविन्ददास द्वारा भण्डाफोड़

नई दिल्ली बुधवार। संसद सदस्य सेठ गोविन्ददास ने धर्म-परिवर्तन-निषेध संबन्धी विधेयक पर लोक सभा में भाषण करते हुए जानकारी दी थी कि यह धर्म-परिवर्तन आध्यात्मिक विचारों से नहीं हो रहे हैं। इसके लिये एक निश्चित योजना बनाई गई। यह इक्का-दुक्का इधर-उधर काम करने वालों का काम नहीं है। इसके लिये एक निश्चित योजना बनी है और वह बनी है हमारी आजादी के बाद सन् १९४८ के जून मास में जो फैलोशिप आफ इन्टरनेशनल मिशनरी सोसायटी की कान्फ्रेन्स हुई थी उसमें अलेक्जेंडर मकलेद ने बोलते हुए कहा था कि अभी हाल में हमारे भारतीय ईसाई नेताओं ने एक योजना बनाई है कि जिसके अन्तर्गत छै लाख भारतीय ग्रामों का अगले दस वर्षों में ईसाई बनाने का संकल्प किया गया है।

हमारे पास भौतिक साधनों की कमी नहीं है। इसके अतिरिक्त आध्यात्मिक साधनों का भी अभाव नहीं है। इसके द्वारा हम धर्म-परिवर्तन के कार्य को भली प्रकार करने में समर्थ होंगे। सेठ जी ने कहा यह सारे का सारा कार्य एक निश्चित योजना बना कर किया जा रहा है और वह योजना एक इतने बड़े आदमी ने सन् १९४८ में हमारी

स्वतंत्रता के बाद सारे देश के सम्मुख रखी थी। जिसके लिये विदेशों से रुपया आता है।"

इस वक्तव्य के दूसरे दिन, अर्थात् दिनांक पच्चीस फरवरी १९६० के हिन्दी दैनिक "नई दुनिया" जबलपुर में डिंडौरी निवासी श्री मोहन सिंह मरावी एम० ए०, एल० एल० बी०, वकील का वक्तव्य प्रकाशित हुआ है। श्री मरावी राजगोंड जाति के मण्डला जिला में एक ही वकील हैं। किसी राजनैतिक दल में नहीं हैं। इनका मरावी गोत्र ही गढ़ा मण्डला के राजाओं का गोत्र है। वक्तव्य इस प्रकार है।

"धर्म-परिवर्तन के लिये प्रलोभन

डिंडौरी तहसील के गोंड समाज के प्रतिष्ठित सदस्य एवं प्रमुख आदिवासी नेता श्री मोहनसिंह मरावी वकील ने निम्न वक्तव्य हमारे प्रतिनिधि को प्रकाशनार्थ प्रेषित कर ईसाई मिशनरी द्वारा जारी धर्म-परिवर्तन कार्य की ओर शासन का ध्यान आकर्षित किया है जिसका सारांश निम्नानुसार है।

"मुझे अपने दौरे के सिलसिले में भानपुर जाने का अवसर मिला। यह क्षेत्र पूर्णतः गोंड आदिवासियों का है जो बहुत गरीब हैं। उनकी इस गरीबी का फायदा उठाकर ईसाई लोग उनका धर्म परिवर्तन कराते हैं। सोने के मेडिल, हार व अन्य कीमती चीजें उन्हें दी जाती हैं। ईसाई लोग आदिवासियों के देवी देवताओं का अपमान करने से भी नहीं चूकते। ऐसे उदाहरण सुनने को मिले हैं कि वे आदिवासियों से कहते हैं कि वे देवी देवताओं को दूर कर देवेंगे अगर वे ईसाई धर्म में शामिल हो जावेंगे। उसके पश्चात् देवी देवताओं की मूर्ति एवं त्रिशूल आदि को हटा दिया जाता है। ईसाइयों के इस कुकृत्य से अवश्य ही गोंड आदि-वासियों के धर्म एवं संस्कृति को धक्का लगता है एवं यह हमारी धर्म और संस्कृति का अपमान है, इस क्षेत्र में बड़े पैमाने में आदिवासी जनता को ईसाई बना डाला गया है।

सरकार का आवश्यक कर्तव्य है। वह इस ओर ध्यान दे वरना यहाँ एक भी आदिवासी मौलिक रूप से नहीं रह जावेगा। यहाँ की जनता को शिक्षा और आर्थिक सहायता की निहायत जरूरत है। इसके अतिरिक्त श्री मरावी वकील ने इस क्षेत्र में आदिम जाति-कल्याण-विभाग से स्कूल

खोलने का अनुरोध किया है। ताकि जनता ईसाइयों के भ्रामक प्रचार से अपनी रक्षा कर सके।"

इन दोनों वक्तव्यों के एक सप्ताह पश्चात्, दिनांक चार मार्च १९६० को लोक सभा ने श्री प्रकाशवीर शास्त्री का प्रस्ताव अमान्य कर दिया। प्रस्ताव था कि ईसाई धर्म के प्रचारकों पर कड़ी नीति बरती जावे। वे पिछड़ी हुई जातियों के धर्म-परिवर्तन करने के लिये धार्मिक विश्वास के स्थान में अन्य भिन्न तरीकों से काम लेते हैं। प्रस्ताव के विरुद्ध भारत सरकार से गृह मन्त्रालय के मंत्री श्री बी० एन० दातार ने वक्तव्य दिया था। उनके वक्तव्य के पश्चात् श्री प्रकाशवीर शास्त्री का प्रस्ताव गिर गया। श्री दातार के वक्तव्य का सारांश इस प्रकार है :—

"धर्म परिवर्तन रोका जाना भारतीय संविधान के विरुद्ध है। ईसाई मिशनरियों को धर्म प्रचार का अधिकार संविधान की धारा २५ (१) से पूरा-पूरा मिलता है। ऐसा कहना सरासर झूठ है कि बड़े पैमाने में धर्म परिवर्तन हो रहा है। इक्का-दुक्का चाहे होते हों। धर्म का कोई मूल मानना ठीक नहीं। धर्म का प्रचार विश्व में सर्वत्र हो सकता है। पिछड़ी जातियां स्वयं ऐसा कानून पसन्द नहीं करतीं कि जिससे उनके धर्म की रक्षा हो। धर्म की रक्षा करने वाले कानून बनाने की कोई आवश्यकता नहीं है। राष्ट्र विरोधी हरकतों पर कार्यवाही करने के लिये सरकार के पास यथेष्ट शक्ति है। विदेशी मिशनरियों की संख्या सत्रह सौ से तेरह सौ रह गई है। ऐसा कहना गलत है कि वे सब के सब कानून के विरुद्ध कार्य करते हैं। मिशनरी के लोग अति दुर्गम स्थानों में जाकर जन सेवा करके हजरत ईसा का सन्देश फैलाते हैं। संसार को मिशनरियों की सबसे बड़ी देन जन सेवा है। जन सेवा के कारण मैं मिशनरियों का अभिनन्दन करता हूँ। मिशनरियों की सामूहिक निन्दा अनुचित है। जब सरकार के पास मिशनरियों की कोई शिकायत आती है तब सरकार अनिवार्य रूप से जांच कराती है। सरकार के पास राष्ट्र विरोधी कृत्यों के लिये मिशनरियों के विरुद्ध कार्यवाही कर सकने के अधिकार हैं। भारत में आने पर अपने कार्यों के लिये मिशनरियों को भारत सरकार से मान्यता प्राप्त करनी पड़ती है।"

इस प्रकार केवल दस दिनों के भीतर उपरोक्त तीन वक्तव्य प्रकाश में आये।

स्पष्टीकरण

उपरोक्त तीनों वक्तव्य अलग-अलग विचारधाराओं के हार्दिक प्रदर्शन हैं। सब एक से नहीं हैं। उनमें स्वार्थों का संघर्ष है। उस प्रच्छन्न संघर्ष का मनोवैज्ञानिक स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

केन्द्रीय शासन की अपनी कठिनाइयाँ हैं। केन्द्रीय शासन के पास बहुत शक्ति है। शक्ति का उचित प्रयोग कर सकना भी एक कठिनाई है। ईसाई मिशनरियों में अधिकांश भारतीय हैं। विदेशी मिशनरी में से बहुतों ने भारतीय नागरिकता हासिल कर ली है। संविधान की धारा २५ (१) के अनुसार ईसाइयों को भी धर्म-प्रचार के अधिकार हैं। केन्द्रीय शासन उनके अधिकारों की रक्षा करता है। शासन को अपने देशवासियों के धर्म की भी रक्षा करना है।

भारत के कई कर्णधार विलायती या पश्चिमी तरीकों से सोचते हैं। वे धर्म की संकुचित कट्टरता के बदले विशाल राष्ट्रीयता को महत्व देते हैं। उन्हें दुःख है कि उनकी धर्म निरपेक्ष नीति से हिन्दू धर्म का विरोध होता है और गैर हिन्दू धर्मों को प्रोत्साहन मिलता है। वे न्याय चाहते हैं। उनका न्याय न न्याय होता और न न्याय सरीखा दिखता। वे सब को प्रसन्न रखना चाहते हैं। सब देश उनकी प्रशंसा करते हैं। हिन्दू वेदान्त और हिन्दू संस्कृति का गुणगान होता है। हिन्दुओं का धर्म-परिवर्तन होता है। वे आदिवासी तथा पिछड़ी जातियों के अधिकारों को मानते हैं कि धर्म त्याग करने के पूर्ण अधिकार हैं। उनकी सम्प्रदाय-वाद की कल्पना अस्पष्ट है। भारत के ऐसे कर्णधारों में नेता, सरकारी नौकर तथा समाज सेवक सभी श्रेणी के व्यक्ति हैं। जो विदेशी विद्या और विदेशी गेहूँ के साथ-साथ विदेशी विचारधारा का भी उपयोग करते हैं। भारतीय मर्यादाओं को दकियानूसी कहकर तिरस्कार करते हैं।

भारत के कुछ कर्णधार भारतीय तरीकों से सोचते हैं। वे धर्म परि-वर्तन के नतीजों से भयभीत हैं। उन्हें दुःख है कि भारत ही एक ऐसा देश है जहाँ देशवासियों का अंधाधुन्ध धर्म-परिवर्तन होता है। उन्होंने सुना है कि मार्च सन् १९६० में भारतीय संसद में Restriction of Political Activity Bill में बोलते हुए एक संसद सदस्य ने कहा था कि रोमन कैथोलिक चर्च को विदेशों से धर्म-परिवर्तन के लिये तीस महीनों में चौवीस करोड़ रुपयों की आर्थिक सहायता प्राप्त हुई। भार-

तोय तरीकों से सोचने वाले भारतीय नहीं चाहते कि भारत के आदि-वासियों और पिछड़ी जातियों के धर्म का नीलाम हो और विदेशों से आने वाले धन के बल पर ईसाईयों के पक्ष में नीलाम खतम होकर एक दो तीन बोल दिया जाय। वे गोंड़ और बैगाओं की अचल सम्पत्ति तथा वन सम्पत्ति की रक्षा वाले कानूनों की बुनियादी बात को समझते हैं कि आदिवासी अपनी अचल सम्पत्ति तथा वनसम्पत्ति की रक्षा कर सकने में असमर्थ और अपरिपक्व बुद्धि वाला है अतः कलक्टर के संरक्षण की आवश्यकता है। वे नहीं समझ सकते कि जो आदिवासी अपनी अचल सम्पत्ति और वन सम्पत्ति की रक्षा नहीं कर सकता वह अपने धर्म की रक्षा कर सकने में या धर्म का त्याग कर सकने में कैसे समर्थ और पूर्ण परिपक्व बुद्धि का हो जाता है।

ऐसे कर्णधारों को दुःख है कि ईसाई मिशनरी अपने भारतीय नागरिक अधिकारों के प्रयोग करने में औचित्य की मर्यादा का उल्लंघन करके जिस पत्तल में खावे उसी में छेद करे वाली लोकोक्ति को चरितार्थ करते हैं। गरीबों को सांसारिक प्रलोभनों द्वारा भ्रष्ट करते हैं। भारतीय कर्णधार चाहते हैं कि जन सेवा के क्षेत्र में ईसाई मिशनरी सहकारिता का आधार लेकर श्री श्री रामकृष्ण मिशन सर्वेण्ट्स आफ इण्डिया सोसायटी पूना भील सेवा मण्डल दाहोद आदि गैर-सम्प्रदाय-वादी संस्थाओं से सहयोग करके लन्दन की चैरिटी आर्गनाईजेशन सोसायटी सरीखी संस्था बना लें और धर्म निरपेक्ष नीति का सही सही पालन करते हुए जन सेवा करें।

भारतीय तरीकों से सोचने वाले कर्णधारों के सामने दो काल्पनिक प्रश्न हैं। जिनके काल्पनिक उत्तर वस्तुस्थिति को स्पष्ट कर देते हैं। दोनों काल्पनिक प्रश्न इस प्रकार हैं। यदि एक दिन भारत शासन कह दे (१) "भारत धर्म राज्य है। भारत किसी भी भारतीय का धर्म परिवर्तन नहीं होने देगा" और दूसरा "भारत अपने देशवासियों के धर्म की रक्षा कर सकने में असमर्थ और अशक्त है" तो दोनों स्थितियों में ईसाई पादरियों पर क्या असर पड़ेगा? इन दोनों प्रश्नों के काल्पनिक उत्तरों में बहुत वास्तविकता छिपी हुई है।

भारतीय विचारधारा धर्म-परिवर्तन को हानिकारक समझती है। धर्म-परिवर्तन से एक समाज की संख्या में वृद्धि होती है और एक समाज की संख्या में ह्रास होता है। संख्या-वृद्धि से अभिमान होता है और

संख्या-हानि से अपमान। अभिमान और अपमान दोनों मनोवृत्तियाँ महात्मा गाँधी की अहिंसा की वैष्णव परिभाषा के बिलकुल प्रतिकूल हैं। धर्म-परिवर्तन से भयंकर सम्प्रदायवाद का और दो राष्ट्र वाले सिद्धान्त का जन्म होता है। धर्म-परिवर्तन भारत की अन्तर्राष्ट्रीय अलगाव की नीति के बिलकुल प्रतिकूल है। एक गुट से लगाव बढ़ता है। जो आज अपना धर्म-त्याग कर ईसाई हो सकता है वह कभी कम्युनिस्ट भी हो सकता है।

मध्यप्रदेश शासन की अपनी समस्याएं हैं। दर्द वही जानता है जिसके पैर में काँटा गड़ता है। मध्यप्रदेश शासन ने क्रिश्चियन मिशनरी इन्क्वायरी कमीशन के द्वारा बहुत से तथ्यों को प्रकाश में ला दिया। ईसाई पादरी भुकुर गये। उसने राष्ट्रसंघ (U.N.O.) के पास शिकायत की। प्रान्तीय शासन को केन्द्र की नीति के अनुकूल चलना पड़ता है। धर्म निर्पेक्ष नीति का पालन करते हुए भोपाल की मसजिदों को दान दिया। अमर कण्टक के मन्दिरों का उद्धार नहीं किया। प्राथमिक शिक्षा की राजकीय पुस्तकों में "ग" पढ़ाने के लिये गणेश का विसर्जन करके, गदहे का आवाहन किया।

ईसाई मिशनरियों की अपनी कार्य-शैली है। वे धर्म परायण जाति हैं वे उसी की हार्दिक प्रतिष्ठा करते हैं जो धर्म को प्राणाधिक समझता है। वे अपनी कार्य व्यवस्था में भ्रष्टाचार आने देते। वे कठोर नियंत्रणों के द्वारा मनचाही मुरादें पूरी कर पाते हैं। उनको धर्म-प्रचार का अधिकार है। संविधान की धारा २५ (१) के अधिकारों का वे प्रयोग करते हैं। उनके हिसाब से वे निर्दोष हैं।

वे समझते हैं कि जिस दिन भारत उनके धर्म-प्रचार के विरुद्ध उँगली उठायेगा उस दिन वे राष्ट्रसंघ में शिकायत करेंगे। राष्ट्र-संघ में हिन्दूधर्म का रक्षक कोई नहीं है। संभव है अमेरिका भारत पर अप्रसन्न होकर धन न दे या कटौती करे तो भारत की योजनाएं संकट में पड़ेंगी। अमेरिका के नये राष्ट्रपति जान केनेडी रोमन कैथालिक मतावलम्बी हैं। ईसाइयों की संख्या-वृद्धि के कारण नागा प्रदेश की अलग इकाई बन चुकी है। कल झारखण्ड, तो परसों गोड़वाना। भारत अपनी खैरियत चाहे तो ईसाइयों के प्रचार-मार्ग में रोड़ा न अटकाये। धर्म-परिवर्तन का ध्येय संख्यावृद्धि है। जब तक संख्या ४९% से कम

रहती है तब तक रूप विनयशील रहता है। जिस दिन संख्या ५१% हुई तो बहुमत के बल पर १००% हो जाने में देर नहीं।

ईसाई सब के मित्र हैं सब धार्मिक देशों से धन माँगते हैं। शिक्षा, औषधि आदि मार्गों से सेवा करते हैं। सेवा साधन है संख्या-वृद्धि साध्य है। आसफ खाँ शत्रु बन कर आया था। धन ले गया। वे मित्र बन कर आते हैं। धन नहीं लेते। धन लगाते हैं केवल धर्म लेते हैं। प्रचार का प्रकार ऐसा है :—"हे आदिवासियों तुम हिन्दू आर्य ब्राह्मण आदि को अपना शत्रु समझो। उनका और तुम्हारा धर्म दकियानूसी है। बहु देवधामी हैं। आर्य तुम्हारे देश के नहीं हैं बाहर से आये हैं। तुम पर हजारहों वर्ष से अत्याचार कर रहे हैं। तुमको हानि समझते हैं। तुम्हारी भूमि पर और तुम्हारे वनों पर कबजा कर लिया है। तुम्हारे सहधर्मी तुमसे बेगार लेते हैं। हम तुम्हारा उद्धार कर रहे हैं। तुम ईसाई पादरियों को अपना मित्र समझो। ईसाई धर्म सर्वोत्तम है। तुम ईसाई में आ जाओ। रविवार को काम कदापि न करना। ईसाई हो जाने पर आर्य लोग तुम पर अत्याचार नहीं कर सकेंगे। हम तुम्हारी रक्षा करेंगे। हम विधर्मी तुम्हारे शुभचिन्तक हैं। हम तुमसे बेगार नहीं लेंगे। हम तुम्हारी उन्नति करेंगे। तुम भी धनवान हो जाओगे हम धनवान हैं। हमारे धर्म को मत त्यागना। जब तुम ५१% हो जाओगे, तब हम और तुम मिलकर राज्य करेंगे; और आर्यों को पीस डालेंगे। अपने शरीर को भारत में रहने दो। दिल और दिमाग को रोम की और वेटिकन सिटी का भक्त बना डालो। हम लोगों ने अफरीका के हबशियों को ईसाई बनाकर उनका उद्धार किया है। तुम्हारा भी उद्धार कर रहे हैं।"

हार्दिक विचारों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण लगभग इस प्रकार है जिसमें प्रच्छन्न बातों का स्पष्टीकरण किया गया है। इस गम्भीर विषय को भारत की परम्परा के अनुसार प्रेम से और तर्क से तय करना है। किसी के भी दिल में ईसाई मिशनरियों के प्रति—चाहे वे भारतीय हों चाहे विदेशी उनके प्रचारकों के प्रति कुछ भी कटु भाव नहीं आना चाहिये। कुछ भी अपशब्दों का या बल का प्रयोग नहीं होना चाहिये।

जिले की बातें

मण्डला जिले में आदिवासियों की संख्या सर्वाधिक है। उनकी

समस्या प्राथमिकता के योग्य है। लोगों ने उनके गलत इतिहास को वासनापूर्ण विषमय साहित्य को ही इतिश्री समझ रखा है। आदिवासियों में धर्म, प्रेम को चाहे कोई पिछड़ापन समझे। वे ईमानदार हैं श्रद्धा के पात्र हैं। उनके धर्म पर प्रहार करने के लिये संविधान में धारा २५ (१) है। उनके धर्म की रक्षा के लिये संविधान में कोई धारा नहीं है। वे कम समझते हैं पेट की ज्वाला को और सांसारिक प्रलोभनों को समझते हैं। ऐसा कोई भी आदिवासी गोंड बैगा, अगरिया,भरिया, पनका, पठारी, धोबा—'जिसने अपने मैत्रिक धर्म की खराबी के कारण और ईसाई धर्म की अच्छाइयों के कारण अपना पैतृक धर्म त्याग कर ईसाई धर्म स्वीकार किया हो। उनमें भय और आतंक है। जिससे ईसाई मिशनरियों की मुरादें पूरी होती हैं और शासन की प्रतिष्ठा घटती है। प्रचार की आँधी में स्वतंत्र इच्छा दब चुकी है। वे अनुभव करते हैं कि यदि महात्मा गाँधी जीवित रहते तो उनका धर्म कौड़ियों के मोल न बिकता उनका क्षेत्र मनुष्यों की आत्माओं का सस्ता बाजार न बन जाता। वे राष्ट्रपति के लाड़ले कहला कर भी लाचार हैं। वे राष्ट्रपति के इस खास क्षेत्र में अतिक्रमण करने वाली ईसाई मिशनरियों के विरुद्ध कुछ भी नहीं कर सकते। वे हर प्रकार से लाचार हैं। मण्डला जिला में सन् १८४२ में चार जर्मन पादरी आये। वे अमरकण्टक के पास करंजिया में रहे। बरसाती जलवायु के कारण तीन मर गये। तीन को मृत देख कर चौथा पागल हो गया और चौथा भी मर गया। करंजिया में चारों की समाधि बनी है। मण्डला में उनका स्मारक क्रास बना है। हिस्लाप ने करंजिया का वर्णन किया है। प्रोटेस्टेंट गोंडवाना मिशन के गजटियर के अनुसार पाँच चर्च थे। सन् १८९५--१९०१ की कहत सालों में उन चर्चों में प्रगति हुई। मण्डला, पटपरा, देवरी, दिवारी और मड़कटा। सन् १९०१ की जनगणना के अनुसार मण्डला जिला में कुल ७०३ नेटिव ईसाई थे। जिनमें नैनपुर के पास के ५४ रोमन कैथोलिक भी शामिल थे। सन् १९४७ की स्वतन्त्रता के बाद ईसाई धर्म प्रचार के लिये राजकीय सहायता बन्द हो गई। सन् १९३५ से गवर्नमेंट आफ इण्डिया एक्ट का लाभ उठा कर रोमन कैथोलिकों ने मण्डला जिला में धुआँधार प्रचार आरम्भ किया। आजकल प्रोटेस्टेंट और रोमन कैथोलिक दोनों मतों का प्रचार हो रहा है।

निवेदन

धर्म परिवर्तन समाज विरोधी कृत्य है। धर्म-परिवर्तन से संस्कृति की जान निकल जाती है। ऊपरी आडम्बर ही रह जाता है। दूसरा पक्ष भी है। बहुत स्वार्थी ऐसे भी हैं जो धर्म-परिवर्तन करने वालों से अधिक भयानक हैं। इनकी स्वार्थसिद्धि का मार्ग समाज-सुधार, साहित्य, राजनीति, सेवा आदि आडम्बरों का होता है। इनको भी जनता के शत्रु समझ कर बचना है। जो ईसाई हो चुकते हैं वे ईसाई हो चुकने को छिपाते हैं। बाहरी व्यक्तियों को सही बात का पता लग सकना कठिन है। स्थानीय लोग रविवार को गिरजाघरों की उपस्थिति से वस्तु स्थिति का अनुमान लगा लेते हैं। जितनी आसानी से आदिवासियों को ईसाई बनाया जाता है उससे अधिक आसानी से इन्हें पैतृक धर्म में वापिस लिया जा सकता है। सुबह का भूला यदि शाम को वापस आ जाय तो भूला नहीं कहाता। वापिस लेने की नीति कई बार सफलता पूर्वक अपनाई जा चुकी है और अपनाई जा रही है। जो गोंड-कुटुम्ब मुगल काल में मुसलमान हो चुके थे उनमें से कई कुटुम्ब को वापस ले लिया गया है। इस सुनीति के कारण दिवारी,मड़फा आदि कई गिरजाघर गिर चुके। थे गिरजाघर पेट की ज्वाला से बढ़े थे, धर्म-प्रेम से नहीं। जो ईसाई हो जाता है वह गद्दार नहीं बहकाया गया है। सांसारिक प्रलोभनों में बड़ों से भी भूल हो जाती है। उसको अपने उद्धार करने में सहायता देना है। वह दूसरों का उद्धार भी करेगा। धर्म-परिवर्तन का कारण आध्यात्मिक नहीं धर्म प्रेम नहीं सांसारिक सुखों का प्रलोभन है, मृगतृष्णा है।

ऊँचे स्तरों पर रूखे सिद्धान्तों की बातें होती हैं कि ऐसा अधिकार है, ऐसा कर्तव्य है। जंगलों में रहने वाले हम लोग वस्तु स्थिति को जानते हैं। व्यवहार हमें दिखता। बहके हुए बन्धुओं से प्रार्थना है कि अपने पैतृक धर्म में वापस आ जावें। समाज का कर्तव्य है कि वापस आने वालों का स्वागत करे। समाज बहुत कुछ कर सकता है। सरकार को दोष देना साधारण आदमी के बूते की बात नहीं। लापरवाही से कुछ भी कह डालने का असर खराब होता है। लाभप्रद मार्ग एक ही है कि शुद्धि करते रहना है।

सातवाँ अध्याय

(१) दोषारोपण व्यर्थ है

(१) दोषारोपण व्यर्थ है
(२) मूर्त्तियाँ और दफीने
(३) लोककथा और लोकगीत
(४) कष्ट और सौंदर्य
(५) गौरव गाथा
(६) विशेष अध्ययन

"वसुधा काहूकी न भई"

गोंडराजा थे। अब अनुसूचित हैं। वे अपनी वर्तमान दशा के लिये किसी को दोष नहीं देते। यही उनकी ऊँची संस्कृति का प्रमाण है। वे आज भी अन्न का उत्पादन करते हैं। संसार को भोजन देते हैं; और असभ्य, अनुसूचित आदि कहे जाते हैं। तिरस्कार सहते हैं। कहते कुछ नहीं। एक वे हैं, जो इन पर अत्याचार करते हैं। मरे को मारते हैं। एटमबम और जहरीली गैसों का उत्पादन करते हैं। संसार के विनाश की सामग्री उपस्थित करते हैं। वे सभ्य माने जाते हैं। उनकी संस्कृतिहीनता इस तरह प्रगट होती है।

किसी को दोष देना, ठीक नहीं। दोषारोपण का अर्थ संस्कृति-हीनता है। दोषारोपण का उत्तर दोषारोपण से देना भी संस्कृतिहीनता है। सरकार पर दोष लगा कर, कोई भी अपने उत्तरदायित्व से मुक्त नहीं हो जाता। सब को निःस्वार्थ परिश्रम करके, देश का नक्शा बदल डालना है।

दोषारोपण के और व्यर्थ कलह के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं। एक मत है कि कलचुरि जाति का वर्तमान रूप कसवार जाति है। एक मत है कि कलचुरि, चेदि, और हैहय ये तीनों शब्द पर्यायवाची हैं। एक मत है कि हैहय क्षत्रियों का वर्तमान रूप वर्तमान तमेरे या ठठेरे है। प्रत्यक्ष में कलवार और ठठेरा में बहुत अन्तर है। बस कलह की सामग्री तैयार है। ऐसे प्रश्नों से कुछ सार नहीं। केवल सामुदायिकता और दलबन्दी बढ़ती है। राष्ट्र की उन्नति सदैव इष्ट है। दल-

बन्दी से राष्ट्रोन्नति में बाधा पड़ती है। सरकार के सम्बन्ध का एक उदाहरण इस प्रकार है। कल्पना चित्र ही है—

मैंने दिल्ली के किसी प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता को समाचार लिखा कि विंझौली में शान्तिनाथ तीर्थङ्कर की मूर्ति है। वे पुरातत्ववेत्ता महाशय न मुझे जानते हैं, न विंझौली को। वे केवल इतना जानते हैं कि विंझौली मण्डला जिले में है। उन्होंने मण्डला के जिलाध्यक्ष से मेरी बात की पुष्टि कराना चाही। उन्होंने मण्डला के जिलाध्यक्ष को लिखा। जिलाध्यक्ष के कार्यालय ने उस पत्र पर "पता लगा कर प्रतिवेदन दो" Enquire and report की बदस्तूर आज्ञा लिख कर, उचित मार्गों से पटवारी के पास भेज दिया। पटवारी ने मौका देखकर प्रतिवेदन लिखा—"तावेदार ने चन्द भले आदमियों के साथ मौके में जाकर मुलाहिज़ा किया। तो देह हाजा में न तो कोई जैन है और न कोई जैन मूर्ति। मुमकिन है कि सायल ने धुलधुल राजा को गलत-फहमी से जैन तीर्थङ्कर कह दिया हो। वाजिब था सो अर्ज किया, आगे हुजूर मालिक और मुल्क बादशाह हैं।" पटवारी का प्रतिवेदन उचित मार्गों से हो जिलाध्यक्ष के पास पहुँचा। कार्यालय के किसी अधिकारी ने उस प्रतिवेदन पर से, दिल्ली के पुरातत्ववेत्ता महाशय को उत्तर दे दिया कि विंझौली में तीर्थङ्कर शान्तिनाथ की मूर्ति नहीं है। दिल्ली के पुरातत्व महाशय ने जिलाध्यक्ष कार्यालय मण्डला की बात को सच माना। अर्थात् मेरी बात को नहीं माना। सच बोलते हुए भी मैंने अपनी फजीहत करा ली। किसी भी अधिकारी ने मुझसे कुछ जानने की आवश्यकता नहीं समझी।

किसी को विशेषज्ञ या अध्यक्ष समझ लेना भी खतरे से खाली नहीं है। कुछ लोग स्वतः को विशेषज्ञ कहते हैं या शील-संकोच का प्रदर्शन करके अपने मित्रों से अपने विशेषज्ञ होने का विज्ञापन कराते हैं। इस तरह गोंड जाति के कई विशेषज्ञ सामने आ चुके हैं। गोंडों के किसी विशेषज्ञ ने अभी तक निंगोगढ़ का पता नहीं जाना। बैगा जाति के किसी विशेषज्ञ ने बाघमार या गर्ढाडोंगर का वर्णन नहीं किया। कोई भी नहीं जानता कि उत्तर प्रदेश के मिरजापुर जिला में भी बैगा लोग रहते हैं। सो मैं तो विशेषज्ञ हूँ ही नहीं, पर किसी को भी विशेषज्ञ मान लेना खतरे से खाली नहीं है।

(२) मूर्तियाँ और दफीने

अभी सामग्री संचयन का समय है वस्तु स्थिति को प्रकाश में लाना है। अभी निर्णय देने का समय नहीं आया है। मुझमें निर्णय करने की या निर्णय दे सकने की योग्यता भी नहीं है। स्थानों का निर्णय भी अभी बहुत बाकी है। स्थानों का इतिहास नहीं ज्ञात हो पाया है। परिशिष्ट में नाम और स्थिति का वर्णन है। इतिहास का निर्णय होता रहेगा। जो वर्णन मिल रहा है उसे भुला देना अनुचित है। मैंने सब स्थान नहीं देखे सुना और तसदीक किया कहीं-कहीं देखा भी सत्य समझ कर लिखा। कहीं-कहीं भूल निकल ही आवेगी। क्षमा प्रार्थी हूँ। उतना ही लिखा है जितना भूतल पर दिखता है। मैंने कहीं भी खुदाई नहीं कराई। कोई जो चाहे सो कहने लगे। कई स्थानों में दफीना का भी पता मिला। उनका परिचय मैंने जानबूझ कर नहीं दिया। सैकड़ों स्थानों में प्राचीनकाल से दफीना सुरक्षित है सदैव से क्षेत्र तिरस्कृत रहा। तिरस्कार का लाभ इतना हुआ कि मूर्तियाँ और दफीने सब सुरक्षित हैं।

दफीना चाहे जो कोई ले जा सकता है। पर कीमत देना पड़ेगी। दूसरे का धन मुफ्त में नहीं मिलता। दफीना का मालिक सूक्ष्म शरीर से रक्षा करता है, दण्ड देता है। दफीना की तलाश करने वाले कोई पागल हो जाते हैं, कोई निःसन्तान हो जाते हैं, कोई मर जाते हैं। सरकारी आदमी भी बाल बच्चे वाले गृहस्थ होते हैं। वे भी खराब नतीजों से डरते हैं। कानून उतना भयंकर नहीं, जितना भयंकर आतंक होता है। हर व्यक्ति को आतंक से और नैतिक पतन से डरना चाहिये। यदि किसी को दफीने का धन मिले तो एक ही मार्ग है कि सरकार में जमा करा दे। यदि कोई मूर्ति मिले तो सरकारी संग्रहालय में दे देवे। तभी हर व्यक्ति निर्लिप्त रह सकेगा! चाहे व्यक्ति सरकारी हो चाहे गैर सरकारी प्रकृति का नियम सब के लिये एक ही है, सब को अपना मार्ग स्वस्थ रखना है।

(३) लोककथा और लोकगीत

लोक कथा आदि के संग्रह में बहुत विशाल क्षेत्र है। लोक कथा गीत, विवाह गीत, विदा के गीत, आराधना के गीत, अन्योक्ति बुझौवल,

जस, नानी की कहानी, बुढ़ियों की कहानियाँ, सर्पदंश में पीढ़ा बैठाने के गीत, हर जाति के, हर क्षेत्र के, हर संस्कार के, हर उत्सव के, इस क्षेत्र में अपूर्व निधि भरी पड़ी है। फिर भी कोई संग्रह प्रकाशित नहीं हुआ है। इसके कारण मेरी समझ में निम्न हैं—

जनता अपनी हीनता की भावना के कारण अपनी बातों को जाहिर करने में सकुचाती है। अपढ़ जनता अपने लोक साहित्य का मूल्य नहीं समझती। भिल्लनी चन्दन-काष्ठ का ईंधन बनाती है या टर्रों से पैर का मैल छुड़ाती है। जिनमें संग्रह करने की योग्यता है, लोक साहित्य के जौहर की परख है, वे परिश्रम से बचना चाहते हैं। अफसर या नेता की तरह, दूसरों के परिश्रम पर अपनी प्रसिद्धि चाहते हैं। मेरा अनुभव है कि संग्रहकर्ता देहात में जाकर लोगों से एक दिल होकर सरल और सस्ती कीर्ति का लोभ छोड़ कर अच्छी चीजों का संग्रह कर सकता है। नेता एक दिन में दस-बीस सभा में भाषण दे सकता है। संग्रहकर्ता को एक स्थान में दस-बीस दिन रहकर काम आरम्भ करना पड़ेगा। किराए के आदमियों से या बेगारियों से संग्रह की आशा व्यर्थ है।

लोक साहित्य में केवल इतिहास ही नहीं सब कुछ भरा पड़ा है। अनुभव, कल्पना, उड़ान, विचार-सौष्ठव, काव्य, रस सब कुछ मिलता है।

जंगली जानवरों के कारण विदेशी शिकारी बहुत आते हैं। जनता का उनसे संपर्क होता है। शिकारी साहबों की कथाएँ बहुत मनोरंजन की सामग्री देती हैं। शिकारी साहबों की हिम्मत, वीरता, उदारता, अनुभवहीनता आदि की बहुत सी वारदात सुनने को मिलती हैं। कई ऐसे दास्तान भी होते हैं कि शिकारी साहब ने सब विधि पूरी की। सब पर खब ताव बताया। गारा हुआ। साहब मचान पर बैठे। साथ में देहात को जंगली शिकारी भी बैठा। शेर आया। साहब ने शेर को देखा। सर्कस या जू का शेर नहीं जंगल का शेर और वह भी गारा में! शेर को देख कर साहब डर गये। हाथ से बन्दूक छूट गई। आँखें मींच लीं। साहब मचान पर औंधे हो गये। साहब को खुलासा जुलाब हो गया। देहाती शिकारी ने गोली चलाई। शेर मर गया। साहब को होश आया। कंपकंपी कम हुई। मानसिक स्वास्थ्य लाभ हुआ। साहब ने देहाती शिकारी को खूब

इनाम दिया। सब उपस्थित लोगों से साहब ने करबद्ध प्रार्थना की कि किसी से मत बताना। सब को खूब इनाम दिया। साहब शेर को ले गये। ऐलान किया गया कि साहब ने शेर मारा! साहब चले गये। साहब ने लेख लिखा कि मैंने बहुत पुरुषार्थ से थ्रिल का अनुभव करके शेर मारा। ये फोटो है। ये चमड़ा है, हम जंगली लोग साहब की वीरता का दूसरा रूप जानते हैं। ऐसी कथाओं से मनोरंजन और उपदेश मिलेगा। इनका संग्रह भी होना चाहिये।

जंगली क्षेत्रों में लोक साहित्य का प्रकार जंगलों के अनुरूप है। जैसे, किसी बड़े प्रसिद्ध साहित्यकार या समाज सेवक की करतूतों का वास्तविक पता उन्हीं क्षेत्रों को रहता है, जहाँ वे रहते रहे हों। कई धनवान या ऊंचे अफसर जंगलों में जाकर जो स्वेच्छाचरण करते हैं वही उस स्थान का लोक साहित्य बन जाता है। अहीर लोग दिवाली और मडई में जो आशीर्वाद देते हैं, वह लोक गीत का अच्छा उदाहरण है। जबलपुर में एक बार भूत बँगला के पास एक नया अंग्रेज आया। पास में एक परिक्रमावासी ठहरा था। उसने आम के नीचे शिव-पूजा की। और बम् महादेव बम् बम् कहकर अपनी आराधना करने लगा। विलायती साहब ने सुन रखा था कि हिन्दुस्तान में क्रांति-कारी लोग बम बनाया करते हैं। अतएव साहब ने उस परिक्रमावासी को क्रान्ति कारी समझा। साहब अत्यन्त भयभीत हो गये। पुलिस को बुलवाया। जिस वस्तु को साहब ने बम समझा था वह महादेव जी की पिंडी निकली। लोक कथा में ऐसी सामग्री भी उपयोगी होती है।

लोक साहित्य में क्या संग्रह करना उचित है, इस प्रश्न से अधिक महत्वपूर्ण प्रश्न है कि लोक साहित्य के संग्रह का कार्य कैसे किया जाय या लोक साहित्य के संग्रहकर्ता को क्या नहीं करना चाहिये। संग्रहकर्ता को अखबारी और सस्ती प्रसिद्धि से बचना चाहिये। किसी विशेषज्ञ की छत्रछाया में संग्रहकर्ता कार्य करता जावे और दो चार साल तक प्रसिद्धि का लोभ त्याग दे। चालू तरीका बिलकुल गलत है कि एक सर्कुलर लैटर पटवारी, शिक्षक, फारिस्टगार्ड, मुकद्दम, पटैल, विद्यार्थी आदि के नाम निकाल दिया और डाक के थैले की आशा करने लगे कि एक माह में हम सम्पादन करके प्रसिद्ध संग्रहकर्ता बन जावेंगे। लोक साहित्य संग्रह करने के लिये मुफस्सिल

में जाकर, जनता के बीच रहकर, जनता के विश्वास पात्र और मित्र बनना पड़ता है। जनता के दुख-सुख को समझकर जनता की हमदर्दी रखना पड़ती है। तब जनता का हृदय कमल खिलता है। उसकी सुगंध का नाम लोक साहित्य है।

लोक गीत और लोक कथा के संग्रह का काम कष्टसाध्य है। सुरुचि प्रदर्शित करने वाले लोक गीतों का संग्रह और भी कठिन है। मेरा अपना अनुभव है कि लोक गीतों में और लोक कथाओं में कई बार अच्छा काव्य देखने को मिलता है। सैला नामक लोक गीतों में वीर रस की प्रधानता रहती है। एक सैला लोक गीत में रानी दुर्गावती के युद्ध का वर्णन है। एक सुआ लोक गीत में, सुआ के द्वारा अपने प्रिय को सन्देश भेजा गया है। कालिदास ने मेघदूत लिखा तो जंगली कवि ने सुआ दूत की कल्पना कर डाली।

(४) कष्ट और सौन्दर्य

यात्रा कठिन है, यातायात के और विश्राम के साधन नहीं के बराबर हैं। जंगलों में और पहाड़ों में कष्ट ही कष्ट है। विद्या की जिज्ञासा में कष्ट का अनुभव नहीं होता। नदी और पहाड़ों के प्राकृतिक सौन्दर्य का आनन्द होता है। मधु चन्द्र के लिये प्राकृतिक सौन्दर्य के स्थान अति उत्तम माने जाते हैं। कबीर चबूतरा, मोती नाला रोड के जल-प्रपातों के दृश्य भुलाने से नहीं भूलते। ग्रीष्म ऋतु में सड़कों पर सूखे पत्ते गिर कर बिछ जाते हैं। ऊँचे वृक्षों की छाया से दोपहर में धूप नहीं लगती। करौंदा के फूलों की भीनी-भीनी सुगन्ध आती है। चारों तरफ सरई के नवीन किसलयों की रंग-बिरंगी हरियाली इन्द्रधनुष के रंगों से होड़ लगाती है। वायु के शीतल झकोरों में हिमालय का आनन्द आता है। यात्री डाक बँगला और होटलों की कमी को भूल जाता है। जिले के अन्दर घूमने में सैलानियों को जो आनन्द प्राप्त होगा, उसी पर देश-दर्शन की बुनियाद पड़ेगी। स्थानीय क्षेत्रों के परिचय के अभाव में देश-दर्शन का मजा किरकिरा हो जाता है। मण्डला जिले में मोटर में दौरा करने वाले व्यक्तियों को सदैव आशा से अधिक समय लग जाता है। चलते-चलते ऐसे सुन्दर दृश्य निर्मल जल के प्रपात के या गगनचुम्बी वृक्षों की पंक्ति के—सामने आ जाते हैं कि बरबस मोटर रोकना पड़ता है। आन्तरिक आवाज आती है

कि—जीवन में शायद ही कभी ऐसा सुन्दर प्राकृतिक दृश्य देखने को मिले। रुक जाओ, दस मिनट जी भर कर देख लो फिर चले जाना। इस प्रकार अप्रत्याशित देर लग जाती है।

(५) गौरव-गाथा

एक आचार्य मित्र ने गणित की परीक्षा में आठ प्रश्न दिये। प्रश्न-पत्र में लिखा था कि कोई पांच प्रश्न करने पर परीक्षार्थी को पूर्ण अंक प्राप्त हो सकेंगे। एक गोंड विद्यार्थी ने उतने ही परिमित समय में आठों प्रश्नों के सही उत्तर लिख दिये और आचार्य महोदय से निवेदन लिख दिया कि कोई भी पाँच प्रश्न जाँच लेवें। इस आप बीती पराजय का वर्णन उन्हीं आचार्य महाशय ने गद्‌गद् होकर सुनाया था।

गोंडों का प्राचीन गौरव ऐतिहासिक सत्य है। आत्माभिमान का विषय है; मिथ्याभिमान का नहीं। समाज का स्वार्थ प्राचीन गौरव में निहित रहता है। कहने और सुनने में सरल है कि आजकल 'अनु-सूचित'' कहे जाने वाले एक कुटुम्ब ने लगातार चौदह सौ वर्षों तक राज्य किया। समझने में कठिन है। इसलिये कि मुगल साम्राज्य और ब्रिटिश साम्राज्य, तीन सौ वर्ष भी नहीं चल सके।

जिस प्रकार गोंड जाति प्राचीनकाल में अग्रसर थी, उसी प्रकार उस गोंड़ जाति को आज राष्ट्र निर्माण में उससे अधिक अग्रसर होना है। मिथ्याभिमान और आलस्य त्याग कर पस्त हिम्मती पर ध्यान न देते हुए सप्राण वर्तमान में कठिन परिश्रम करना है। राष्ट्र-निर्माण परिश्रम से होता है। परिश्रम का शृङ्गार विवेक है। विवेक से ही समझ में आता है कि, दलबन्दी और सम्प्रदायवाद का नाम, राष्ट्र निर्माण नहीं है। विवेक ही बतलाता है कि धर्म-परिवर्तन समाज का सर्वनाश करने वाला घुन है। राष्ट्र-निर्माण द्वारा केवल पिछड़ी जातियां देश के बड़े क्षेत्र के भविष्य को, चमका सकती हैं। राष्ट्र को संसार में ऊँचा उठा सकती हैं। कालेज, होस्टल, खेलकूद, विज्ञान, साहित्य, सेना, व्यवसाय, सब क्षेत्रों में नाम हासिल कर सकती हैं।

गौरव गाथा से उत्साह होता है। आलस्य नही होना चाहिये, अभिमान नहीं होना चाहिये कि हम समुन्नत थे, तो अब क्यों कुछ काम करें। किसी भी प्रकार की कुरुचि को अपने पास नहीं आने देना

है। विवेक से जो भी कार्य होगा. उसमें हर क्षेत्र में उन्नति अवश्यम्भावी है।

(६) विशेष अध्ययन

जिनकी रुचि विशेष अध्ययन की तरफ हो, उनकी सहायता के लिये, कुछ उपयोगी ग्रन्थों की सूची नीचे दी जा रही है। सूची के आरंभ में जो अंक हैं, वे पुस्तक प्रकाशन के सन् हैं। जैसे १६१२ में मण्डला जिला के गजेटियर का प्रकाशन हुआ। अधिकांश पुस्तकें किसी बड़े पुस्तकालय में मिल सकेंगी।

BIBLIOGRAPHY

1820 Notes suggested by a perusal of Sir J. Malcolm's Revenue Reports on Malwa (Nagpur Secretariat)

1824 A Memoir of central India by Sir J. Malcolm.

1825 Sanskrit Inscriptions from Garha Mandla, pp 436-443 of Asiatic Reserches, Vol XV, (I825), No. VIII,

1837 History of Garha Mandla Rajas, by Captain W.H. Sleeman in JASB, for 1837, Vol. VI, part II, pp 621-648.

1844 Rambles and Recollections of an Indian official, by Sir W. H. Sleeman (1844) (edition 1903)

1866 Hislop papers, relating to the Aboriginal tribes of the Central Provinces by Rev Stephen Hislop, edited by Sir Richard Temple, (1866)

1867 History of India, as told by its own historians, by Sir H. M. Elliot, (8 volumes)

1869 Report on the Land Revenue Settlement of the Mndlah district by Captain H.C.E. Ward, 1869

Bombay, printed at the Education Society's press, Byculla, 1870.
1874 The laws of the Central provinces, by G. J. Nicholls.
1877 Notes on Bhats and other early inhabitants of Bundelkhand by V. A. Smith, pp 227-236 of JASB, Vol. XLVI.
1905 The Ancient History of Garha Mandla by Pdt. Ganesh Datta Pathak (Christian Mission Press, Jubbulpore)
1907 Central India States Gazetteer, Rewah State.
1912 Central Provinces District Gazetteers, Mandla district Vol. A, Descriptive, by F.R.R. Rudman ICS, Times Press Bombay.
1916 The Story of Gondwana, by Rt. Rev. Eyre Chatterton DD Bishop of Nagpore.
1916 Tribes and Castes of Central Provinces by R.V. Russell ICS, assisted by Rai Bahadur Hiralal, 4 volumes.
1919 The High Lands of Central India by J. Forsyth.
1923 The Raj Gond Maharajas of the Satpur Hills by C. U. Wills ICS, C. P. Govt. Press, Nagpur, 1923.
Report of the explorers of Yale University.
Pandit Ravi Shanker Shulka Abhinandan granth.

परिशिष्ट—स्थानों का क्रम, शब्दकोष व्यवस्था के अनुसार है।
नाप स्केल से सीधी नाप कर लिखी है। मौका में थोड़ी बहुत कमी वेशी होगी।

अमरकण्टक :—नर्मदा नदी का उद्गम स्थान। शहडोल जिले की सुहागपुर तहसील के अन्तर्गत आता है। अमरकण्टक से तीन मील पश्चिम में कबीर चबूतरा है जहाँ तीन जिले-मण्डला, विलासपुर, और शहडोल भी सीमाओं का संगम है। अमरकण्टक क्षेत्र को महादेव जी का शरीर माना जाता है। नर्मदा जी महादेव जी के शरीर से निकली हैं। तीन स्थानों को विशेष रूप से महादेव का रूप, माना जाता है—निंगोगढ़, जालेश्वर, और शम्भु धारा। प्राकृतिक सौन्दर्य सर्वत्र दर्शनीय है। कुछ स्थान अति आकर्षक हैं। जैसे, भाई की बगिया, सोनमूंड़ा, भृगुकमण्डल, जालेश्वर, कपिल धारा, दूध धारा आदि। एक स्थानीय विद्वान का मत है कि अमरकण्टक का नाम पहिले आम्रकूट था। जिस प्रकार चिदम्बरम् मन्दिर का पहिले नाम एकाम्रेश्वर था। समूचे क्षेत्र में शाल वृक्षों की विशालता से होड़ लगाने के कारण हर वृक्ष को बहुत ऊँचा हो जाना पड़ता है। आम का एक पत्ता, बारह पंद्रह इञ्च लम्बा भी मिल सकता है। जंगली केले के फलों में बीज वाले फल भी होते हैं।

अमरकण्टक क्षेत्र के अलग-अलग भागों का वर्णन इस प्रकार है :—

(१) राजाकरन के मन्दिर—त्रिकलिंगाधिपति राजा कर्णदेव कलचुरि (१०४१-१०७३) ने बिल्वपत्र की आकृति की भूमि पर तीन मन्दिर बनवाये। उनमें एक अधूरा रह गया अर्थात शिवार्चन पूरा नहीं हो पाया। कलचुरि कर्णदेव को महाभारत के दानी कर्ण समझ लेने में चार हजार वर्ष का घपला हो जाता है। गढ़ा मण्डला के गोंड राजाओं में भी एक करनसेन (नं० २६) थे। इन तीनों कर्ण नामक राजाओं में गड़बड़ी नहीं होने दी है। कलचुरि कर्णदेव की रानी हूण वंश की अवल्ला देवी थीं।

(२) मार्कण्डेय आश्रम—बहुत शान्त क्षेत्र है। हाल में वहाँ पर नैष्ठिक ब्रह्मचारी पं० शिव प्रसाद तपस्या करते थे। अब अमरकण्टक छोड़कर चले गये हैं। आश्रम में एक वृक्ष के नीचे कई शिवमूर्तियाँ हैं। एक शिवमूर्ति की बनावट बिलकुल वैसी है जैसी मण्डला के बूढ़ी-

माई बाड से प्राप्त महावीर तीर्थङ्कर की मूर्ति की है। शिवमूर्ति के एक हाथ में सर्प है, दूसरे में त्रिशूल है, ऊपर मेहराब में प्रश्न चिन्ह सरीखा सर्प बना है। सत्यनारायण कथा में रेवाखण्ड शब्द आता है। अमर-कण्टक क्षेत्र में विष्णु की बहुत अधिक मूर्तियाँ हैं।

(३) नागा अखाड़ा के हाते में प्राचीन नर्मदा नदी का कुण्ड है। गंदली हालत में है। किसी समय यही कुण्ड नर्मदा का उद्गम स्थान माना जाता था। आज भी नागा साधु इसी कुण्ड को महत्व देते हैं। नागा अखाड़ा के हाते में बहुत सी प्राचीन मूर्तियाँ, मन्दिरों में हैं। सब मूर्तियां अति प्राचीन और बेमरम्मत हालत में हैं। एक मंदिर में कमल आसन पर खड़ी मुद्रा में नर्मदा माई की विशाल मूर्ति है। जलपात्र हाथमें है। एक दूसरे मन्दिर में प्रसिद्ध 'केशव नारायण" नामक मूर्ति है। केशवनारायण मूर्ति के महराब में जैन मुद्रा में मार्क-ण्डेय मूर्ति का यज्ञोपवीत इतना स्पष्ट है कि तीनों तागे अलग अलग दीखते हैं। हर पुरानी मूर्ति में डाढ़ी वाले साधु बने हैं। केशवनारायण मन्दिर का जीर्णोद्धार. किसी भोंसला राजा ने अट्ठारहवीं शताब्दी में कराया था। केशव नारायण के मन्दिर में तथा पास के एक और मन्दिर में अधबीच में, गोंड राजाओं का राजचिन्ह बना है। वहाँ शेर के नीचे छोटा सा हाथी। बिंझौली में शिव ठेकरी में, बाबा जी के आसन के पास, जैसी केवल सिर की मूर्ति है, वैसी मूर्तियाँ भी इन दोनों मन्दिरों में हैं। शिव टेकरी की सिर मूर्ति अत्यन्त भावपूर्ण है। इतना पता लग जाता है कि इस प्रकार की सिरमूर्तियाँ, मन्दिरों के किस भाग में लगाई जाती थीं। इसी नागा अखाड़ा के हाते में एक मन्दिर को नर्मदा माई का "रंग महल" कहते हैं।

(४) प्रसिद्ध मन्दिर और कुण्ड—पचीस तीस वर्ष पहिले कुण्ड आदि को करने वाला हाता नहीं था। जिस कुण्ड में यात्री आजकल स्नान करते हैं, वह किसी नायक (लमाना) का बनवाया हुआ है। नायक हर्रा का धन्धा करता था। उसको स्वप्न हुआ कि बनवाया हर्रा उसके सब दाने, सोने के हो गये। उसी धन से नायक कुण्ड सका। कुंड में ग्यारह कोने हैं। रुद्रों की संख्या ग्यारह है। कुण्ड के अन्दर नायक की मूर्ति बनी है। कुण्ड में एक मन्दिर उस स्थान में बना है जहाँ पहिले बांस-भिरा था। मन्दिर रानी अहिल्याबाई का बनवाया माना जाता

है। रानी अहिल्याबाई ने १७६७ में अपने ससुर मल्हारराव के देहान्त के बाद अपने नाबालिग पुत्र मालेराव के अभिभावक की हैसियत से राजकाल चलाया। उनकी बनवाई एक धर्मशाला भी है, वे अति धर्मनिष्ठ थीं। नर्मदा जी का उद्गम स्थान, प्रचीनकाल से बास का भिरा माना जाता है। नर्मदा के परिक्रमा बासी, बाँस की लकड़ी नहीं जलाते। कादम्बरी में बाण कवि ने राजा शूद्रक की प्रशंसा में "सद्वंश समुद्भवो नर्मदा प्रवाह इव" लिखा है। नर्मदा मन्दिर की दीवार में एक शिलालेख लगा है।

नर्मदा कुण्ड का सम्बन्ध तीस-पैंतीस मील दूर तिरसूला गाँव के सिउनी नदी के उद्गम स्थान वाले कुण्ड से माना जाता है। यात्रियों की भीड़ के कारण'जब नर्मदा कुण्ड का जल गंदला हो जाता है तब बिना भीड़ के भी तिरसूला कुण्ड का भी जल गंदला होता है। जब नर्मदा कुण्ड खाली कर दिया जाता है तब, बिना खाली किये भी तिरसूला कुण्ड भी खाली हो जाता है। नर्मदा कुंड के हाते में अनेक मूर्तियाँ हैं। एक हाथी की, एक घुड़सवार की, अनेक विष्णु मूर्तियाँ हैं। विष्णु मूर्ति के नीचे सर्प बना है, जैसे कि मंडला की सीतला माई मढ़िया के विष्णु के नीचे दो सर्प बने हैं। एक बिष्णु मूर्ति में इजिप्ट की मूर्तियों की तरह डाढ़ी है। एक फँसावदार नागमूर्ति है। इस हाते की मूर्तियों का विस्तृत वर्णन प्रयाग विश्वविद्यालय के अध्यापक श्री दया शंकर दूबे ने अपनी "नर्मदा परिक्रमा" नामक पुस्तक में किया है।

(५) बाजार बस्ती—में धर्मशालाएँ, दूकानें, होटल आदि यात्रियों की सुविधा के स्थान हैं। एक पुस्तकालय है। एक संस्कृत पाठशाला है। रानी अहिल्याबाई की धर्मशाला के पास, कोटि तीर्थ के पास एक छोटा सा नवीन कलापूर्ण मन्दिर बना है, जिसमें महात्मा गाँधी का बस्ट स्थापित है। वहाँ भी यात्री लोग चन्दन, अक्षत, फूल चढ़ाते हैं। पूछने पर देहाती यात्रियों ने इसे भी किसी अज्ञात देवता की मूर्ति बताया। वे नहीं पहिचान पाते कि यह बस्ट महात्मा गाँधी का है।

(६) नया टाऊन—में प्लाट बिक रहे हैं। अभी बँगले नहीं बने हैं। बिजली लग चुकी है। अस्पताल बन चुका है। ब्यूटी लेक बनने की योजना है। नैनीताल के नौका विहार की नकल की जायेगी। पुरातत्व विभाग या किसी के द्वारा प्राचीन मन्दिरों की या अति कलापूर्ण मूर्तियों

की रक्षा की कोई आयोजना नहीं है। प्राचीन कृतियों की रक्षा अति-आवश्यक है।

(७) *कपिलधारा*—अमरकंटक से तीन चार मील पश्चिम में नर्मदा का पहिला और सबसे बड़ा जलप्रपात. सत्तर फोट की ऊँचाई से धारा गिरती है। नीचे खड़े होकर अपने सिर पर धारा का जल लेकर स्नान करने में पुण्य माना जाता है। कपिलधारा के पास एक क्षुप होता है जिसकी पत्ती में पीपरमेंट की सुगन्ध आती है। कथा है कि कभी नीचे ठंडे जलकणों का सुख लेकर कोई शेर सो रहा था। ऊपर से चरवाहा लड़कों ने बड़ा सा पत्थर शेर पर ढकेल दिया। उतनी ऊपर से पत्थर गिरा। निशाना ठीक वैठा। शेर मर गया।

समूचे अमरकंटक क्षेत्र में ब्राह्मी बूढ़ी बहुत मिलती हैं। भाई की बगिया में गुलबकावली के फूल भी मिलते हैं। फूलों का अञ्जन प्रसिद्ध है। जबलपुर शहर में भादों के महीने में गुलबकावली के फूल बहुत बिकते हैं।

अमरपूर :—डिंडोरी से बारह मील दक्षिण पश्चिम। अमरपूर और रामगढ़ के बीच में केवल खरमेर नदी है। बावन गढ़ों की सूची में अमरगढ़ नाम लिखा है। रामगढ़ और रायगढ़ अलग-अलग हैं। नागरी अक्षरों में पाठ-भेद बहुत थोड़ा होने से गड़बड़ी हो जाने का डर है। अमरपूर के पास आमाखोह में एक चबूतरे में किसी प्रतापी "घुग्घुस राजा" का शंख रखा है। भयवश उसे शंख को कोई नहीं छूता।

अमोदा :- -बावन गढ़ों की सूची में है। सत्तावन परगनों की सूची में भी है। स्थान-निर्णय कठिन है। रायबहादुर हीरालाल का मत है कि जबलपुर जिले में है। स्टर्नडेल का मत है कि सिवनी जिले में है। एक तीसरा अमोदा, सागर जिले में देवरी से बारह मील पश्चिम है।

इटावा :—सागर जिले का प्रसिद्ध बीना इटावा। देखिये बावन गढ़ों की सूची।

ओपदगढ़ :—भोपाल के पास। देखिये बावन गढ़ों की सूची।

ओंकार मान्धाता :—खण्डवा से चालीस मील उत्तर। ज्योतिर्लिङ्ग है। मन्दिर सन् ११६५ में बना। डा० फ्लीट के मत से माहिष्मती है। सरकारी "मध्यप्रदेश दर्शन" में माहिष्मती माने जाने का कोई लेख नहीं है।

कंचनपुर :—कुकरामठ से चार मील दक्षिण। जैन ग्रन्थों की (पउम पुरान) कंचनपुरी।

कटंगा :—अबुलफजल ने "गढ़ा कटंगा" राज्य लिखा है। बाद के मुगल लेखकों ने "गढ़ा मण्डला" लिखा है। कटंगा जबलपुर सदर का हिस्सा है। गिट्टीमुरम की खदान है। एक गजकटंगा शहपुरा भिटौनी के पास अलग है। खेड़ा के पास की कटंगी अलग है। दमोह रोड की कटंगी अलग है।

कठौतिया :—चावी से पाँच मील उत्तर। तालाब के पास खेरमाई में प्राचीन मूर्तियाँ हैं। पास के भर्रा में चाँदी के सिक्के मिल जाया करते हैं। पास में गौनों की अटार लगी है। समूची अटार पत्थर की हो गई है।

कनौजा :—सिहोरा तहसील में बिलहरी के पास। मुगल इतिहास-कारों ने "गढ़ा कनौजा" सरकार लिखा है। देखिये बावन गढ़ों की सूची।

कबीर चबूतरा :—डिंडौरी से ५२ मील पूर्व। तीन जिले मण्डला, बिलासपुर और शहडोल मिलते हैं। छोटा कुण्ड है, छोटा मन्दिर है। बहुत सुन्दर, बहुत भयानक। पास की पहाड़ी को कबीर दादर कहते हैं। महात्मा कबीरदास ने तपस्या और समाज सेवा की। पतितों का उद्धार किया। कबीर पन्थियों का तीर्थ है। उनमें पनका और महरा अधिक हैं। जो कबीर पन्थ नहीं मानते वे सकटहा, साकट, (शाक्त) कहलाते हैं।

गांडों में न सकटहा हैं और न कबीर पन्थी। अच्छा हुआ जो वैष्णव न कह कर कबीर पंथी कहा, शैवों से कलह का अवसर नहीं आया। गोंडों का शैव स्थान निंगोगढ़, असरकंटक के पास है।

करंजिया :—डिंडौरी से ४२ मील पूर्व। बड़ा गाँव है। पुराने मन्दिरों के नक्काशी किये हुए पत्थरों के कई ढेर हैं। चमकीले दाने भी मिलते हैं। दादीराय उर्फ खरजी (नं० ४५) का समय १४४० के करीब ठहरता है। खरजी पर से करंजिया नाम पड़ा होगा। सन् १८४२ में चार जर्मन पादरी आये। खराब मौसम में तीन मर गये। तीन को मरा देखकर चौथा पागल हो गया और मर गया। चारों की एक ही कब्र है। पादरी हिस्लाप ने अपनी पुस्तक में करंजिया गाँव को महत्व दिया है।

करवागढ़ :—देखिये बावन गढ़ों की सूची। सिवनी जिले में।

करिया पहार :—मण्डला से आठ मील पूर्व। रामनगर, नकावल के पास पहाड़ के ऊपर काले पत्थर की हजारों मियालें (कड़ी) पड़ी हुई हैं। चौपहल, छः पहल, अठपहल सब प्रकार की हैं। किसी राजा ने महल बनवाने के लिये संगतराशी कराकर मियालें बनवाया था। पर महल नहीं बन सका। बहुत कड़ा पत्थर है। मियालें प्राकृतिक-सी जँचती हैं। मनुष्य की कृति सी नहीं। भीमलाट और नागा पहाड़ में भी ऐसे ही पत्थर हैं। अपुष्ट कथन है कि "पहाड़ पोला है। नीचे गुफा में साधु रहते हैं। कभी शंख ध्वनि सुन पड़ती है। कभी धूप की गन्ध आती है।"

करोला :—देखिये सत्तावन परगनों की सूची बालाघाट जिले के बारा सिवनी और सिवनी जिले के लाल बर्रा, इन दोनों के आस-पास के हिस्से को करोला कहते हैं।

कान्हाकिसली :—मण्डला से ३२ मील आग्नेय। नेशनल पार्क। संसार भर में सब से बड़ा मृगवन। अंधेरी रात में, चीतल और सांभरों के गिरोह की आँखें ऐसी चमकती हैं, जैसे दिवाली हो। वन्यपशु स्वाभाविक स्वच्छन्दता से घूमते फिरते हैं। बन्दूक लेकर जाना निषिद्ध है। कान्हा और किसली में पाँच मील की दूरी है। प्रसिद्ध स्थान हैं :—

दशरथ मचान, सरमन ताल, तूमीताल, नीलधारा आदि। कथा है कि अयोध्या के राजा दशरथ ने यहीं शिकार खेलते समय श्रवणकुमार का भूल से वध किया था।

कारूवाग :—देखिये बावन गढ़ों की सूची। रानी दुर्गावती की पराजय के बाद, चंद्रशाह (नं० ५१) ने अकबर को नजराने में दिया।

कालपी :—जबलपुर और मण्डला के बीचों-बीच, रोड पर वन-विभाग का शिक्षा केन्द्र है। बहुत बड़ा प्राकृतिक तालाब है मत्स्य पालन हो सकता है।

किकरझिर :—डिंडौरी से १४ मील दक्षिण सन् ५७-५८ के अकाल में गिट्टी फोड़ने वाले को अति विस्तृत पुराने शहर के अवशेष मिले। इमारतों के खण्डहर और नक्काशीदार पत्थरों के ढेर हैं। प्राचीन शहर के नाम आदि का अभी कोई पता नहीं लगा। पुरान पानी के गहन वन

में दिन में भी शेर मिल सकता है। पास में सिधौली है। वन विभाग के एक पेंशनर अधिकारी ने बताया कि किकरझिर में चाँदी के लिये बोरिङ्ग कराई गई थी। चाँदी का ओर (ORE,) नीचे दर्जे का निकला भी था। अब पुनः स्मरण करना चाहिये।

किरंगी :—देखिये बावन गढ़ों की सूची में परताबगढ़। करंजिया से चार मील उत्तर। सरकारी कागज़ों में "किरङ्गी उर्फ परताबगढ़" लिखा जाता है। पुराने महल मिट्टी में दबे हैं। ग्रेण्ट ने बिलासपुर ज़िला की पड़रिया जमींदारी को परताबगढ़ मान कर भूल की है। उनको किरङ्गी का पता नहीं रहा होगा।

किसलपुरी :—डिंडौरी से ११ मील पश्चिम। राजा किशन देव (नं० ६) के नाम पर, पुराने खण्डहर, मूर्तियाँ और चमकीले दानों का स्थान। ठाकुरदेव की मढ़िया के बाहर अवशेष हैं। इतने पुराने कि घिस जाने के कारण पहिचाने नहीं जाते। हाथियों की कतारें हैं। पुराने मन्दिर के स्थान को मढ़ी कहते हैं। दो आदम कद पत्थरों में बारीक नक्काशी है। अत्यन्त प्राचीन स्थान है। पास के एक गाँव में एक व्यक्ति के पास मैंने गांगेयदेव कलचुरि के समय का लक्ष्मी जी की मूर्ति वाला सोने का सिक्का देखा है और सिक्के मिलने की आशा है।

कुकर्रामठ :—डिंडौरी से आठ मील आग्नेय। पास में बल्लारपुर है। चाँदा के प्रतापी गोंड राजा भी मबल्लाल देव के नाम से, कागज वाला बल्लारशाह है। यह बल्लारपुर न जाने किसके नाम से है। वैसे ही सिरपुर दो हैं। एक छत्तीसगढ़ में और दूसरा वर्धा (वरदा) नदी के किनारे।

कुकर्रामठ में जिले भर का एक प्राचीन मन्दिर है। बे मरम्मती के कारण गिर रहा है। गजेटियर की फोटो आज से ६० वर्ष पहिले की है। इस मन्दिर की रक्षा आवश्यक है। मन्दिर में प्रयुक्त पत्थर, पास में नहीं मिलते। पहिले कई मन्दिर थे। पूरा शहर था। कलचुरिकाल की कला-कृति है। पहिले जैन मन्दिर रहा होगा। पास में कंचनपुर है। जैन ग्रन्थों में कञ्चनापुरी का नाम मिलता है। बाद में किसी ने जैन तीर्थङ्कर की मूर्ति को बाहर कर दिया, और शिवलिंग पधरा दिया। नाम "कुक्कुर = कुत्ता" पर से नहीं, कोकल्लदेव कलचुरि प्रथम पर से, "कोकल्ल मठ" का बिगाड़ है। वे जैन थे। कर्ण देव शैव हो गये। कोकल्लदेव का समय

८६० से ९०० तक माना जाता है। यही समय आदि शंकराचार्य का था। यही समय इस मन्दिर का मानना चाहिये। कोकल्लदेव की रानी का नाम नट्ट देवी चन्देल था। बस्ती से नदी जाते समय नाग के फन की छाया वाला पार्श्वनाथ का सिर पड़ा मिलता है। चमकीले दाने भी मिलते हैं। कुत्ते की एक मूर्ति जिसके अंग को फोड़कर, पीसकर, आटा में मिलाकर, पागल कुत्ता से काटे व्यक्ति को खिलाते हैं। रोगी इस एन्टी रैबिक इलाज से अच्छा हो जाता है। कुत्ते की मूर्ति समाप्त हो रही है। कहाँ कुक्कुर और कहाँ कोकल्लदेव। मन्दिर नर्मदा से छः मील है। धारा बदलने की स्थिति नहीं है। पहाड़ी क्षेत्रों में नदी की धारा बदलने की स्थिति प्रायः नहीं के बराबर है। कुकर्रामठ के आस-पास घास की जड़, बरसात में प्रकाश फेंकती है। उसे तृण ज्योति माना जाता है।

कुमारी :—लांजी से आठ मील पश्चिम। आबादी केवल तीन सौ किसी युद्ध काल में गोंडों ने व्रत लिया था कि इस गाँव में कोई व्यक्ति गृहस्थाश्रम नहीं करेगा। अभी तक व्रत-निर्वाह होता है। गाँव भर में एक भी व्यक्ति विवाहित नहीं है। विवाह की इच्छा करने वाला गाँव छोड़ देता है। दूसरे गाँव में जाकर गिरस्ती कर सकता है। चाहे विधुर हो जाने पर कुमारी गाँव में वापस आ जावे। गोंडों में इसी गाँव पर से एक गोत्र कुमरा होता है, जिसका गढ़ लांजी है। संम्भवतः इस गाँव वालों की नौकरी में यदुराय थे।

कुखई :—भेलसा जिले में। देखिये बावन गढ़ों की सूची। भोपाल के मृत नवाब के दमाद कुखई के नवाब हैं। दुर्गावती की पराजय के के बाद चंद्रशाह (नं० ५१) ने अकबर को नजराने में दिया।

केदारपुर :—सिवनी जिले में। मण्डला से बीस मील वायव्य। देखिये सत्तावन परगनों की सूची।

कोहका :—डिंडौरी से तीन मील ईशान। पारधी जाति की मातृ-भाषा एक प्रकार की जंगली गुजराती है।

कोहानीदेवरी :—शहपुरा से १२ मील पश्चिम। जबलपुर रोड में। महानदी पार करके जबलपुर जिले का जो स्थान तुरन्त मिलता है, अर्थात् कुण्डम् से ८ मील पूर्व पहाड़ी में, बहुत पुराना और बड़ा किला

हैं। सड़क से दिखता है। स्थानीय लोग इसे "दियागढ़" कहते हैं। देखिये बावनगढ़ों की सूची।

कौआ डोंगरी :—मानोट से छः मील वायव्य। सफेद फूल के पलाश का झाड़ है। कागभुशुण्डि का आश्रम माना जाता है। पास के लिंगा गाँव में प्राचीन शिवलिंग है। नर्मदा पूर्व वाहिनी हैं।

खजर वार :—चावी से छः मील ईशान, सब्बाह सरीखा एक कोल्हू है।

खटोला :—देखिये सत्तावन परगनों की सूची। गोंड जाति का एक भेद "खटुलहा" कहलाता है। खटोला का यही महत्व है। दो स्थान खटोला नाम के हैं। एक बिजावर में। हटा तहसील से लगा हुआ क्षेत्र। रसल और रायबहादुर हीरालाल ने इसी खटोला क्षेत्र को "खटुलहा गोंडों के लिये उत्तरदायी माना है। इसका उल्लेख दमोह जिले की बन्दोबस्त रिपोर्ट (१८६६) के पैरा ३४ में हैं। खटोला नाम का दूसरा स्थान, मुवाबिछिया से आठ मील दक्षिण में है। बहुत छोटा और अज्ञात सा गाँव है। ठीक स्थिति इस प्रकार है। किसली से दो मील ईशान, बीजा डोंगर से दो मील उत्तर, चौरंगा से चार मील पश्चिम। जब तक इस दूसरे खटोला का पता नहीं था, तब तक विद्वानों को, बिजावर वाला एकमेव खटोला ज्ञात था और उसी पर से "खटुलहा" का संबन्ध स्थापित किया गया था। अब "खटुलहा" शब्द के सम्बन्ध में पुनर्विचार आवश्यक हो गया है। संभव है कि कोई ऐसा मत प्रकाश में आवे कि 'खटुलहा' वर्ग का संबन्ध, मुवाबिछिया वाले खटोला से ही हो।

खड़देवरी :—मण्डला से चार मील आग्नेय। प्राचीन महल "सियामहल" कहलाता है। कबूतर बहुत हैं। लोगों का विश्वास है कि यदि किसी कबूतर को मारो तो वह कबूतर साँप बनकर डस लेता है।

खमरिया :—निवास से छः मील आग्नेय। पुराना तालाब और गढ़ी है।

खलौंड़ी :—मोती नाला से ५ मील ईशान। अनादि काल से विस्तृत चरोखर। देखिये नरहर गंज और न्यौसा।

खलौटी :—छत्तीसगढ़ का समतल मैदान। अमरकंटक के सोन-मूड़ा से बिलासपुर की तरफ देखने पर खलौटी शब्द का अर्थ समझ

में आ जाता है। बिलकुल "खाले" है। खाले को नीचा, समतल आद माना जाता है।

खिमलासा :—सागर जिले में। देखिये बावन गढ़ों की सूची।

गढ़ पहरा :—सागर जिले में। देखिये बावन गढ़ों की सूची।

गढ़ा :—गोंड राजाओं की पहिली राजधानी। यादव राय द्वारा स्थापित। प्रबल पुल्लिंग, गढ़ा, केवल यही है। गढ़ा के गोंड राजाओं का मरावी गोत्र है। मुगल इतिहासकारों ने समय-समय में गढ़ा कटंगा, गढ़ा कनौजा, गढ़ापुरवा, गढ़ा मण्डला आदि नामों से लिखा है। गढ़ा से राजधानी, चौरागढ़, सिंगौर गढ़, रामनगर, मण्डला आदि स्थानों में गई। गढ़ा का नाम बावन गढ़ों की और सत्तावन परगनों की सूचियों में है।

गढ़ा के आसपास, आमनपुर (अमान साहि = महाराजा संग्राम साहि) चामनपुर, रामपुर, रानीपुर, हिरदैपुर (महाराज हिरदै साहि के नाम से), महेशपुर (प्रथम दरभंगा नरेश के नाम से) महराजपुर आदि प्राय: सभी गाँव अपना-अपना ऐतिहासिक महत्व रखते हैं। प्रसिद्ध है कि गढ़ा में बावन तालाब और ४८४ कुएँ हैं। तालाबों के नाम भी ऐतिहासिक महत्व रखते हैं। जैसे, राना ताल, चेरीताल, गगा सागर, तिरहुतिया ताल (मिथिला को तिरहुत कहते हैं) संग्राम सागर, बघा, सूपा, देवताल आदि। गढ़ा के पास जैन मूर्तियों की प्राचीन पिसनहारी की मढ़िया है। गढ़ा से केवल एक मील पर मदन महल है। गढ़ा का "कचहरी" नामक खण्डहर, सिम्प्लैक्टा इंजीनियरिंग कम्पनी के पास है। मदन महल पहाड़ी की उतार में "दरगाह" नामक स्थान है, जहाँ प्रसिद्ध है कि मक्का मदीना से लाई हुई ईंट रखी है। उस दरगाह में जियारत करने से मक्का मदीना का सवाब हासिल होता है। मदन महल के पास 'घुड़सार' है। 'हाथीखाना' में १४०० हाथी रखे जाते थे।

गढ़ा में कई प्रसिद्ध पूजा-क्षेत्र हैं।

संग्राम सागर के बीच में एक द्वीप है। उसे आमखास कहते हैं। वर्तमान अर्थ यह लगाया जाता है कि उस द्वीप में आम का झाड़ लगा है इससे आमखास कहते हैं। आमखास में तन्त्र पूजा का मन्दिर था। आमखास में महाराजा संग्राम साहि के दरबार लगते थे। इनके

आम खास शब्द की नकल करके, शाहजहाँ ने दीवान-ए-आम और दीवान-ए-खास बनवाये। वे भी जलाशय के भीतर नहीं बन सके। संग्राम सागर के पास के भैरव मन्दिर को 'बाजना मठ' कहते हैं, जो तन्त्र पूजा का मन्दिर है। इसी बाजना मठ (वज्रायण मठ) में वह अघोरी (कापालिक) रहता था, जो महाराजा संग्राम साहि को मार कर स्वयं राजा होना चाहता था, जिसे महाराजा संग्राम साहि ने मार कर अघोरी की सिद्धि और भैरव की भक्ति प्राप्त की थी। भगवान भैरव के प्रसाद से ही उन्होंने बावन गढ़ों का साम्राज्य स्थापित किया। ठाकुर ताल दरभंगा के प्रथम नरेश, महेश ठाकुर के नाम से है। ठाकुर ताल में देवी की एक मूर्ति औंधी पड़ी है। प्रसिद्ध है कि इस मूर्ति के सामने राजा लोग या एक कोई राजा नरबलि दिया करते थे। राजाओं के पूजा की देवी पुरवा गाँव में है, जिसे माला देवी कहते हैं। मदन महल के नीचे शारदा देवी की मूर्ति है। सावन में मेला लगता है। पचमठा नामक स्थान में गोंड राजाओं की पूजा की कृष्ण मूर्ति है। मूर्ति अत्यन्त प्राचीन और भव्य है। पास में एक गाँव दलपतपुर दलपति साहि के नाम पर है। गढ़ा से ६ मील नैऋत्य में गोपालपुर गाँव है। जहाँ कलचुरि काल के कई प्राचीन मन्दिर हैं।

आजकल राजवंश के जो गोंड लोग, नरसिंह पुर जिला में आस-पास रहते हैं वे सनाढ्य वंश के स्वामी राधेलाल जी से गुरु दीक्षा लिया करते हैं। इतने पर भी लोग कहते हैं कि गोंड जाति हिन्दू नहीं है। अलग ट्राइब है। हिन्दू से भिन्न है।

गढ़ाकोटा :—सागर जिले में। देखिये बावन गढ़ों की सूची।

गनौर :—देखिये बावन गढ़ों की सूची। रानी दुर्गावती की पराजय के बाद चन्द्रशाहि (नं० ५१) ने अकबर को नजराने में दिया।

गाड़ाघाट :—भुवाबिछिया से दो मील दक्षिण में पहाड़। प्राचीन काल की बहुत मूर्तियाँ हैं।

गुरगी :—रीवाँ से छः मील पूर्व। गुर्गी के मन्दिरों का निर्माण कोकल्ल देव के पौत्र, युवराज देव प्रथम ने कराया। खजुराहो के शिलालेख के अनुसार युवराज देव प्रथम का युद्ध यशोवर्मा देव से हुआ था। युवराज देव प्रथम की रानी का नाम मोहता देवी था। देखिये मोहतरा।

गोरखपूर :—डिंडौरी से २६ मील अमरकंटक रोड पर। गोरखपूर से भगवान् निंगो देव के स्पष्ट दर्शन होते हैं। गोरखपूर में अब बहुत बड़ी मंडी हो गई है। तालाब के किनारे पुराने भवनों के नक्काशीदार पत्थरों के ढेर हैं। कुकर्रामठ और विंझौली जैसी नक्काशी है। सिक्के भी मिल जाते हैं। पुलिस के डर से लोग नहीं बताते। महाराज संग्राम साहि के पिता का नाम गोरखदास था।

गौर झामर :—सागर जिले में। देखिये बावन गढ़ों की सूची।

घनसौर :- सिवनी जिले में। रेलवे स्टेशन है। देखिये बावन गढ़ों की सूची।

घानामार :—डिंडौरी से आठ मील पश्चिम। घानामार के पहिले तक नर्मदा नदी, मंडला और शहडोल जिले की सीमा बनाकर, घानामार में नर्मदा नदी, मंडला जिले में प्रवेश करती है। घानामार में नर्मदा तट में पुराना मन्दिर था जो गिर चुका है। खंडहर पड़े हैं। घानामार का एक मन्दिर कलश डिंडौरी के पास सुबखार में लगा है।

घुघरा :—मण्डला से पाँच मील पूर्व। खेरमाई के चौतरे में-आदमकद एक सिर रखा है जिसमें मुकुट बहुत कला पूर्ण है। चार चौकोर पत्थर गड़े हैं। उनमें से एक में चारों तरफ बहुत से वृत्त खुदे हुए हैं। इतने प्राचीन कि घिस गये हैं। साँची के स्तूप के तोरणों में दोनों छोरों में ऐसे ही वृत्त बनेहैं, जिनका निर्माणकाल ई० पू० २५० से ५०० माना जाता है। घुघरा के शिलाखण्ड भी उसी समय के होंगे। इतना पुराना शिलाखण्ड गोंडवाना को प्राचीनकाल में अति सभ्य सिद्ध करता है। साँची की तरह यह शिलाखण्ड भी श्मशान का होगा।

घुघरी :—मण्डला से २२ मील ईशान। नदी पार करने पर "नकटी देवी" नामक प्राचीन मूर्ति है, जो न देवी है और न नकटी ही। पहिले मन्दिर था शिलाखण्ड पड़े हैं। मूर्ति करीब चार फीट ऊँची है। हाथ नहीं हैं, कभी गिर गया। नीचे पांच घोड़े दिखते हैं दो और रहे होंगे। किरण का तेज है, कमल है, बगल में कोणार्क सरीखे घोड़े बने हैं। सूर्य मूर्ति का अनुमान होता है। कोणार्क मूर्ति १३वीं शताब्दी में बनी। नकटी देवी की मूर्ति के साथ, नुकीली डाढ़ी वाले साधु भी बने हैं। साधुओं का केशविन्यास, जैसा उदयपुर के एकलिंग भग-

वान के पुजारियों का होता है। ऊपर महराब में एक छोटी मूर्ति बनी है। उसकी मुद्रा जैन या बौद्ध मूर्तियों की तरह है। अमरकंटक में केशव नारायण मूर्ति के महराब में ऐसी ही मुद्रा में मार्कंडेय्य मूर्ति है। अतएव केवल मुद्रा से जैन मूर्ति ही नहीं समझ लेना है। केवल हाथों की मुद्रा से किसी प्रकार का निर्णय कर डालने में भ्रम हो सकता है। प्रधान पुरुष मूर्ति के साथ एक छोटी स्त्री मूर्ति भी है, जिसे ऊषा कह सकते हैं। शिरस्त्राण कलापूर्ण है। एक मित्र का मत है कि धरणीन्द्र और पद्मावती हैं। इससे छोटी एक ऐसी मूर्ति, शिवटेकरी निवास में है। प्रचलित नाम नकटी देवी अनुपयुक्त और भ्रम में डालने वाला है। पास का गाँव सैलवारा घी के व्यापार का केन्द्र है। घुवरी के पास बुढ़नेर और इलो नदियों का संगम है। बुढ़नेर नदी चांड़ा के पास से निकलकर, देवगांव के पास नर्मदा में मिलती है। चांड़ा में अज्ञात और बहुत पुराना बौद्ध मन्दिर है। उस मन्दिर में अशोक चक्र बना है। चांड़ा को मध्य प्रदेश की गर्मी की राजधानी के लिये पसन्द किया गया था। पर बाद में पचमढ़ी बन गई। चांड़ा डिण्डौरी तहसील में बाजार के पास है।

चटिया :—डिंडौरी से छः मील दक्षिण। नाला के किनारे के घाट को "चमारिन पाट" कहते हैं। वहीं प्राकृतिक गुफा में कई मूर्तियाँ हैं। दो बिना परिश्रम के दिखती हैं।

चन्द्रगढ़ :—पहाड़ है। डिंडौरी से आठ मील दक्षिण ऊँचाई ३१०६ फीट। रक्षित है महाराज चन्द्रशाह (१५६५-१५७६) के नाम पर। किले के अवशेष और भग्न मन्दिरों के हिस्से हैं। तीन स्थानों में सिद्ध साधुओं की पुरानी धूनियाँ हैं। लाल मिर्च का बड़ा दरख्त है। फलता है। वहीं खाने से चिरपर लगती है। अन्यत्र ले जाकर खाने से स्वादु रहित। यह बात सुनी हुई है।

चमकीले दाने :—छोटे छोटे मटर के बराबर छिद्रयुक्त। पत्थर, कांच या चीनी मिट्टी के। जहाँ पुरानी मूर्तियाँ मिलती हैं वहाँ मिल जाते हैं। विंझौली, हिरदे नगर, फ़ुलपुर, कुकर्रामठ, करंजिया, किसलपुरी, शहपुरा, मण्डला आदि में मिलते हैं। कांच के हैं तो दो रंगों के काँचों को अलग अलग फूँक कर, मिलाकर बने हैं। पत्थर है तो पालिश ऐसी कि हजारहों वर्ष तक मिट्टी में पड़े रह कर भी चमकदार हैं:

चीनी मिट्टी है तो ऊँची रसायन कला है। अंग्रेजी में Cornetian heads कहते हैं। कुछ दाने मण्डला जिले के संग्रहालय में सुरक्षित हैं। जो भी चाहें देखकर अपना मत कायम करें। वर्षा में मिट्टी बह जाने पर अधिक मिलते हैं। हिरदे नगर के श्री गोविन्द प्रसाद मिश्र वकील के पास हजारहों का संग्रह है। कोई धनिया बराबर, कोई बादाम बराबर। मण्डला के किले में एक बादाम बराबर बिना छिद्र का दाना मिला है। छिद्र बाद में करते रहे होंगे। लोग सुलेमानी गुरिया भी कह डालते हैं। सुलेमान पहाड़ में पहलदार पत्थर मिलते हैं। बौद्ध काल के इन दोनों से सुलेमान—पहाड़ या फकीर—का कोई सम्बन्ध नहीं जँचता।

चरगाँव :—शहपुरा से तीन मील दक्षिण। तालाब के किनारे विझौली सरीखे नक्काशीदार शिलाखण्ड बिखरे पड़े हैं।

चाँटा :—शाहपूर से आठ मील दक्षिण। चौरा से मुढ़ियाखुर्द के रास्ते में प्राचीन किले के अवशेष हैं। देखिये मुढ़िया खुर्द।

चिरई डोंगरी :—नैनपुर से ६ मील पूर्व। स्टेशन के पास की एक छोटी सी पहाड़ी में से, सदैव वायु का प्रबल झोंका निकलता था। "वायुकुण्ड" या चाहे जो कह सकते हैं। पहाड़ी पवित्र मानी जाती है। एक पत्थर को "पवन दिसाई" कहते हैं। आजकल २०-२५ वर्षों से वायुकुण्डपुर गया है।

चौकीगढ़ :—भोपाल जिले में। देखिये बावन गढ़ों की सूची रानी दुर्गावती की पराजय के बाद, चंद्रशाह (नं० ५१) ने अकबर को नजराने में दे दिया।

चौगान :—रामनगर से एक मील उत्तर। अस्सी वर्ष पहिले तक के १४ बैगों की बस्ती थी। अब गोंड पण्डाओं के कई घर और हो गये हैं। बाकी बैगों की बस्ती पूर्ववत् है। न जाने क्यों हिरदैसाहि ने अपनी मुगल प्रेयसी के लिये बेगम महल का स्थान बैगा लोगों के बीच में पसन्द किया था।

अस्सी वर्ष पहिले, रतना पण्डा ने स्वप्न में प्राप्त आज्ञा पर से, अपने खीसी के देवी स्थान को हटाकर यहाँ स्थान बनाया। प्रसिद्ध, प्रशस्त और भव्य देवी स्थान है। कोई विग्रह नहीं है। अग्निपूजा है। पशुबलि कतई बन्द है। पूरे क्षेत्र में बीड़ी, तमाखू आदि हर प्रकार के

नशे का निषेध है। आचरण में घोर कट्टरता है। मुँह में कपड़ा बाँध-कर भोजन कक्ष में प्रवेश करती हैं।

चैत्र की नवरात्रि में दूर-दूर से भक्त आते हैं। बहुत मेला लग जाता है। इन लोगों को पारसियों की अगियारी पूजा का पता भी न होगा और पारसियों को इन लोगों की इस अग्नि-पूजा का भी पता न होगा। देहात के गोंडों में जैन साधुओं जैसा संयम है। वैष्णवों जैसी विचार धारा है। १८-२० चपरासी हैं। अपढ़ सरीखे हैं। बहुश्रुत नहीं। स्थान के सब अधिकारी गोंड हैं।

चौरई :—छिंदवाड़ा जिले में रेलवे स्टेशन। देखिये बावन गढ़ों की सूची।

चौरागढ़ :—नाम के तीन स्थान हैं। (१) गाडरवारा से २२ मील आग्नेय। महाराजा संग्रामशाह ने किला बनवाया राजधानी रखी। आसफ खाँ से अन्तिम युद्ध हुआ। भयंकर जौहर हुआ। सर्वनाश हो जाने पर ही आसफ खाँ धन, सोना, हाथी ले जा सका। बाद में बुन्देलों के हाथ में चला गया। हिरदेशाह को त्यागना पड़ा। (२) किसलपुरी से छः मील उत्तर चुरिया गढ़ भी कहते हैं। किले के अवशेष हैं। (३) कवर्धा से १२ मील वायव्य। नष्ट-भ्रष्ट किला है। पास में भोरम देव में बहुत सी प्राचीन मूर्तियाँ हैं। प्रसिद्ध देवी स्थान है। भोरम देव क्षेत्र पुरातत्व के विद्वानों के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। लोक-विश्वास है कि पारस पत्थर यहाँ पर था।

छतरपूर :—घुघरी से चार मील पश्चिम। छत्तरशाह (१६७८-१६८५) के नाम पर। मंडला जिले भर में केवल यहीं गोंड राजा द्वारा मुसलमान फकीर को भूमि दी गई। फकीर के वंशज १६२०-२२ तक भूमि का उप-भोग करते रहे।

जगनाथर :—मंडला से दस मील आग्नेय यादौराय के पौत्र जगन्नाथ (नं० ३) के नाम पर। गाँव के अन्दर एक पुराना महल है।

जहरमऊ :—बंभनी से ३ मील दक्षिण भुईंफोड़ देवी की मढ़िया में बहुत से बाना (त्रिशूल) चढ़े हैं। साँप पकड़ने वाले जोगी बहुत हैं। जीवित सर्प खरीदे जा सकते हैं।

जाम गाँव :—नैनपुर से पाँच मील पूर्व। जाम गाँव से ढाई मील

दूर पालासुन्दर के रास्ते में ठोस पत्थर के दक्षिणावर्ति शंख मिलते हैं। हर साइज-बादाम बराबर से बेल बराबर तक।

जुझारी :—मुकास से चार मील उत्तर। हिरदेशाह के समकालीन जुझार सिंह के नाम से।

जूना मण्डला :—मण्डला से पाँच मील पूर्व। दुर्ग के लिये अति सुरक्षित प्राकृतिक स्थान। तीन तरफ नर्मदा और चौथी तरफ पहाड़ी। बीच में दो मील लंबा और पौन मील चौड़ा समतल मैदान। आने का एक ही रास्ता, पहाड़ी की बगल से हल्दी घाटी जैसा सुरक्षित है। किसी राजा ने जूना मण्डला नाम दिया होगा। स्थान बस्ती किला, आदि के लिये उपयुक्त है। मौके पर कोई अवशेष नहीं दिखते। संभव है मिट्टी में दब गए हों या बिलकुल न होवें। देवरी दादर में खण्डहर हैं। नर्मदा पार मधुपुरी प्रसिद्ध है। मण्डला नाम धारी एक और स्थान डोंगर मण्डला है।

जोगी टिकरिया :—डिंडौरी से तीन मील वायव्य। नर्मदा के उत्तर तट में। आबादी में अधिकांश जोगी जाति वाले हैं। नर्मदा तट में कुछ मन्दिर नये बने हैं। उनके पास पुराने मंदिरों की बुनियादें स्पष्ट दिखती हैं।

झनझन गढ़ :—बहुरीबन्द से छः मील, सलइया रोड पर। वर्तमान नाम तिगवाँ। महाकंकाली का मन्दिर प्रसिद्ध है। गुप्त कालीन मन्दिर, पुरातत्व कानून के अनुसार सुरक्षित है। पास ही रूपनाथ में अशोक की प्रसिद्ध प्रशस्ति है। देखिये बावन गढ़ों की सूची।

झिरिया :—मण्डला से १४ मील दक्षिण-पश्चिम। डिंडौरी से पाँच मील पूर्व। प्राचीन प्राकृतिक झिरिया के पास किसी राजा की बनवाई बहुत बड़ी सराय है, जहाँ पाँच-सात सौ आदमी ठहर सकते हैं।

झुलपुर :—पिंडरई स्टेशन से सात आठ मील ईशान। पुराने किले का नाम तारागढ़ था। बहुत सी अति प्राचीन मूर्तियाँ और मन्दिर हैं। खण्डहर हो गये हैं। कुछ लोग मूर्तियों के सिर ले जाते हैं, दिखा कर भीख माँगते हैं। नाले के एक हिस्से को नगाड़ा दहार कहते हैं जहाँ से रात को नगाड़ा बजने की और नाच गाने की ध्वनि सुन पड़ती है। चमकीले दाने मिलते हैं। कई को पुराना धन भी मिला। कन्हर गाँव के सुनार बहुत सी कथाएं बताते हैं। पुलिस की डाँट से इंकार कर देते हैं। आस-पास कई देवरी और ईसरपुर हैं।

टीपागढ़ :—चाँदा जिले में, दुग जिले की सीमा के पास। पलसगढ़ से बीस मील आग्नेय। देखिये बावन गढ़ों की सूची।

ठड़पथरा :—डिंडौरी से दो मील वायव्य पहाड़ी पर। एक बड़ा पत्थर खड़ा है। आस-पास सैकड़ों गोल स्थान पत्थरों की भराई के हैं। लुकासपुर तथा मधुपुरी में भी हैं। इन भरावों पर मेले में दुकानें लगती थीं। ठड़पथरा नामक एक गाँव कान्हा से चार मील दक्षिण है।

डोंगर ताल :—नागपूर से चालीस मील वायव्य। देखिये बावन गढ़ों की सूची।

डोंगर मण्डला :—रामनगर से आठ मील पूर्व। रामपुर के पास मुरला पानी की पहाड़ी पर बहुत सी प्राचीन मूर्तियाँ हैं। नक्शे में 'वामनगढ़" लिखा है। किसी समय वैष्णवों का मठ रहा होगा।

टूटी डोंगर :—करंजिया से चार मील दक्षिण पश्चिम। अकेला शिखर ३४५४फीट ऊँचा है। "टूटी" उस खास टोकनी को कहते हैं, जिसमें मछली रखी जाती है। यह शिखर टूटी की शकल का है। शिखर के ऊपर चट्टान को तराश कर छोटा सा गहरा तालाब बनाया गया है। ऊपर प्राचीन काल की मूर्तियाँ तथा प्राकृतिक शिवलिङ्ग भी है। प्राकृतिक कारणों से हजारहों कांड़ी (उखली) बनी हैं। ज्वालामुखी की कृति है। टूटी डोंगर का गोंड पुजारी पास के गाँव करौंदी में रहता है। शिखर के ऊपर भृगुकमण्डल सरीखा जल भी मिलता है। टूटी डोंगर और निंगोगढ़ की दूरी आठ मील है।

त्रिपुरी :—जबलपुर से आठ मील पश्चिम। वर्तमान नाम तेवर। मौर्य और सातवाहन काल में अनेक बौद्ध मठ थे। कलचुरि राजाओं की पहिली राजधानी माहिष्मती थी, दूसरी त्रिपुरी थी, तीसरी राजधानी रतनपुर हुई। कलचुरि संवत् का आरम्भ सन् २४८ से होता है। प्रथम प्रतापी राजा को कल्लदेव प्रथम (८६०-६००) के नाम से कुकर्रासठ प्रसिद्ध है। इनके पौत्र युवराज देव प्रथम उर्फ केयूरवर्ष के ससुर का नाम अवन्ति वर्मन सोलंकी था। केयूर वर्ष के समय में भेड़ाघाट का गोलकी मठ और चौंसठ जोगनी के स्थान बने। गांगेय देव की मृत्यु १०४१ में प्रयाग में हुई। कर्ण देव ने अमर कंटक और देव गाँव में मन्दिर बनवाये। त्रिपुरी से सीधे में अमर कंटक १३० मील पड़ता है। जबलपुर जिले के १२ मील छोड़कर बाकी के ११८ मील की पर्वतीय

यात्रा मण्डला जिले में होती थी। मण्डला जिले के उस सीधे मार्ग में कलचुरि काल के बहुत से अवशेष हैं। कर्ण देव के बाद अवनति होने लगी। गया कर्ण को चन्देलों ने हराया। अन्तिम परिचय विजयसिंह का ११६५ में मिलता है।

तुरुक खेडा : जबलपुर से १४ मील पश्चिम। रेलवे लाइन के पास वीरान गाँव है। मुगलों को तुरुक कहा जाता था। १५६४ से १६५५ तक मुगल दरबार के ऐलची आकर यहीं रहते रहे होंगे। इस स्थान का वर्णन न कहीं पढ़ा न सुना है। अवशेषों की आशा है।

दक्षिणावर्त्ति शंख :—शंख समुद्र में होता है। दक्षिणावर्त्ति शंख बहुत दुर्लभ होता है। पत्थर के दक्षिणावर्त्ति शंख पहाड़ों में मिलते हैं और ठोस होते हैं। शंख बनाने वाला समुद्री कीट पहाड़ों में जीवित है। ज्वालामुखी से पहाड़ बनने पर भी जीवित रह कर शंख बनाने का काम करता जा रहा है। जाम गाँव के पास, रैपुरा के पास शंख डोंगर में कई जगह मिलते हैं। एक नमूना जिला संग्रहालय में रखा है।

दमोह :—प्रसिद्ध है। बावन गढ़ों की और सत्तावन परगनों की सूचियाँ देखिये।

दियागढ़ :—देखिये बावन गढ़ों की सूची। वर्तमान स्थान कोहानी देवरी है।

दिवारा :—बंभनी से पाँच मील ईशान। गोंड राजाओं के ज्योतिषी रहते हैं। ज्योतिषी उपाधि है। अब नाम का अंग हो गया है। पिंडी के तिवारी हैं। बैगा जाति को "दिवार" कहते हैं। बैगा जाति से और दिवारा गाँव से कोई सम्बन्ध नहीं।

देई :—भुआबिछिया से चार मील उत्तर घुटास रोड पर। नदी किनारे पहाड़ तली में बड़ के नीचे बौद्धकालीन मूर्तियाँ और अधबना मन्दिर है।

देव गाँव :—मण्डला से २२ मील पूर्व नर्मदा और बुढ़नेर के संगम पर देखिये सत्तावन परगनों की सूची। जमदग्नि ऋषि का आश्रम है। परशुराम की तपोभूमि है। महाराज हिरदे शाह ने यात्रा की थी। यात्रा में रामनगर की राजधानी के लिये चुना। दस-बीस मील के इर्द-गिर्द में आजकल भी सर्वत्र फरसा (परशु) रखने की चाल है। स्थानीय बोलचाल में फरसा को तवल कहते हैं। टंगिया (कुल्हाड़ी) सरीखा

काम लेते हैं। देव गाँव के पास सिंगारपुर है जहाँ शृङ्गेरी ऋषि ने तपस्या की थी। एक पहाड़ी पर गौ के खुर के चिन्ह पत्थर की चट्टान पर बने हैं जिनकी पूजा की जाती है। एक शिवलिङ्ग अति.प्रकाशवान है जिसको सोना के लोभ से लोगों ने फोड़ने के प्रयत्न किये थे। ज्योति झलकती है पर ज्योतिर्लिङ्ग नहीं है। प्राचीन मन्दिर हाल में टूट गया है जिसको कैप्टेन वार्ड ने राजा करन का बनवाया हुआ लिखा है। कलचुरि कर्ण को महाभारत का कर्ण उसने भी समझ लिया था। विष्णु की अतिभव्य भावपूर्ण आदमकद मूर्ति है जिसको वहाँ रहने वाले एक साधु ने सिन्दूर पोत कर बद शकल कर दिया। अबुलफजल ने सत्तावन परगनों की सूची में देव गाँव के साथ हरभट का नाम लिखा है। देखिये हर्रांभट। १५६० के लगभग मधुकर शाह (नं० ५२) ने देव गाँव में एक पीपल के खोखट में बैठकर आग लगवा कर आत्म हत्या की थी। आत्म हत्या के दो कारण प्रसिद्ध हैं। एक यह कि उनकी सभा में अनेक विद्वान् रत्न थे। समूची सभा ने चिरकाल तक सह अस्तित्व के लिये सामूहिक आत्म हत्या की। दूसरा कारण यह कि मधुकर शाह ने अपने पिता और बड़े भाई की हत्या का प्रायश्चित आत्म हत्या करके किया। हत्या की अर्थात् नैतिक पतन हुआ। प्रायश्चित से मनस्विता सिद्ध होती है। देव गाँव नर्मदा के दक्षिण तट में है। उत्तर तट में मानोट है। देव गाँव में दफीने मिलते रहते हैं। राजभय से प्रगट नहीं होने देते। इसी प्रकार रामनगर में दफीने मिला करते हैं।

देवरगढ़ :—महदवानी से पाँच मील पूर्व। देवहार गढ़ का पाठान्तर हो सकता है पर स्थान बिलकुल भिन्न है। पुराने गढ़ और महलों के निशान हैं।

देवरी :—सागर से ३५ मील दक्षिण। देखिये बावन गढ़ों की सूची।

देवरी मिंगड़ी :—डिंडौरी से पाँच मील ईशान। गांव से एक मील उत्तर सरकारी जंगल में ददरा में सरई के वृक्षों के नीचे, एक सफेद चौकोर पत्थर २′ × २′ × १′ है। उसमें बहुत सुन्दर नक्काशी है। आस-पास ऐसे और पत्थर नहीं हैं या तो कोई बहुत दूर से लाया है या उसके साथी पत्थर मिट्टी में दब गये हैं।

देवहार गढ़ :—शाहपुर से दो मील पूर्व पहाड़ी पर बावन गढ़ों

की और सत्तावन परगनों की दोनों सूचियों में है। एक मित्र को चक्की के पाट का टुकड़ा मिला था। पत्थर भी छिन गया है। छिने पत्थर से अति प्राचीनता सिद्ध होती है। वह छिना हुआ चक्की के पाट का शिलाखण्ड जिला संग्रहालय में सुरक्षित रखा है। लोहा के गुखरू मिलते हैं। गुखरू बिच्छी सरीखे होते है। बिछा दिये जाते हैं। नोक का कांटा सदैव ऊपर रहता है। शत्रु की गति रोक कर आत्म रक्षा की जाती थी। अबुलफजल के समय में प्रसिद्ध था। कैप्टेन वार्ड ने तिरस्कार के शब्दों में लिखा है। देखिये १८६६ की प्रथम बन्दोबस्त रिपोर्ट। पेज १३३

Note on Gonds and Bygahs of Mundlah; Shahpore, Supposed residence of Deos......"12—In this talooqa of shahpore, there are several Places where Gond dieties are said to reside; and the wild rugged nature of the country, with its hills rent into vast chasms, by volcanic actions in former periods, and full of vast caverns and passages, apparently interminable, into the howles of earth, is quite sufficient to account for a superstitious creature like the Gond thinking its, must be the very home of dieties and evil spirits."

धनुवाँ सागर :—डिंडौरी से तीन मील दक्षिण। "सागर" के बदले में, एक बहुत छोटा सा तालाब बचा हैं, जिसे आज भी "कलचुरि तलैया" कहते हैं। ऐतिहासिक नाम जीवित है। धरातल में कोई अवशेष नहीं दीखते। भूगर्भ में अवशेष अवश्य होंगे।......चरोखर हैं। अहार हैं। धेनु शब्द पर से धनुवां सागर नाम पड़ा जँचता है...

धनौली :—बजाग से आठ मील पूर्व। विष्णु की अति सुन्दर और भावपूर्ण मूर्ति है। केवल एक यह मूर्ति, मण्डला जिले को, पुरातत्व के स्थानों में, ऊँचा पद देने के लिये यथेष्ट है। ऐसी ही मूर्ति को अमर कण्टक में केशव नारायण कहते हैं। धनौली की टौरिया में अन्य प्राचीन मूर्तियाँ भी हैं। प्राचीन काल के सिक्के मिलने की अफवाह है।

धामौनी :—सागर जिले में। देखिये बावन गढ़ों की सूची।

धुर्रा :—डिंडौरी से चार मील ईशान। १६२३ में अचानक एक बड़ी और पुरानी बावली का पता लगा।

धौरई :—डिंडौरी से तीन मील पश्चिम। धवल का अर्थ शुभ्र सफेद होता है। धवल शब्द पर से ही गाँव का नाम है। गाँव से एक मील वायव्य, पहाड़ी में, बहुत के सफेद, गढ़े हुए, नक्काशी दार पत्थर हैं। कभी अच्छी इमारतें रही होंगी।

नर्मदा नदी :—हिन्दू मात्र के लिये प्रत्यक्ष देवता और माता भी। शास्त्रों के अनुसार तपस्या का क्षेत्र। रेवा तीरे तपः कुर्यात्। नर्मदा का पौराणिक महत्व जानने के लिये नर्मदा पुराण, नर्मदा रहस्य आदि ग्रन्थों को पढ़ना उचित होगा। प्रयाग विश्वविद्यालय के अध्यापक दया शंकर दूबे ने नर्मदा परिक्रमा नामक पुस्तक लिखी है। संसार भर में नर्मदा ही ऐसी नदी है जिसकी परिक्रमा की जाती है। नर्मदा के उत्तर तट में विन्ध्याचल है और दक्षिण तट में सतपुड़ा पर्वत है। परिक्रमा में दोनों तटों की १८०० मील की यात्रा पैदल चल कर करना पड़ती है। तीन वर्ष लग जाते हैं। नर्मदा नदी देश के मध्य में है। अतएव परिक्रमा में पञ्च गौंडों की तथा पञ्च द्रविड़ों की दोनों प्रकार की मर्यादा का अनुभव होता है। संसार भर में नर्मदा नदी सब से अधिक रोमाञ्चकारिणी (Romantic) मानी जाती है। नर्मदा तट के गोल पत्थरों को शिवलिंग माना जाता है। नर्मदेश्वर शिवलिंगों का विशेष माहात्म्य है। जल प्रपातों में, जल के वेग के कारण कुण्ड से बन जाते हैं। उन्हीं कुण्डों में शिलाखण्ड घुल घल कर गोलमटोल हो जाते हैं। वे ही नर्मदेश्वर माने जाते हैं। मण्डला के सहस्र धारा में कई कुण्ड हैं। उनमें नर्मदेश्वर मिलते हैं। उनको "बाण" भी कहते हैं। धावड़ी कुण्ड में पचास फीट का जल प्रपात है। धावड़ी कुण्ड से प्राप्त शिवलिंगों का या बाणों का विशेष महत्व है। धावड़ी कुण्ड में जाने के लिये, बीर स्टेशन पर उतरना पड़ता है। बीर से पुनासा होकर जाते हैं, मोर टक्का से भी जा सकते हैं।

भूगर्भ शास्त्र के मत से नर्मदा जी, गंगा जी से बहुत अधिक प्राचीन हैं। इतने काल में न जाने कितने प्रलय हुए होंगे। नर्मदा माई का अस्तित्व, जैसा का तैसा कायम है। पौराणिक कथाओं के अनुसार नर्मदा जी का उद्गम, महादेव जी के शरीर से है। अमर-

कण्टक क्षेत्र में कई स्थानों को शिव रूप माना जाता है। जैसे जालेश्वर महादेव, शम्भु धारा और निंगोगढ़। मान्यता है कि नर्मदा तट में मृत्यु होने से मनुष्य को शिवत्व प्राप्त होता है। बात सच है मनुष्य शरीर के अवशेषों का प्रस्तरीकरण हो जाता है और पत्थर के खण्डों से नर्मदा की धारा में बहते शिवलिंग बन जाते हैं। जो नर्मदेश्वर होने से शिव रूप में पूज्य हो जाते हैं। अर्थात् मनुष्य शरीर को सारूप्य शिवत्व प्राप्त हो जाता है।

परिक्रमा में इस गोंडवाना क्षेत्र को "महारण" (महारण्य) कहा जाता है। ओंकारेश्वर और शूलपाणि की झाड़ियाँ अपनी भयानकता के लिये प्रसिद्ध हैं। गुजरात क्षेत्र में परिक्रमावासियों की संख्या अधिक है। वहाँ दान, धर्म अधिक है। सच्चे परिक्रमावासी ही, इस महारण क्षेत्र की कठिन यात्रा के कष्टों को सह सकते, आरामतलब परिक्रमावासी गुजरात के दान-धर्म तक ही सीमित रहते हैं, कष्टों के कारण परिक्रमा त्याग देते हैं।

जिस प्रकार उत्तर वाहिनी होने के कारण काशी में गंगा जी का विशेष माहात्म्य है, उसी प्रकार पूर्व वाहिनी (विरुद्ध दिशा) में होने के कारण, लिंगा गाँव के पास नर्मदा जी का विशेष माहात्म्य है। मंडला में भी नर्मदा जी का विशेष माहात्म्य है, क्योंकि मंडला में नर्मदा माई ने मंडला (वृत्त) बनाया है मण्डला नर्मदा रानी का दक्षिणतम बिन्दु है।

नर्मदा जी के सम्बन्ध में मंडला में कुछ स्थानीय परम्परायें मानी जाती हैं। जैसे नर्मदा जी की पूजा में बड़ी बूढ़ियों की आज्ञानुसार सिन्दूर कभी नहीं चढ़ाया जाता। क्योंकि नर्मदा कुमारी हैं। बूढ़ियाँ कहती हैं—"पूजा सामग्री में से सिन्दूर की डिबिया निकाल कर रख जाओ, ले मत जाना, कहीं कोई लड़का बच्चा, धोखे से सिन्दूर चढ़ा न देवे।" दूसरी परम्परा है कि—जब नर्मदा जी की कड़ाही की जाती है, तो प्रसाद कड़ाही में ही चढ़ाया जाता है। सिक्खों की तरह चढ़ाया जा चुकने पर ही प्रसाद का स्थानान्तरण किया जा सकता है। चढ़ाने के पहिले नहीं। तीसरी परम्परा है कि—बरसात में नर्मदा का पूर कितनी ही तीव्र गति से बढ़ रहा हो, शाम की आरती के समय दो चार मिनट के लिये पूर की बाढ़ रुक जाती है। गति सम हो जाती है।

नर्मदा माई सायंकालीन आरती स्वीकार करने के लिये रुक जाती हैं। बाद में चाहे पूर और तीव्र गति से बढ़ने लगे।

कई महत्वपूर्ण स्थान नर्मदा तट से दूर हैं। जैसे कुकर्रामठ, हिरदैनगर, बिंझौली, घनौली, फुलपुर आदि। नदी में धारा परिवर्तन होता रहता है। शैलों की स्थिति के कारण धारा परिवर्तन कम ही हुआ होगा। पर धारा परिवर्तन नहीं हुआ है, इस प्रकार का निर्णय कठिन है। पौराणिक कथा है कि राजा बलि ने अपने पुरोहित शुक्राचार्य के विरोध करने पर भी वामन अवतार को भूमिदान दिया। यह दानकृत्य नर्मदा तट में हुआ। अभी तक दान के स्थान का कोई परिचय नहीं मिलता। वामन मठ नामक एक स्थान है। डोंगर मण्डला से पाँच मील पूर्व और घुघरी से चार मील दक्षिण सर्वे आफ इंडिया के १८७२ के नक्शे में पहाड़ी को वामनमठ लिखा है। वामनमठ से नर्मदा, राम नगर में ग्यारह मील पश्चिम है। वामनमठ में पुराने समय की मूर्तियाँ पड़ी हुई हैं।

नर्मदा में मिलने वाली हिरन नदी का शास्त्रीय नाम हिरण्यग भी है। नर्मदा तट में राजकुमार अज का जो वन्यगज से प्रसंग हुआ था और जिसका वर्णन रघुवंश महाकाव्य के पांचवें सर्ग में है, वह स्थान जबलपुर के ग्वारी घाट के पास नर्मदा और गौर नदी के संगम का जंचता है। मंडला या टाटी घाट के पास का नहीं। रघुवंश के वर्णन को बारीकी से पढ़ने पर उसमें भेड़ाघाट का वर्णन मिलता है। जहाँ जल के कणों से वायुमंडल शीतल रहता है। और नागा पहाड़ का वर्णन मिलता है, जहाँ कि कवि ने ऋक्षवान् पर्वत के तटों में वन्य गज का निवास बतलाया है। ऋक्षवान् पर्वत का वर्तमान नाम "रिछाई" गांव है जो बरेला के पास है। ऋक्षवान् पर्वत का विस्तार नर्मदा और गौर नदी के संगम के पास तक है।

नरई:—रानी दुर्गावती का समाधिस्थल। मंडला जिले की सीमा से एक मील पश्चिम जबलपुर जिले की सीमा में देखिये लखनपूर नरेई नाम का नाला भी है। नरई का अर्थ होता है—नरने वाला, अर्थात् कष्ट देने वाला। समाधिस्थल के पास बग्घराज की कूर के पास एक सरस्वती मूर्ति मिली है।

नरहर गंज:—मोती नाला से चार मील ईशान। फेन नदी के किनारे है। मोती नाला से कबीर चबूतरा रोड़ पर अन्तिम राजा नरहर शाह

(१७७६-१७८०) के नाम पर बसा है। इन दिनों राजवंश का झुकाव पशुपालन और कृषि की तरफ अधिक हो गया था। नरहर गंज के दो हिस्से हैं। रैयतवारी और फारिस्ट विलेज पशुपालन का मुख्य केन्द्र है। धान की खेती बहुत होती है। देई में सफेद पत्थर की प्राचीन गोवत्स मूर्ति है। जिसके शरीर पर आटा की लोई फेरकर गर्भिणी गाय को खिलाने से सुन्दर, तगड़ा बच्छा होता है। "गौलीटीक" नस्ल का गौधन प्रसिद्ध है। अब कम हो रहे हैं। यह नस्ल दूध देने में कमजोर होती है। बछड़ा बहुत पुष्ट, बहुत सुन्दर और नुमाइशी होता है। विदर्भ में गौलीटीक बछड़ों की मांग बहुत है। देश भर में कहीं का कृषक, "गौली टीक" नस्ल के दो सफेद बैलों को अपने दरवाजे में बाँध कर अति सम्पन्न माना जा सकता है। आस-पास के १५।२० मील के क्षेत्र में पशुपालन बहुत होता है। इस क्षेत्र में पशु-चिकित्सालय और कृत्रिम रेतन केन्द्र का अभाव खटकता है। देखिये परिशिष्ट में ही खलौंडी और न्यौसा।

नारायन डीह:—शाहपूर से १२ मील ईशान दो अति प्राचीन बावलियाँ हैं। प्राचीन काल के तालाब के बाँध में आदम कद मासति मूर्ति है। कंधों में राम लक्ष्मण हैं। दो मील दूर अखराड़ के बन में किले की चहारदीवारी न जाने किस युग की है।

निंगोगढ़:—करंजिया से सात मील वायव्य, नर्मदा के उत्तर तट में, सहडोल जिला की सुहागपुर तहसील में मंडला जिले की सीमा से बाहर है। संसार भर में सब से अधिक विशाल शिवलिंग निंगोगढ़ ही है। अधिक बड़ा होने पर भी मानसरोवर का कैलाश नामक शिवलिंग निंगो से अधिक अर्वाचीन है।

निंगोगढ़ को उच्चारण भेद से लिंगो या लिंगोगढ़ भी कहा जाता है। राजनैतिक स्थान नहीं है न तो बावन गढ़ों की सूची में है और न सत्तावन परगनों की सूची में धार्मिक स्थान है।

सामाजिक स्थान है। बस्तर के माडिया और मुड़िया गोंड अपनी घोटुल प्रथा को भगवान् लिंगो की देन मानते हैं।

सब से पहिला उल्लेख हिस्लाप के लेखों में मिलता है। जिन्हें

१८६६ में सर रिचर्ड हेम्पल ने प्रकाशित कराया। १८७०-७१ की सर्वे आफ इंडिया की प्रथम सर्वे में स्थान का नाम है।

१६३० की सर्वे वाले नक्शों में नाम नहीं हैं। ऊँचाई ३५३३ फीट। सन् १६१६ में रसल और रायबहादुर हीरा लाल की ट्राइब्स एण्ड कास्टस प्रकाशित हुई। तीसरी पोथी में गोंड जाति पर एक सौ से अधिक पेज लिखे हैं। १३ पेजों में लिंगो की संक्षिप्त कथा है।

पेज ४८ में लेखक द्वय ने स्थान निर्णय में अपनी असमर्थता स्पष्ट शब्दों में जाहिर की है।

अनुमान लगाया है कि पचमढ़ी का महादेव पर्वत हो, या सालेकसा दर्रेकसा हो, या हिमालय में कहीं हो। अर्थात् १६१६ तक लेखक द्वय को सर्वे आफ इंडिया के १८७० के नक्शों का पता नहीं था और सर्वे वालों को हिस्लाप के लेख का पता आज तक नहीं है। कैप्टेन वार्ड ने या रीवांस्टेट गजेटियर ने कुछ नहीं लिखा। १८६६ के पहिले से आज तक अंग्रेजों को निंगोगढ़ का पता नहीं लगा।

१८३७ में स्लीमैन ने राजाओं का वर्णन लिखा। निंगोगढ़ की तरफ उसका ध्यान नहीं गया।

१८४२ में चार जर्मन पादरी निंगोगढ़ के बहुत पास करंजिया में रहे चारों मर गये।

१८६६ में हिस्लाप ने वर्णन लिखा। अवश्य खोज की होगी। सर रिचर्ड हेम्पल ने भी अवश्य खोज की होगी।

१८६६ में कैप्टेन वार्ड ने प्रथम बन्दोबस्त रिपोर्ट में कुछ वर्णन नहीं दिया।

१८७० में चार्ल्स ग्रेन्ट सी० पी० गजेटियर में कुछ उल्लेख नहीं कर सके।

१६०७ के मंडला जिला गजेटियर में नाम निंगोगढ़ का उल्लेख है। कुछ पता नहीं लिखा।

१६०८ के रीवा स्टेट गजेटियर में कोई वर्णन नहीं निंगोगढ़ रीवा स्टेट की हद में है।

१६१६ में ट्राइब्स कास्टस में पता लगाने के असफल प्रयत्न किये गये। रसल ता—६।५।१० से मंडला में डी० सी० थे। जर्मन युद्ध में विलायत से आते समय जर्मनों द्वारा डुबाये जहाज में मरे।

१६२३ में सी० यू० विल्स ने अपने को राजाओं तक सीमित रखा।

१६३०-१६४४ तक डाक्टर वेटियर एलविन करंजिया और पाटन में रहते हुए भी पता नहीं लगा सके। पाटन से दिखता है पर इन्होंने जानने का कष्ट नहीं किया। निंगोगढ़ का पर्वत, डिंडौरी से अमर कंटक जाने वालों को, मोहतरा के बाद ही दिखने लगता है। न साइन बोर्ड लगा है, न किसी को किसी से पूछने की आवश्यकता है। २५-३० मील घेरे के सैकड़ों गाँव वाले, लाखों आदमी, हजारहों वर्ष से जानते हैं कि अमुक पर्वत का नाम निंगोगढ़ है। पर अंग्रेजी राज्य के रहते तक किसी विद्वान ने नहीं जाना। अच्छा हुआ जो अंग्रेजों से अज्ञात रहा। अभी २६ जनवरी १६५६ को, राष्ट्रपति के समक्ष लोक नृत्यों में मण्डला जिला की आदिवासी पार्टी को भारत में द्वितीय और एक स्पेशल पुरस्कार प्राप्त हुआ। पार्टी लालपुर (गाडासरई) की थी। जिस लोक गीत को पार्टी ने गाया था उसका आशय है। 'पिहटी खूब फूली है, खूब फली है, जिससे बाडी चकनाचूर हो रही है" इस लोक गीत में 'पिहटी" शब्द मार्के का है। बरसाती फल "कचरिया" को गोंड लोग पिहटी कहते हैं। हिस्लाप ने लिंगों के वर्णन में पिहटी के पीले फूलों का वर्णन लिखा है। बेचारे अंग्रेज हिस्लाप ने, पिहटी शब्द का, न तो उच्चारण समझा और न अर्थ समझा। पिहटी को अंग्रेजी अक्षरों में Pihandi लिख दिया। नर्तक दल का लालपूर, निंगोगढ़ से केवल बीस मील पश्चिम है। पिहटी की इतनी पुरानी बात को इस लोक गीत में सुन्दरता से सुरक्षित रखा गया है। निंगोगढ़ का सम्बन्ध धुरवे गोत्र के गोंडों से है। गोंडों के हिसाब से निंगोगढ़ से अच्छा स्थान जातीय सभा के लिये और कोई नहीं हो सकता। निंगोगढ़ को गोंड लोग, साक्षात् बड़ा देव (महादेव) का रूप मानते हैं। आदि पुरुष निंगों से सम्पूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति शिवलिंग से मानी जाती है निंगोगढ़ की आकृति शिवलिङ्ग या शिवालय सी है। एक अलग सीधा ऊँचा पहाड़, किसी से लगा हुआ नहीं, जैसे जिलहरी पर शिवलिंग रखा हो। कामधेनु या कल्पतरु की तरह सभी इच्छाओं की सिद्धि करने वाला। सन् १८५७ के पहिले मंडला जिले में था। रीवां नरेश को कुछ हिस्सा दिया गया, तब से सोहागपुर जिले में चला गया।

नर्मदा पुराण आदि में वर्णन अवश्य होगा। हिस्लाप के लेख के अनुसार सब बातें सही हैं। पहाड़ पर पानी है, जो प्रवाहित होता है। एक शिला में हाथ डालने से एक चुल्लू पानी मिलता है, भृगु कमण्डल सरीखा। सहदेई के पीले फूल बहुत हैं। बीच में घाघरा घंटिया है जिसमें घाघरा (घुँघरू) हैं। गुफा के दरवाजे पर पत्थर लगा है। लोहे का फाटक है। आस-पास लाल मिट्टी है। सिद्ध स्थान है। बहुत से चमीटा चढ़े हैं। यह देव स्थान भुलावा देता है। दर्शन के लिये जाने पर दर्शन नहीं देता। अचानक जाने वालों को दर्शन नहीं देता। महादेव जी की आदत ही ऐसी है। ऊपर लाल पत्थर में गोलवृत्त बने हैं। साँची के तोरण सरीखे प्राकृतिक कारणों से कई जगह बहुत सी कांडी (उखली) बन गई हैं। जैसी देवद्वार गढ़ और टूटी डोंगर में हैं। कभी किसी नाग युद्ध में नाग को काटा। नाग के टुकड़े पत्थर होकर पड़े हैं। नाग वंशियों के वैभव का और युद्ध का स्थान है। लोग पांडव कालीन स्थान मानते हैं। दो तीन साल से, कई सज्जन रामधुन करने लगे हैं। पास में कई धार्मिक स्थान हैं जैसे अमरकंटक, कपिलधारा, दूधधारा, फिरंगी, कबीर चबूतरा आदि।

एक रहस्य बिल्कुल नहीं खुल पाया। वस्तु स्थिति इस प्रकार है। निंगो शब्द पुल्लिंग है। निंगो का स्त्रीलिंग होता है निंगुआनी। गढ़ नामक स्थान डिंडौरी से ६ मील दक्षिण पश्चिम में है। निगुआनी का कहीं कोई लेख या लोक कथा नहीं है। लोग देवस्थान मानते हैं। निंगो और निंगुआनी के बिल्कुल मध्य में, शोभापुर गाँव के पास, नर्मदा की धारा के अन्दर, एक कुण्ड में अनगढ़ शिवलिंग है जो सदैव नर्मदा के प्रवाह में रहने पर भी नहीं घिस पाया। निंगुआनी गढ़ की ऊँचाई ३११६ फीट लिखी है। इमारतों के और किले के भग्नावशेष हैं। पहाड़ पर चढ़ने को सीढ़ी हैं। पहाड़ पर कुआँ और बावली है। तीन मूर्तियाँ ऊपर दिखती हैं। पैदल और घुड़सवार योद्धाओं के हाथ में तलवारें हैं। मूर्तियों को रायनिंगो कहते हैं।

निंगोगढ़ का पता लगा सकने में मैंने अपने को अति भाग्यशाली समझा है। गोंडों की लोक कथाओं में निंगोगढ़ का स्थान अद्वितीय है। बहुत अच्छा रहा जो अंग्रेजों को निंगोगढ़ का पता नहीं लग पाया। जितनी अधिक दिलचस्पी हिस्लाप और रसल ने निंगोगढ़ की तलाश के

लिये दिखाई है, उससे अनुमान होता है कि, अंग्रेजी शासन काल में यदि निंगोगढ़ का पता चल जाता, तो निंगोगढ़ के शिखर के ऊपर अच्छा बड़ा गिरजाघर न जाने कब का बन चुका होता।

निवास :—देखिये बिंझौली। लोधी राजाओं का निवास स्थान था।

निमुआगढ़ :—देखिये बावन गढ़ों की सूची।

निरन्दगढ़ :—मंडला से दस मील ईशान नरिन्दशाह (१६६५-१७३२) के नाम पर एक मील दूरी में भंडार तास नामक गाँव है।

न्यौसा :—सोतीनाला से चार मील पूर्व। सदैव से प्रसिद्ध चरागाह है। बैलों की मूर्तियां हैं। तालाब के मध्य में स्तम्भ है। गाँवली जाति की दृष्टि में पवित्र स्थान है। पास में संगली के कुआँ का जल अति पाचक है। स्वास्थ्य केन्द्र बनाने लायक स्थान है।

न्यौसा पोंडी :—शाहपुर से दस मील पूर्व। गंजरानाला के किनारे प्राकृतिक गुफा में हजारहों मूर्तियाँ हैं। घोड़ों की और हाथियों की मूर्तियाँ भी हैं।

पचगाँव रैयतवारी :—देखिये बीजागढ़

पचेलगढ़ :—सिहोरा तहसील के कूम्ही के आस-पास के क्षेत्र को पंचेल कहते हैं। देखिये बावन गढ़ों की सूची।

पंडकी :—पडरिया नारायन गंज से बीस मील ईशान। नर्मदा तट में। जंगलों में शिव टेकरी और बिंझौली सरीखी नक्काशी के लम्बे काले पत्थरों के कई ढेर हैं।

पड़रिया डोंगरी :—बाजाग से एक मील वायव्य। पुराना तालाब और गिरा हुआ मन्दिर है। बहुत से गढ़े और नक्काशीदार पत्थरों के ढेर हैं।

पदमी :—मण्डला से चार मील दक्षिण घोड़े पर सवारों की कई मूर्तियाँ है। कलचुरि काल की विष्णु मूर्तियों के शिलाखण्ड हैं। शिव पार्वती की एक मूर्ति में पार्वती दाहिने भाग में हैं। गाँव की आबादी के भीतर शीतला के स्थान में माता और शिशु की एक मूर्ति में अजन्ता की पूरी कलाकृति है। सीता फल की झाड़ी में मूर्तियां हैं।

पवईकरही :—देखिये बावन गढ़ों की सूची।

परासी :—शाहपुर से १६ मील ईशान। जोहिला नदी के किनारे,

जलप्रपात के पास, कंकन घुघरा घाट में, प्राकृतिक गुफा है। गुफा के भीतर प्राचीन मन्दिर हैं और तालाब है।

पाटनगढ़ :—देखिये बावन गढ़ों की सूची। जबलपुर की तहसील है। कई स्थानों में प्राचीन मूर्तियाँ हैं। एक और पाटन है। डिंडौरी से ३१ मील पूर्व अमरकण्टक रोड में। यहाँ पुराने नक्काशीदार पत्थरों के ढेर हैं।

पाठा :—पड़रिया नारायणगंज से दस मील दक्षिण-पश्चिम। नर्मदा तट में। गढ़ा और मण्डला के बीच प्राचीन राजमार्ग में पड़ता है। गोंड राजाओं के राजचिन्ह को, गांव वालों ने देवी का वाहन, सिंह मानकर मूर्ति की स्थापना कर दी है।

पिंडरई :—नैनपुर से दस मील वायव्य, रेलवे स्टेशन। १८१७ में पिंडारी युद्ध के बाद, पिंडारियों को अभयदान मिला। कुछ यहाँ बसाये गये। पशुओं का प्रसिद्ध बाजार है। मादक द्रव्यों के तस्कर व्यापार का केन्द्र है। बड़ी बस्ती है धनवान अधिक हैं।

पीपरपानी :—मण्डला से दो मील आग्नेय। धानूपंडा की कीर्ति के "जस" नामक लोकगीत गाये जाते हैं। धानू पंडा या धानू शाह नागवंश के थे। नागवंश की उन्नति महाभारत के बाद हुई। धानूपंडा नामक

From the District Gazetteer of Mandla, page 26, Another legendary account of the rise of the Mandla dynasty is the following :—

In piparpani there once lived farmer with his only daughter, Basanti. The farmer used to work daily in his fields, Ploughning, sowing or reaping, and his daughter each mid-day brought to him his food. On her way, she used to pass an ant-hill. In the heart of which there lived a man in the guise of a serpent. One day, as the maiden sat ant rested by the ant-hill, the serpent came towards her. The maiden was frightened and took to her heels; but the serpent, assuming human form, called out after her, saying, "Do not be afraid; I am a man. Come and

talk with me daily" यहाँ पर अँग्रेज लेखक की भूल स्पष्ट दिखती है। अनुवादक ने "बोलना बताना" मुहावरा का अर्थ नहीं समझा।

"She obeyed his behest and in the course of time became very enarmoured of her strange play-fellow. Shortly afterwards she became pregnant, and on being questioned by her parents, admitted that the father of her child was a serpent, who had informed her that the child was to be called DHANU SHAH, and would in course of time, become king of Mandla. The Serpent's words fell true, and Dhanu-Shan his son by the farmer's daughter was crowned king of Mandla, the date of his accession being 150 A. D." व्यक्ति नागवंश के राजा थे, इतना इस उद्धरण से स्पष्ट हो जाता है। पता नहीं सन् १५० किस प्रमाण पर से गजेटियर में लिखा है। लोक कथा और किम्वदन्ती का महत्व बहुत होता है। पीपरपानी शब्द का मूल रूप पिप्पलेश्वर महादेव से है।

पुरवा :—मण्डला से आधा मील दक्षिण। पुराना नाम सरस्वती-प्रस्रवण तीर्थ। प्रसिद्ध है कि नर्मदा संगम में जल के अन्दर मन्दिर बना है। सूखे और सड़े बिल्व पत्र कई बार बहते दिखे हैं। धर्मशाला के पश्चिम द्वार में मारुति की मूर्ति के कमर में पेश कब्ज (कटार) है। ऐसी ही पेशकब्ज सूर्यकुण्ड की मारुति मूर्ति में तथा शिवटेकरी की वराह मूर्ति में है। कटार की ऐसी स्थिति न जाने मुगल प्रभाव से है या पहिले भी थी।

पूना गढ़ :—देखिये बावन गढ़ों की सूची।

पोंडी :—मण्डला से १६ मील, गेड पर। बाजार में पीपल के नीचे भैरव की एक छोटी मूर्ति देव गांव से लाकर रखी गई है। पास की पहाड़ी को "बजनी घटिया" कहते हैं। वहाँ बजने वाले पत्थर हैं।

फतहपुर :—होशंगाबाद जिले में। देखिये बावन गढ़ों की सूची।

बंजर नदी :—मण्डला के पास नर्मदा से संगम करती है। रेतीली नदी है। बंजर की रेत में सोने के कण पाये जाते हैं। बंजर नदी छुई-खदान की गढ़ई जमीन्दारी से निकल कर, बालाघाट जिला से होकर

आती है। नैनपुर के पास की एक कन्हार नदी बंजर में मिलती है। कन्हार नदी के क्षेत्र (कैचमैंट एरिया) में एक घाटी है जिसे सोना रूपा घाटी कहते हैं। बंजर में सोने के कण कहाँ से आते हैं, इस विषय की खोज करने में सोना रूपा घाटी का नाम सहायक हो सकता है। बंजर में सोने के कण इतने थोड़े मिलते हैं कि खोज करने वाली सुनझरिया जाति वालों की मजदूरी नहीं निकलती।

बन्दी छोह :—समनापुर से चार मील उत्तर। ८×४=३२ वर्ग मील का विस्तृत वन। राजवा और चाँदवा दो प्रतापी बन्धुओं ने, बाहर से आयुर्वेदीय औषधियों को मँगवा कर उनका उपवन लगवाया था। सब जंगली हो चुकने पर भी, औषधियाँ हैं। इस क्षेत्र में एक नाला बहता है। जिसका जल फीके लाल रंग का है। जल स्वास्थ्यप्रद है। यह उपवन, आयुर्वेदीय वनस्पति विज्ञान के अध्ययन के लिये अनुपम स्थान है। रोगी लोग रविवार के दिन मौका में जाकर वहाँ औषधि खाकर स्वास्थ्य लाभ करते हैं। दुर्लभ वनस्पतियों का एक और स्थान है, मुरता रैयतवारी।

बरगी :—देखिये बावन गढ़ों की सूची। छोटी लाइन का स्टेशन है।

बांकागढ़ :—देखिये बावन गढ़ों की सूची।

बाघमार :—देखिये बावन गढ़ों की सूची। मवई क्षेत्र के सठिया से छः मील पूर्व। बाघमार गांव, कवर्धा तहसील में है। बाघमार से २ मील पश्चिम में गढ़ी डोंगर है। गढ़ी डोंगर मण्डला जिला और कवर्धा तहसील की सीमा में है। वहीं पर बघवरा नाला है। बाघमार बैगा जाति का गढ़ है। आसपास बहुत बैगा हैं। महाराजा संग्रामशाह द्वारा, गोंडों के राज्य में मिलाये जाने पर भी, बैगा जाति के रहन-सहन में कोई फरक नहीं पड़ा। बाघमार के पास दलदली नामक गाँव है। इस पूरे क्षेत्र को बन्धान कहते हैं। बन्धान किसी गाँव का नाम नहीं है। बंधान में बैगा लोग बेवर काश्त करते हैं। अहीर लोग पशु-पालन करते हैं। दोनों पेशे अति प्राचीन काल के हैं। दुर्गम बन्धान में प्राचीन मानव समाज का अच्छा अध्ययन क्षेत्र है। प्राचीन अवशेष हैं। बैगा लोगों की रहन-सहन में प्राचीन राजसी ठाठ के भी दर्शन होते हैं। बैगा लोग जंगल और आबकारी कानूनों का तिरस्कार करते हैं। बैगा जाति में बैसा

कोई विधान नहीं है, जिसको अंग्रेजी में ब्लैकमैजिक कहते हैं। बैगा जाति में जंगली जड़ी-बूटी और कन्दमूलों का बहुत ज्ञान है। बाघमार नाम का एक और स्थान खण्डवा से बीस मील आग्नेय में है।

बावन गढ़ :—महाराजा संग्रामसिंह का राज्य विस्तार बावन गढ़ों में था। सूची अबुल फजल ने दी है। महाराजा संग्रामसाहि के पाठ में सूची और स्थान निर्णय के प्रयत्न हैं।

बारंगदा :—बीजाडाँड़ी से तीन मील पूर्व प्रसिद्ध मढ़िया है। सैकड़ों आधुनिक मूर्तियाँ हैं। स्थान पुराना है मढ़िया का वर्तमान भवन नया है। सोमवार को मेला सा लग जाता है। श्रद्धालु भक्त देवी की उपासना और रोगों की शान्ति के लिये आते हैं। एक बहुत पुरानी सफेद संगमरमर की देवी मूर्ति करीब दो फुट ऊँची है। चतुर्भुजी मूर्ति में त्रिशूल, तलवार, मुंड आदि हैं।

देवी की मूर्तियों के बीच में करीब दस इंच ऊँची एक जैन मूर्ति है। अच्छा पुष्ट शरीर है। बहुत सफेद संगमरमर की प्राचीन मूर्ति है। लोग इस जैन मूर्ति को नर्मदामाई की मूर्ति कहते हैं।

बरंगदा की मढ़िया को आसपास के लोग सिद्ध स्थान मानते हैं। एक उदाहरण है। "फागूलाल अहीर की उम्र २२-२३ वर्ष की है। पिता का नाम छोटेलाल था। छुटपन में पिता मर गया। एक और भाई पूरन मर गया। अब एक भाई सुकल है। दो मील दूर पिपरिया में रहता है। बहुत पहिले पूर्वज देवहारगढ़ में थे। गोत्र खुसरो है। फागूलाल को गये सावन भादो कुवार में तेरह बार साँपों ने काटा। अन्तिम बार दशहरा के दिन पहिले काटा। जिस दिन जवारे निकलते हैं, उसी दिन। तेरह बार में कई प्रकार के साँपों ने काटा। जैसे, करिया, चुन्सी गड़ायन, कोयली, गट्टा, महमण्डल, कन्यानागन आदि। हर बार धनवाहाँ के बरुआ ने मुँह से जहर चूसकर मुझे अच्छा किया। मैं तंग आ गया। दशहरा के दिन नारियल लेकर बरंगदा की मढ़िया में आया। सवा रुपया बैठकी दी। कलश की मानता मानी। चैत में कलश बोया गया। तेरह रुपया का बुकरा दिया। चार आने तेल के दिये। अब मैं साँप के त्रास से बरी हो गया हूँ। अब मेरे विवाह की बात चल रही है। अभी मुझे पाँच सेर कनक का भंडार और देना बाकी है। सो देवस्थान का कर्ज जल्दी चुका दूँगा।"

इस तरह लोगों को त्रास से त्रास मिलता है। स्थान प्रसिद्ध है। ऐसी आराधना को विलायती विद्वानों ने जादू मन्तर समझ कर, ब्लैक मैजिक कहा है। जितनी बातें ब्लैकमैजिक के नाम से बदनाम हैं उनमें से अधिकांश को शुद्ध आराधना कहना ठीक होगा।

दरी —देखिये बावन गढ़ों की सूची। रानी दुर्गावती की पराजय के बाद, चंद्रशाह (नं० ५१) ने अकबर को नजराने में दे दिया। दुर्गावती की पराजय के पहिले नजराने वाले दसों गढ़ों के राजा गोंड थे। दुर्गावती की पराजय के बाद बारी के गोंड राजा ने अकबर के विरुद्ध बगावत की। अकबर ने राजा सुरजन हाड़ा को बगावत का अन्त करने भेजा। राजा सुरजन हाड़ा सफल हुए। अकबर ने प्रसन्न होकर उन्हें चुनार आदि गढ़ दिये।

बाँसा :—निवास और शहपुरा की रोड में। शहपुरा से आठ मील दक्षिण पश्चिम वनस्पति के तथा हड्डियों के प्रस्तरीभूत टुकड़े मिलते हैं।

बिछिया :—शहपुरा और निवास के बीचोबीच, रोड में। छोटी महानदी के तट पर। छोटी महानदी, बिछिया के पास, उमरिया गाँव के एक गोंड़ के खेत से निकल कर, चन्दिया तरफ, उत्तर में चली जाती है। छोटी महानदी के तट वाली यह बिछिया, सुवा बिछिया से बिलकुल भिन्न है। बिछिया में एक प्राचीन मन्दिर खड़ा है। गाँव भर के लोगों ने बाड़ी की हदबन्दी में नक्काशीदार पुराने पत्थरों के ढेर लगा रखे हैं।

बिजौरा :—डिंडौरी से छः मील उत्तर। जंगली केला बहुत है। जंगली केले के फलों में एक दम काले मटर बराबर बीज होते हैं। दवा में काम आते हैं। बीजों में उत्पादन शक्ति नहीं होती। मुझे भी विश्वास नहीं होता था। देखा तो मानना पड़ा।

बिंझौली :—निवास से तीन मील उत्तर। प्राचीन नाम विन्ध्यावली या ऐसा ही कुछ रहा होगा। बिंझौली से ४५ मील उत्तर रूपनाथ में अशोक की प्रशस्ति है। निवास से बिंझौली जाने में, (१) निवास मोटर स्टैन्ड में वट वृक्ष के नीचे अष्ट भुजा देवी की अति भग्न और बहुत सुन्दर मूर्ति है। हाथ में पुस्तक सी है। और राड सुन्दर सिर भी पड़े हैं।

(२) निवास में एक छोटा तालाब है जिसे चोपड़ा कहते हैं। सब

सीढ़ियों में नक्काशीदार पुराने पत्थर लगे हैं। अवलोकन से कई में जैन मूर्तियाँ दिखती हैं।

(३) पास के राम मन्दिर के बाहर प्राचीन काल की विष्णु, सूर्य आदि की मूर्तियाँ हैं। एक अलग महराब के बीचोबीच जैन तीर्थङ्कर हैं।

(४) निवास और बिंझौली के बीच में, सड़क के पास "छुलछुल राजा" नामक मूर्ति है। लोग बुद्ध मूर्ति समझते हैं। मैं शान्ति नाथ तीर्थङ्कर मानता हूँ। काले कसौटी के पत्थर की आदम कद, पद्मासन मूर्ति है। केश कलाप घुंघराले हैं। कान फटे होने के कारण नीचे की तरफ लम्बे हैं। ऊपर दो हाथी अभिषेक कर रहे हैं। जिनमें से एक स्पष्ट है। सिंहासन के वजन को दो सिंहों ने उठाया है। नीचे दो हरिणों के चिन्ह हैं। अतएव शान्ति नाथ हैं। यह एक मूर्ति ही मण्डला जिले को सदैव से असभ्य असिद्ध करने को यथेष्ट है।

(५) एक मील और चलने पर, घुड़नेर या शिवटेकरी नामक स्थान, सड़क से तीन फर्लाङ्ग है। एक नवयुवक साधु ने राम, लक्ष्मण स्थापन किया है। कुआं खुदवाने में बड़े गड़े पत्थर निकल रहे हैं। आश्रम के बाहर करीब चार फुट ऊँची चौमुखी गुम्बज रखी है। चारों तरफ मूर्तियाँ हैं। अर्द्धनारीश्वर। दूसरी वराह, कमर में पेश कब्ज जैसे सूर्य कुण्ड में है, नीचे मछली और सर्प। तीसरी, ब्रह्मा, नीचे तोता सरीखा हंस बना है। चौथी सूर्य मूर्ति जैसी घुघरी की मूर्ति है। बाबा जी के आसन के पास एक और मूर्ति है। जिसके बीच में १३-१४ इंच व्यास का वृत्त है। वृत्त में एक मुखाकृति और दो हथेलियाँ हैं। आस-पास कमल की पंखुरियां बनी हैं। केश कलाप बौद्ध मूर्तियों जैसा है। हथेलियों में एक चना बराबर बिन्दु-सा उभरा है। मुखाकृति इतनी सुन्दर और भाव पूर्ण है कि सारनाथ में भी शायद ही हो। बाबा जी को इस मूर्ति के भीतर एक बाणफल भी मिला है। ऐसी पर इससे कम भाव पूर्ण, दो मूर्तियाँ अमरकण्टक के मन्दिरों के ऊपर लगी हैं। भुवनेश्वर के परशु रामेश्वर मन्दिर में भी ऐसी मूर्ति है।

(६) बिंझौली गाँव भर में पुरानी नक्काशी वाले पत्थर हर घर में लगे हैं। श्री भइयालाल लोधी के घर में ठोस पत्थर का एक सुन्दर कलश रखा है। जो किसी मन्दिर के ऊपर का कलश रहा होगा। हर अवशेष

से सिद्ध होता है कि बिंझौली में कई प्राचीन मन्दिर थे और अच्छा बड़ा नगर था।

वट वृक्ष के नीचे, खुदाव वाले पत्थरों के ढेर पड़े हैं। एक कुटिया में एक अति वृद्ध बाबा जी रहते थे वहाँ देवी की विशाल मूर्ति तथा अन्य मूर्तियाँ हैं। इसी कुटी के पास एक प्राचीन शिवलिंग है। बिंझौली से बहुत लोग मूर्तियाँ ले गये। चमकीले दाने भी मिलते हैं।

(७) बिंझौली के पास भोंहरा है। हिरदे नगर में भी भोंहरा कहते हैं। भोंहरा भूमिगत निवास स्थान को कहते हैं। पहिले तपस्वी या भिक्खु रहते रहे होंगे। जमीन पोली जँचती है। खुदाई में जो निकले।

(८) बिंझौली से दो फर्लाङ्ग पर अमगवां है। अमगवां ने जिला भर में अक्षर दान दिया है। पच्चीस वर्ष पहिले जिले भर के प्रायमरी शिक्षकों में से ६५ प्रतिशत अमगवां के थे।

(६) पास के गाँव भीखमपुर अमगवाँ आदि में सब जगह थोड़े-थोड़े अवशेष मिलते हैं। निवास से ६ मील ईशान खमरिया में अधिक हैं। पुराना तालाब और गढ़ी है।

बिरसिंहपुर पायली :—डिंडौरी से ४२ मील। रेलवे स्टेशन। कोयला खदान। पहिले बड़ा मठ था। प्राचीन काल की मूर्तियाँ हैं। हिन्दू मत की और जैन मत की।

बीजागढ़ :—इतिहास में अभी तक बीजागढ़ के बारे में कुछ नहीं मिला। विवाह के लोक गीत "तरीना केना..." में बीजागढ़ का नाम आता है। बीजागढ़ नामक तीन स्थानों का परिचय है। १) बसनियां से ३ मील पूर्व, सुहागपुर तहसील में (२) सक्के से तीन मील दक्षिण पश्चिम, पहाड़ में पुराने किले के खण्डहर हैं (३) डिंडौरी से १३ मील पूर्व, पचगाँव रैयतवारी की दाहिनी तरफ की पहाड़ी का बीजागढ़ कहते हैं। ऊँचाई ३१८२ फीट। पहाड़ी में गुफा थी। वहाँ भवनों के अवशेष, पत्थर की चौखटें, नक्काशीदार पत्थर सब दीखते थे। १६२६ की वर्षा में शैलस्खलन होने से गुफा में पत्थर भर गये। ४ बीजागढ़, लोजी से आठ मील ईशान में है।

बीरागढ़ :—उच्चारण भेद से बैरागढ़। देखिये सत्तावन परगनों की सूची। तीन स्थान प्रसिद्ध हैं। (१) भोपाल से सात मील उज्जैन लाइन में रेलवे स्टेशन, (२) दमोह के पास (३) चाँदा जिले का बैरागढ़।

वैगाचक :—देखिये बाघमाड़ और बैगा जाति का वर्णन। बैगाचक मण्डला जिले के उस पूर्वी हिस्से को कहते हैं, जहाँ बेवर काश्त जायज है। मण्डला जिला की वाजिबुल अर्ज में बेवर काश्त की सख्त मुमानियत लिखी है। केवल बैगा चक के दस हजार एकड़ में बेवर काश्त जायज है। दस हजार एकड़ के पाँच अंकों में केवल साढ़े पंद्रह वर्ग मील (१५·६२५) होते हैं। अर्थात् पाँच हजार वर्ग मील वाले मण्डला जिले में कुल क्षेत्रफल का एक बटे दो सौ तीस भाग वह भी अति दुर्गम और बिना आमदनी का पर्वतीय क्षेत्र। बैगा चक में बेवर काश्त का विज्ञापन महत्व बहुत हुआ। बैगाचक में चार गाँव हैं। रुझनी-सरई, ढावा, अजगर और सिलपुरी। उन दिनों १८६० में बेवर काश्त को असभ्य समझते थे। अब प्राचीनता समझने लगे। बैगा चक में केवल ७१ बैगा कुटुम्ब मण्डला जिला छोड़ कर बिलासपुर की पडरिया जमीन्दारी में और कवर्धा रियासत में चले गये। देशी (नेटिव) राज्यों में बेवर की मनाई नहीं थी। बैगा चक में या बैगा जाति की राजधानी बाघमाड़ में कभी किसी विधर्मी ने शासन नहीं किया। बैगा चक के पास मड़फा का गिरजा घर १८६५-१६०० के अकाल में गुलजार था। अब खण्डहर है। अब अकाल नहीं रहा। लोगों को भोजन मिलने लगा, तो ईसाई होना कम हो गया।

बैगा चक में और बाघमार के आस-पास बैगा जाति के अध्ययन से पता चलता है कि वे पूर्णतया हिन्दू हैं। हिन्दू प्रथाएँ मानते हैं। बैगा युवक की बारात हाथी में निकलती है। आजकल दो खटिया में कम्बल डाल कर हाथी का प्रतीक बना लेते हैं। बाघमाड़ के आस-पास प्राचीन हिन्दू सभ्यता की इमारतों के और मन्दिरों के अवशेष हैं।

भँवरगढ़ :—देखिये बावन गढ़ों की सूची

भवरासो :—देखिये बावन गढ़ों की सूची। रानी दुर्गावती की पराजय के बाद चंदशाह (नं० ५१) ने अकबर को नजराने में दे दिया।

भलवारा :—महदवानी से आठ मील पूर्व। आदमकद से बड़ी स्त्री मूर्ति को "रानी बघेलिन" कहते हैं। एक बच्चा गोद में है, एक पैर के नीचे दबा हुआ है। रानी ने आत्म हत्या की। पत्थर हो गई। रामनवमी में मेला भरता है। गजेटियर में लिखा है, जब मालवा के पँवारों द्वारा

और दक्षिण के चालुक्यों द्वारा वंश कमजोर हो चुका था, तब ११८१ में रीवा के बघेल राजा ने हैहयों के वैभव को समाप्तप्राय कर दिया। इस "बघेल राजा" शब्द से शायद इस 'रानी बघेलन" का कुछ समय निर्धारित हो सके। स्थानीय परिचय भ्रामक भी हो सकते हैं।

भीमकुण्डी :—करंजिया से पाँच मील वायव्य। फिरङ्गी उर्फ परताबगढ़ के पास। नर्मदा के दोनों तटों में दो टोला हैं। एक टोला डिंडौरी तहसील में है, दूसरा टोला सुहागपुर तहसील में हैं। स्थानीय कथा है कि महाभारत वाले भीमसेन नर्मदा के दोनों तटों में दो पैर रखकर बैठे थे। दोनों तटों की चट्टानों पर पैरों के निशान हैं। दोनों निशान एक हाथ व्यास के हैं। यात्री स्नान को आते हैं। भीम कुण्डी से आधा मील उत्तर में निंगोगढ़ है।

भीम डोंगरी :—एक मोती नाला से सात मील आग्नेय, जगजगी के पास। दूसरी मुक्की से (बईहर जिला बालाघाट) दो मील पूर्व। इस दूसरी भीम गोंडरी में अवशेष के बड़े पत्थरों को लोग भीमसेन के द्वारा लाये कहते हैं। पास में भीमलाट में पत्थर का लम्बा-चौड़ा पलङ्ग है और करिया पहार सरीखी पत्थर की मियालें हैं। दो में से कोई एक भीमडोंगरी या बालाघाट जिला की सीमा वाला रायगढ़ गाँव, रायगढ़ क्षेत्र की राजधानी थी। भीमसेन के नाम से कुछ ऐसा भी हो सकता है कि भीमसेन की एक पत्नी हिडिम्बा इसी क्षेत्र की रही हो। भीमसेन और हिडिम्बा के पुत्र घटोत्कच ने महाभारत युद्ध में पाण्डवों की तरफ से भाग लिया था।

भीमा :—मुआविछिया से आठ मील पूर्व, टिकरा के ऊपर, बिना सिर की मूर्ति को भैरो बाबा कहते हैं। बहुत उग्र मूर्ति मानी जाती है। भीमा में सफेद अभ्रक बहुत मिलता है, अभ्रक मिलाकर बने ईंटों का उपयोग लोहे की भट्टी में होता है। काला अभ्रक मवई के पास कनई नदी में मिलता है।

भोपाल :—मध्यप्रदेश की राजधानी। देखिये बावन गढ़ों की सूची। भोपालशाह (नं० ११) के नाम पर। नामकरण हुआ। गोंड राजाओं के आधिपत्य में इकतालीस पीढ़ी, सन् ६६५ से १५६४ तक, ६०० वर्ष तक रहा। रानी दुर्गावती की पराजय के कारण चन्द्रशाह (नं० ५१) ने अकबर को नजराने में दे दिया।

मकराही :—मकड़ाई रियासत। हरदा से २५ मील दक्षिण। देखिये बावन गढ़ों की सूची। रानी दुर्गावती की पराजय के बाद चन्द्रशाह (नं० ५१) ने अकबर को नजराने में दे दिया।

मगरदहा :—बीजा डाँडी थाना से चार मील पश्चिम। गोंड राजाओं का शिकारगाह था। वनपशु पले थे। पास में सरकारी जंगल में पुराने महल हैं। नरई समाधिस्थल से ६ मील पूर्व है। रानी दुर्गावती नरई से मगरदहा नहीं पहुँच पाईं। एक और मगरदहा है तरवानी (रोड पर) से दो मील पूर्व में।

मक्खियाखार :—गाडासरई से तीन मील उत्तर नर्मदा तट में। तीन प्राचीन मन्दिरों में कुकर्रामठ सरीखी नक्काशी है। इस गाँव में प्रसिद्ध इतिहासज्ञ मुंशी अलादीन खाँ रहते थे।

मड़फा :—मवई से छः मील ईशान। ईसाइयों का परित्यक्त केन्द्र। बुढ़नेर नदी के किनारे पुराने जमाने के किले की बुनियाद के अवशेष हैं। सुना है बुढ़नेर नदी में मड़फा के पास ऊद नामक बन्दर की शकल के जलजन्तु पाये जाते हैं। मछली की सफाई कर डालते हैं। गंगा जी का सूस बिलकुल भिन्न प्राणी है। किसी जू में ऊद नहीं दिखा।

मड़ियारास :—कुकर्रामठ से आठ मील ईशान, सुहागपुर तहसील में। पहाड़ तली के "फरहदा के दरम्यान" नामक स्थान में मारुति की विशाल मूर्ति है। एक गिरे मन्दिर के नक्काशीदार पत्थर कुकर्रामठ सरीखे हैं। एक और मड़ियारास डिंडौरी तहसील में, डिंडौरी से सात मील पूर्व है।

मधुपुरी :—मण्डला से छः मील पूर्व दक्षिण तट पर। जूना मंडला के ठीक सामने महाराज मधुकरशाह (नं० ५२) (१५७६-१५९०) के नाम पर। देखिये देव गाँव।

(१) मधुपुरी प्राकृतिक दृश्यों का स्थान है। नर्मदा ने बहुत से मंडल बनाये हैं। लहराती बलखाती बहती है। करीब ३५ वर्ष से मधुपुरी घोड़ा घाट का मेला बन्द हो गया है। घोड़ा की मूर्ति है।

(२) नर्मदा तट में दो प्राचीन शिवलिंग हैं। दोनों व्यास नारायण या बिंझौली के शिवलिङ्ग की तरह हैं। एक का नाम मार्कण्डेय है, ऊपर एक हाथ ऊँचा और व्यास करीब एक फुट, पश्चिम तरफ झुका हुआ, तिरछा गहरा गड़ा है। न जाने कितना गहरा है। सीधा करने के

प्रयत्न असफल होते रहे। दूसरा मन्दिर से बाहर है और मुटाई में कम है।

(३) मार्कण्डेय मन्दिर के सामने एक चौतरे में कुछ मूर्तियाँ हैं। एक १३-१४ इंच की स्त्री मूर्ति के हाथ में ढाल तलवार है। किसी राजा ने सम्भवत: रानी दुर्गावती की मूर्ति बनवाई थी। मूर्ति प्रभावोत्पादक है। यदि स्मारक है तो इस मूर्ति को एक संग्रहालय बनवा कर नरई में रख दिया जाना चाहिये।

(४) मार्कण्डेय मन्दिर के पीछे शीतला मढ़िया है। बहुत प्राचीन-काल के एक २४" × १५" पत्थर में चार आकृतियाँ बनी हैं। हाथी, योद्धा सिंह और सिंह, अशोक काल की आकृतियों जैसी हैं।

(५) पास में मारुति की आदमकद प्राचीन मूर्ति है।

(६) खेर माई में केवल फासिल (Fossils) हैं। खेर माई के पास डिंडौरी के ठड़पथरा सरीखे कुछ बड़े गोल भराव हैं। मेले के समय दुकानें लगती थीं। ऐतिहासिक महत्व कुछ न कहाया।

मनेरी :—निवास और बरेला के बीचों-बीच। पडवार से आठ मील पूर्व मंडला जिले की सीमा में। गौर नदी के और सड़क पास, मनेरी के पास की पहाड़ी को गौराम पहाड़ी कहते हैं। इस पहाड़ी पर प्राचीन इमारतों के खंडहर और अधिक मात्रा में कलापूर्ण मूर्तियाँ, तालाब खुदाते समय या थोड़ी-सी खोज से मिली हैं। आस-पास के लोग कई मूर्तियों को ले गये। कई मूर्तियाँ इकट्ठा करके रख दी गई हैं।

मवई :—बुवाबिछिया से २८ मील पूर्व। छ: मील के व्यास में लगभग १५० तालाब हैं। जिनके नाम दलसागर, रानीसागर, हाथीसागर, जमसागर आदि हैं। मत्स्य पालन, सिंघाड़े, बतख, सिंचाई किसी भी उपयोग में नहीं आते। वन्य पशु बहुत हैं। छोटे प्राणियों पर तथा कृषि पर बहुत उत्पात करते हैं। आवागमन के साधन नहीं हैं। मोटर सर्विस दो बार चलकर बन्द हो चुकी है। बन्द करने के लिये पुलिस और वन-विभाग को उत्तरदायी माना जाता है। नागपुर और अमरकंटक के ठीक रास्ते में पड़ता है। मवई के आस-पास के पानी में कपड़े बहुत अधिक स्वच्छ होते हैं। पानी में कोई विशेषता है। कई स्थानों में पुराने अवशेष हैं। चार मील पूर्व मुडिया पहाड़ की मूर्तियों की पूजा गाँव वाले करते हैं। बुकरा मुंडी के पहाड़ में बन भैंसा पाये जाते हैं। रमतिला, बसनी

और हर्राटोला में पुराने अवशेष हैं। मवई के आस-पास धैगानी गाँजा एक रुपया का एक पायली मिल सकता है।

महाराजपुर :—नर्मदा के दक्षिण तट में, मंडला का हिस्सा। पुराना नाम ब्रह्मपुरी महाराजशाह (१७३२-१७४२) के नाम पर। एक पहाड़ी को होम टेकरी कहते हैं। बूढ़ी माई का देवी मन्दिर है। स्थान ज्वाला जी का है। बूढ़ीमाई वार्ड में एक बौद्ध मूर्ति मिली है जो जिला संग्रहालय में सुरक्षित है। एक गढ़ा के पास है। एक पनागर के पास है। ऐसे दो और महाराजपूर हैं।

महेश्वर :—इन्दौर से साठ मील दक्षिण। नर्मदा के उत्तर तट में, रानी अहिल्याबाई की राजधानी थी। दक्षिण तट वाले भाग को मंडलेश्वर कहते हैं। बहुत से विद्वानों का मत है कि महेश्वर ही पुरानी माहिष्मती है। गोंडवाना में मंडला और महेश्वर में मंडलेश्वर, इन दो शब्दों की समानता के कारण कुछ गड़बड़ी हुई हो, ऐसा भी सम्भव है। देखिये प्राक् ऐतिहासिक काल वाला पाठ।

माड़ौगढ़ :—नामक दो स्थानों में, महीन उच्चारण भेद है। माण्डु उर्फ माण्डवगढ़ और दूसरा मारु गढ़। दोनों का उच्चारण माड़ौगढ़ होता है। पहिला मालवा में हैं। वर्तमान धार से १८ मील दक्षिण। मांडु नर्मदा से दूर है। पर रेवा कुण्ड होने कारण नर्मदा की परिक्रमा में आ जाता है। भारतीय पुरातत्व कानून के परिशिष्ट में, इसी मांडु उर्फ मांडवगढ़ के अवशेषों की लम्बी सूची है। मांडु उर्फ मांडवगढ़ के राजा बाजबहादुर ने गढ़ा मंडला की प्रसिद्ध रानी दुर्गावती से कई बेर हार खाई थी। माण्डव में ही प्रसिद्ध आल्हा की सांग गड़ी हुई है।

दूसरा स्थान भी माड़ौ गढ़ कहलता है जो वास्तव में मारुगढ़ है। जबलपुर और मण्डला के बीचों-बीच, रोड में कालपी से पाँच मील पूर्व बलाई नदी के किनारे। बावन गढ़ों की सूची में गढ़ा का प्रथम स्थान है और इस मारुगढ़ का दूसरा स्थान है। स्लीमैन ने लिखा है कि राजा गोपालशाह (नं० १०) ने मारुगढ़ जीत कर गढ़ा राज्य की प्रगति मण्डला की तरफ आरम्भ की। इस जीत का समय सन् ६३४ दिया गया है। मारुगढ़ में किले की अधबनी दीवारें हैं। संग्रह किये हुए पत्थरों के ढेर हैं। बहुत अधिक पुरानी मूर्तियाँ थीं। चाहे जो चाहे जितनी मूर्तियाँ ले जा चुका है। फिर भी अभी मूर्तियों का एक संग्रह पंडा की मढ़िया

में है। स्कूल में एक मूर्ति घुड़सवार की रखी है। स्थानीय कथाओं के अनुसार, "कुकरा राजा" का स्थान है।

माड़ौताल :—जबलपुर शहर का चुङ्गी नामा, दमोह रोड पर। रानी दुर्गावती के समय में अपने हमले के स्मारक के रूप में, माण्डवगढ़ के बाजबहादुर ने तालाब खुदवा कर अपने स्थान माडौगढ़ (माण्डवगढ़) के नाम से नामकरण किया। बाद में जब बाजबहादुर रानी दुर्गावती द्वारा पराजित हो गया तो रानी ने तालाब के इसी नाम को रहने दिया। अब रानी की विजय का स्मारक हो गया।

मांद :—अंजनिया से लगा गाँव। एक गोंड राजा 'मल्ले तिवारी" ने 'मलसागर' नामक तालाब खुदवाया था। "तिवारी" नाम गोंडों में बहुत प्रचलित है। ब्राह्मणों में तिवारी शब्द जाति वाचक है। गोंडों में तिवारी शब्द व्यक्ति वाचक है।

माधोपुर :—माधोशाह (नं० २) के नाम पर। माधोपुर डिंडौरी से २७ मील पूर्व है। बिंझौली और कुकर्रामठ सरीखी नक्काशी वाले पत्थरों के कई ढेर हैं। गिरे मन्दिरों के अब ढेर हो गये हैं। दूसरा माधोपुर, मण्डला से आठ मील पूर्व में बड़ा गाँव है। आबादी पहिले उच्च सम भूमि में थी अब जल के कष्ट के कारण आबादी नीचे आ गई है। कई पुरानी देव मूर्तियाँ है। घोड़े पर सवार एक मूर्ति बहुत प्राचीन है।

मानगढ़ घाट :—बजाग से पाँच मील पश्चिम। सिख शिकारी नौरंग सिंह की समाधि। १८७० के करीब नरभक्षियों का उत्पात था। सरकार ने आकर्षक इनाम घोषित किये थे। यातायात कठिन था। वन सघन थे। कोई नहीं आया। नौरंग सिंह ने कहा :—

"मरूँगा तो शेर से। जिस दिन मरूँगा उस दिन भी निशाना नहीं चूकेगा।' उसने शेरों को मारा। इनाम न पा सका। अन्तिम घायल शेर ने शिकारी को खतम कर दिया। ऐसा अद्वितीय शिकारी अज्ञात ही रहा आया।

मानोट :—मण्डला से १८ मील पूर्व। नर्मदा के उत्तरी तट में बेल के बहुत वृक्ष हैं। लक्ष्मी प्राप्ति के यज्ञ में लाखों बिल्व फलों की आहुति दी जाती है। किसी राजा या योगी ने लगवाये होंगे। अब सब बेल जंगली हो गये।

मुकास :—मण्डला से २५ मील उत्तर निवास रोड में। विस्तृत गाँव था। एक हिस्सा को नाम मुकास कहते हैं। राजस्व वसूली करने वाले गोंड़ ताल्लुकेदार की मान-मर्यादा राजा के बराबर थी। प्राचीन इमारतों के खण्डहरों में एक स्नानागार स्पष्ट है। किसी अकाल के समय राय बहादुर हीरालाल मुकास में सरकार की तरफ से खैरात बाँट रहे थे। उनके सामने प्राचीन राजवंश की गरीब गोंड महिलायें खैरात लेने आईं। समय का फेर देख कर राय बहादुर की आँखों में आँसू आ गये। अपने डेरे में अकेले में खूब रोते रहे।

मुकुट पुर :—समनापूर से चार मील पश्चिम। प्राचीन संस्कृति का केन्द्र है। दो प्रतापी गोंड बन्धु राजवा और चाँदवा यहीं थे। देखिये बन्दी छोह। इनकी बड़ी रानी सिंगारो देवी सती हुई थीं (देखिये सिंगार सत्ती)। इन बन्धुओं की पराजय के बाद लोधी राजाओं ने मुकुटपुर का तिरस्कार करके सात मील पश्चिम रामगढ़ में राजधानी कायम की। अंग्रेजों ने रामगढ़ का तिरस्कार करके डिंडोरी में तहसील बनाई। मुकुटपुर विस्मृत हो गया। पास में किकरी भूर और सिंघौली हैं। चार मील पूर्व में देवलपुर है तथा तीन मील पश्चिम में देवरी है। यह पूरा क्षेत्र प्राचीन संस्कृति का क्षेत्र है।

मुढ़िया खुर्द :—किसलपुरी से चार मील उत्तर। ५५-५६ में तालाब खोदते समय लाल पत्थर की दस-बीस मूर्तियाँ निकलीं। चाहे जो ले गया। किसी ने कुछ को इकट्ठा कर दिया। लिखने पर अनुविभागीय अधिकारी ने कुछ ध्यान नहीं दिया। चार मील ईशान चौरा में किले के खण्डहर हैं।

मुरता रैयतवारी :—मवई से पाँच मील पूर्व। मुरता रैयतवारी और झामुल फारिस्ट विलेज के बीच की पहाड़ी पर दुर्लभ और असाधारण आयुर्वेदीय औषधियाँ हैं। बन्दी छोह की औषधियों का कुछ इतिहास सुना जाता है। इस स्थान का इतिहास अभी तक बिलकुल अज्ञात है।

मुरतहाई टौरिया :—अमरपूर से तीन मील पूर्व। बरसिंहा के पास पहाड़ी पर सैकड़ों मूर्तियाँ हैं। दूल्हा दुलहिन कहलाते हैं। उच्चारण भेद दो हैं। मुरतहाई टौरिया अर्थात् मूर्तियों की टौरिया। मुरदहाई टौरिया अथात् मुरदों की टौरिया, देखिये सिंघौली।

मोहतरा :—डिंडौरी से २५ मील पूर्व अमरकण्टक रोड पर कोकल्ल

देव प्रथम के पौत्र का नाम युवराज देव था। युवराज देव का युद्ध यशो-वर्म देव से हुआ था जिसका वर्णन खजुराहो के शिलालेख में है। युवराज देव की रानी का नाम मोहता देवी था। इस प्रकार मोहतरा गाँव का सम्बन्ध मोहता देवी से जुड़ता है। मोहतरा के पास पहाड़ में किले के निशान हैं। ७ मील ईशान में दो मन्दिर खड़े हैं, जिनमें यौन आकृतियाँ हैं। गोंडवाना में और कहीं ऐसी आकृतियाँ नहीं सुन पड़ीं !

रजगढ़ो :—महदवानी से तीन मील ईशान। किसी राणा का गढ़ था। परकोटा के अवशेष हैं। बड़े पत्थरों के गड़े खम्भे हैं। सिद्ध स्थान है। स्थानीय विश्वास है कि रजगढ़ी में बहुत धन है। चिरचिरा (अपा-मार्ग) का एक दरख्त पांच छः फुट मोटा है। चिरचिरा बरसाती क्षुप होता है। तीन फर्लाङ्ग पश्चिम "मोरचा" में भी अवशेष हैं।

रतनपुर :—बिलासपुर से १३ मील उत्तर कलचुरि राजाओं की प्रथम राजधानी माहिष्मती थी। दूसरी त्रिपुरी हुई। तीसरी रतनपुर। कोकल्ल देव प्रथम के पुत्र ने, दक्षिण कोशल (छत्तीसगढ़) के तुम्पाण में राजधानी बनाई। तुम्पाण की राजधानी को रतन देव द्वितीय (११३६-११४३) ने हटाकर रतनपुर में स्थापित किया। रतनपुर में लांजी से भी कलचुरि पहुँचे। रतनपुर के १११४ के शिलालेख में प्रथम जाजल्ल देव का नाम है। यही समय त्रिपुरी शाखा के कर्ण देव (१०४२-११२२) का था। लक्ष्मण राज के समय में कारी तलाई के विष्णु मन्दिर का निर्माण हुआ। रतनपुर वंश की अन्तिम प्रशस्ति, बराहेन्दु उर्फ बराह सहाय (१५१९-१५३६) के समय की कोसा गायन में मिली थी। नागपूर अजा-यब घर में सुरक्षित है। रतनपूर से अमरकंटक केवल चालीस मील है। त्रिपुरी से १२६ मील। अमरकंटक के मन्दिर बहुत दूर वाली त्रिपुरी की शाखा ने बनवाये, न कि पास वाली रतनपूर की शाखा ने। तुलनात्मक दृष्टि से त्रिपुरी वाली शाखा का प्रताप अधिक था। राजा मयूरध्वज की राजधानी थी, ऐसा प्रसिद्ध है। पर गलत है। मोरध्वज नामक वैरागी का वैभव था, जिसके सात सौ शिष्य थे। वैरागी मोरध्वज का वर्णन बहुत से शिलालेखों में है।

रसोई :—कुकर्रामठ से तीन मील वायव्य। बहुत पुरानी बावली है। मकरार नदी के किनारे पुराने भवनों के नक्काशीदार पत्थर सीतल बहरा फारिस्ट विलेज तक फैले हुए हैं !

रहली :—सागर जिले की तहसील । देखिये बावन गढ़ों की सूची ।

रानगढ़ :—सागर जिले में देखिये सत्तावन परगनों की सूची ।

रावन कुण्ड :—शहपुरा से छः मील दक्षिण पश्चिम । पहाड़ तली में । लंकाधिपति रावण के नाम से । शहपुरा और सक्के के बीचोंबीच, चौबीसा, गाँव के पटैल का नाम रावन भोई है ।

रामगढ़ :—डिंडौरी से १२ मील दक्षिण पश्चिम । खरमेर नदी के किनारे । नदी पार अमरपूर है । बावन गढ़ों की सूची में अमरगढ़ नाम है । सत्तावन परगनों की सूची में रानगढ़ लिखा है । रामगढ़, लोधी राजा का स्थान था । गोंडों का मुकुटपुर था । अंग्रेजों ने डिंडौरी में तहसील बनाई । डिंडौरी की तहसील रामगढ़ कहलाती है । मण्डला की सरकारी उच्च कन्याशाला का नाम रानी रामगढ़ हाई स्कूल है । रानी के नाम का पता लगा है । अवन्ती बाई नाम था । जन्म स्थान मौजा मनकहड़ी, जबलपुर और नैनपुर के बीच में । पता चला है कि प्रसिद्ध इतिहास लेखक श्री वृन्दावन लाल वर्मा उनका जीवन चरित लिख रहे हैं ।

राम्हेपुर :—डिंडौरी से ११ मील दक्षिण, पहाड़ों के बीच में । सत्तावन परगनों की सूची में रानपुर लिखा है । आज भी राजस्व विभाग में ताल्लुका राम्हेपुर लिखा जाता है ।

रायगढ़ :—का नाम बावन गढ़ों की तथा सत्तावन परगनों की दोनों सूचियों में है । रायगढ़ नाम का गाँव भी है । रायगढ़ एक विस्तृत क्षेत्र को भी कहते हैं । रायगढ़ गाँव, बालाघाट जिला की बिलकुल पूर्वी सीमा में है । अर्थात मण्डला जिला के मनोरी से आठ मील दक्षिण और दुर्ग जिला के चिलफी गाँव से चार मील वायव्य । रायगढ़ नामक प्रसिद्ध रेलवे स्टेशन से कोई सम्बन्ध नहीं । रायगढ़ क्षेत्र विस्तृत चरोखर है । विस्तार, सुवाविछिया से शुरू होकर, मवई मोती नाला को शामिल करते हुए, बैहर तक फैला है । रायगढ़ क्षेत्र की राजधानी या तो रायगढ़ गाँव थी, या भीम डोंगरी । भीम डोंगरी दो हैं । परिशिष्ट में देखिये ।

रायसेन :—भोपाल से ३० मील पूर्व जिला है । देखिये बावन गढ़ों की सूची । रानी दुर्गावती की पराजय के बाद चंद्रशाह (नं० ५१) ने अकबर को नजराना में दे दिया ।

राहतगढ़ :--सागर जिले में। देखिये बावन गढ़ों की सूची। रानी दुर्गावती की पराजय के बाद चंदशाह (नं० ५१) ने अकबर को नजराने में दे दिया।

रूसा :—डिंडौरी से ३५ मील पूर्व अमरकंटक रोड में। बहुत पुराना तालाब है और बहुत सी प्राचीन मूर्तियाँ हैं। यहाँ से निंगोगढ़ जाना सुविधाजनक होता है। सीधी लाइन में लगे हुए वेलवृक्षों से सिद्ध होता है कि यज्ञ के लिए वेल-वृक्ष लगाये गये थे।

रैपुरा :—सहपुरा से आठ मील उत्तर। कटनी बिलासपुर लाइन के उमरिया स्टेशन से २४ मील दक्षिण है। (१) रैपुरा से पूर्व एक नाले में पत्थर का कोयला मिलता है। जिसमें जल सकने वाला कोयले का अंश पाँच-सात प्रतिशत से अधिक नहीं है। राख का अंश अधिक है। व्यापार की दृष्टि से बेकाम है। यह कथित कोयला भूगर्भशास्त्र के अध्ययन की दृष्टि से अति उपयोगी है। इसके साथ में समुद्र की सीप जली हुई अवस्था में है। सीप जलकर चूना हो चुकी है। सृष्टि के आदि काल में जब समुद्र से बड़वानल या ज्वालामुखी उठी तब समुद्र की सीपें जल कर ऊपर आकर पृथ्वी में रह गई। यह सीप वाला कोयला प्राचीनतम ज्वालामुखी का साक्षी है। कुछ नमूने जिला पुरातत्व संग्रहालय में हैं।

(२) तीन मील पूर्व, घुसिया गाँव के हार में पत्थर के दक्षिणावर्ति शङ्ख मिलते हैं। चूने का पत्थर भी मिलता है। (३) रैपुरा से एक मील उत्तर में ऊँचा और गोलाकार "मलधा पहाड़" सिद्ध स्थान माना जाता है। लोग चमीटा चढ़ाते हैं। सिद्धों को चमीटा के सिवाय और कुछ नहीं चाहिये। मलधा पहाड़ में प्राचीन किले के खण्डहर भी हैं। (४) रैपुरा से पाँच मील पर, देवझिरी गाँव में 'बाजन सिल्ली" नामक सिला है। पास में रखी लुढ़िया से सिला को बजाने पर संगीत के सातों स्वर निकलते हैं। संगीत शास्त्र का ऐसा ही एक स्तम्भ, मदुरा के मीनाक्षी मन्दिर में है। हमेशा से असभ्य कहे जाने वाले गोंडवाना में ऊँचे दर्जे के संगीत शास्त्र का अज्ञात अवशेष है (५) रैपुरा के पास एक टेकरी में पुराने मन्दिर के नक्काशी-दार पत्थर, चौखट, जलहरी आदि मिलते हैं। इनको किसी गणेशप्रसाद ब्राह्मण ने रैपुरा मँगवा लिया है। मन्दिर बनवाना चाहते हैं। (६) गढ़ी नामक स्थान बहुत ऊँचा है। चारों तरफ के दृश्य दिखते हैं। पुराने किले के खंडहर हैं (७) रैपुरा से ६ मील उत्तर सलइया में कटोरी की शकल का

एक छोटा सा कुण्ड है जिसे "कटोरीपाट" कहते हैं। देव स्थान है। कार्यारम्भ में पूजा में यदि खून से कटोरी भर गई, तो सफलता निश्चित, न भरी तो असफलता का अनुमान होता है। (८) रैपुरा में पीपल के एक पुराने झाड़ के नीचे पत्थर के छोटे-छोटे घोड़ों की मूर्तियाँ हैं। उन्हें "घुड़ला पीपल" कहते हैं। (९) एक स्थान को "राजाखोह" कहते हैं, जहाँ कोई राजा हार कर छिपा था। (१०) रैपुरा से डेढ़ मील ईशान में "खितौला" है। कुण्ड में बुलबुले उठने से बुजबुजा या पाताल धारा कहते हैं। नीचे दूध धारा के जल में चिकनाहट है जैसे साबुन घुला हो। चिकनाहट से लोग मिट्टी के तेल का अनुमान करते हैं। (११) "डोम दादर" में "घोड़ा टाकिन" और "नाथू घुघरा" दर्शनीय हैं। पहाड़ी में एक बहुत प्राचीन नक्काशीदार पत्थर को "ममरोहन-पाट" कहते हैं। ऊँचाई करीब ३ फुट है। अति भयंकर स्थान को 'बनहा खोल' कहते हैं। शेर रहता है।

लखनपुर :—बीजाडांडी थाना से १४ मील वायव्य नरई से चार मील दक्षिण लखनपुर मंडला जिला में है, नरई जबलपुर जिला में आस-पास प्राचीन मूर्तियाँ हैं जैसे छिवलिया में नृत्य गणेश। कम्बलों के लिये प्रसिद्ध है। गाड़रें पाली जाती हैं। कुछ कपास भी होता है। लखनपुर में बहना जाति वाले सफल व्यापारी और मधुर भाषी हैं। रानी दुर्गावती के युद्ध के कारणों में मुठिया पींजन की लोक कथा है। बहना जाति साम्प्रदायिक एकता पर विश्वास करती है। बहना इसलाम धर्म मानते हैं। वे कट्टरता के विरोधी हैं। नामों के नमूने इस प्रकार हैं—शेख गनपत, शेख दुर्गा, शेख राम प्रसाद। विश्वास न हो तो सरकारी कागज देखकर हो जायगा।

लछमन मंडवा :—डिंडौरी से पाँच मील पूर्व नर्मदा का छोटा सा जल प्रपात। नक्काशीदार पत्थरों के ढेर से प्राचीन मन्दिर का अनुमान होता है। रतनपुर शाखा में एक राजा का नाम लक्ष्मण राज था लुट गाँव पास में है।

लान्जी :—गोंदिया जंकशन से २५ मील पूर्व बालाघाट जिला में गोंडों का पुराना केन्द्र पुराना नाम लज्जावती और लज्जिका बावन गढ़ों की सूची में नाम नहीं है। सत्तावन परगनों की सूची में नाम है। गढ़ा के गोंड राज्य के संस्थापक यादौराय लांजी के गोंड राजा की नौकरी

में गढ़ा में तैनात थे। लांजी में गोंडों से पहिले हैहयों का राज्य था। मण्डला के गोंड राजाओं ने लांजी के हैहयों को हरा कर रतनपुर भगा दिया। लांजी का राज्य मंडला के गोंड राजाओं से मराठों ने लिया। लांजी के गोंड राज घराने में एक "रानी तिलका" थीं, जिन्होंने आसफ खाँ से लोहा लिया था और कटार मारकर जौहर किया था। रानी तिलका की वीरता के लोक गीत गाये जाते हैं। लांजी से आठ मील पश्चिम में कुमारी गाँव है। देखिये "कुमारी" परिशिष्ट में।

लापागढ़ :—बिलासपुर जिले में रतनपुर के पास लाफागढ़ है देखिये बावन गढ़ों की सूची।

लुट गांव :—डिंडौरी से चार मील पूर्व पुराने मन्दिर की भरी हुई बुनियाद सकवाह सरीखी दिखती है। पास में लछमन मंडवा है।

सकवाह :—घुटास से आठ मील ईशान पुराने शहर के अवशेष हैं। बड़े-बड़े पत्थरों के बीच में लोहा का जोड़ है। लोहा स्थानीय रहा हो या आयात किया जाता रहा हो। तीन मील उत्तर में डाढ़ी और भानपुर गाँव हैं। डाढ़ी से पश्चिम में तालाब के किनारे लोहे में गुथे हुए नींव के पत्थर हैं। पत्थर चार-पाँच फुट लम्बे भी हैं। जोड़ने वाला लोहा दोनों बाजू में लगा है। हर जोड़ में एक पाव लोहा होगा। बुनियाद ही भर कर रह गई, इमारत नहीं बन पाई। डाढ़ी में पत्थर का एक कोल्हू है। सकवाह में ६-७ हैं। सपाट पत्थर के हैं नक्काशी नहीं है कोल्हू में या तो गन्ना पेरा जाता रहा हो या तेल। सकवाह के आस-पास आज कल तिलहन होता है, गन्ना नहीं होता। पहिले गन्ना होता रहा हो, या नहीं।

शंख डोंगर :—सिभौरा से आठ मील पूर्व भेढ़ा से एक मील पश्चिम में एक पहाड़ी है उसे शंख डोंगर कहते हैं। ऊँचाई २६२६ फीट, नक्शे में शंख(Sank)लिखा है इस पहाड़ी में हर साइज के दक्षिणावर्त्ति शंख मिलते हैं। छोटे ही बढ़ कर बड़े हो जाते हैं। लोगों का बिश्वास है कि शंख जीवधारी हैं और अन्य जीवधारियों की भाँति शंख भी समूह के समूह में चरने जाते हैं और चर कर वापिस अपने ठिकाने में लौटते हैं। लोक विश्वास चाहे सत्य हो चाहे असत्य, पर शंख का स्थानीय नाम

और शंख का पाया जाना ये दोनों बातें सत्य हैं। देखिये दक्षिणावर्ति शंख।

संग्रामपुर :—संग्रामपुर का नाम किसी भी सूची में नहीं है। सागर, दमोह, जबलपुर और मण्डला इन चार जिलों के संग्रामपुरों की संख्या कई सौ हो जायगी। सब से अधिक प्रसिद्ध संग्रामपुर दमोह और जबलपुर के बीचोंबीच है। एक विंझौली से एक मील उत्तर है।

सत्तावन परगना :—रानी दुर्गावती की पराजय के बाद महाराजा संग्राम-साहि के बावन गढ़ों के विस्तृत साम्राज्य के तीन भाग हो गये। एक भाग दस गढ़ों का अकबर को नजराने में दिया गया। दूसरा भाग सत्तावन परगनों का चंद्रशाह (नं० ५१) के कब्जे में रहा और तीसरा भाग जो इन दोनों में से किसी में शामिल नहीं था वह स्वतंत्र हो गया। इन सत्तावन परगनों में से सब के सब गढ़ा मण्डला राजवंश के पास नहीं रह आये। धीरे धीरे स्वतंत्र होते गये।

सन्तागढ़ :—देखिये बावन गढ़ों की सूची। कांकेर से ३२ मील दक्षिण पश्चिम और पानावरस से ४० मील आग्नेय में "अन्तागढ़" है। उसको सन्तागढ़ मानना या न मानना विद्वानों का काम है।

सहजपुरी :—पाठा से ६ मील पश्चिम नर्मदा तट में। प्रस्तरीकरण सिद्ध करने को साक्ष्य मिलता है। एक नाले में ऐसे अवशेष मिलते हैं कि थोड़ा हिस्सा पत्थर हो गया है और थोड़ा हिस्सा लकड़ी या हड्डी है। मेरे विद्यार्थी जीवन में एक साधु, मेरे पास संस्कृत का हस्तलिखित छोटा ग्रन्थ "शैलोदक" नामक लाया था। उसने मुझसे हिन्दी अनुवाद कराया था। "शैलोदक" में ऐसे स्थानों के वर्णन थे जहाँ जल में प्रस्तरीकरण की शक्ति है। उसमें ३-४ स्थान दक्षिण के थे और सहजपुरी का नाम भी था। सब का स्थान निर्णय दिया गया था। साधु कीमियागिरि में था।

शहपुरा :—जबलपुर डिंडौरी रोड पर। डिंडौरी से ३५ मील। बस्ती से दो मील पूर्व के पुराने मन्दिरों में पारसनाथ की टूटी मूर्तियाँ हैं। बरसात में चमकीले दाने मिलते हैं।

सहस्रधारा :—मण्डला से तीन मील वायव्य में बहुत सुन्दर जलप्रपात। किम्वदन्ती है सहस्रबाहु की सहस्रभुजाओं के बीच से नर्मदा ने अपना प्रवाह बनाया। पुरातत्व के कोई निशान नहीं हैं। एक मन्दिर

ऊंची शिला पर बना है। शुरू वाले मन्दिर को बरगी के एक निःसन्तान गृहस्थ ने बनवाया था। उसको जबलपुर गोन्दिया वाहन का मावजा मिला था। उसी धन से मन्दिर बनवाया एक। परिक्रमा बासी से संकल्प द्वारा नर्मदा परिक्रमा का पुण्य खरीदा, और अपनी तथा अपनी पत्नी की मूर्ति स्थापित की। उन दोनों की मूर्ति आजकल सहस्रधारा से लाकर किले के राजराजेश्वरी मन्दिर में रख दी गई है।

सारंगपुर :—बजाग से दो मील आग्नेय। बीजाखान नदी के किनारे। सत्तावन परगनों की सूची में, रामगढ़ के साथ, सारंगपुर का नाम भी लिखा है। बहुत पुराने मन्दिरों के गिर जाने से, नक्काशीदार पत्थरों के ढेर हैं। कुछ पुरानी मूर्तियाँ ऊपर दिखती हैं।

शाहगढ़ :—देखिये बावन गढ़ों की सूची। सागर छतरपुर रोड पर।

शाहनपुर :—देखिये बावन गढ़ों की सूची। पन्ना जिला में।

शाहपूर :—डिंडौरी से आठ मील, जबलपुर रोड पर। शाहपूर से दो मील पूर्व में प्रसिद्ध देवहार गढ़ के अवशेष हैं। प्रसिद्ध है कि शाहपूर की मसजिद के नीचे बहुत धन गड़ा है। एक सफेद साँप उस धन की रक्षा करता है। कभी कभी दिख भी जाता है।

सिंगार सत्ती :—बजाग से छः मील उत्तर। रानी सिंगारो देवी, सती हुई थी। सिंगारो + सत्ती = सिंगार सत्ती। सिंगारो देवी के पति चांदबा ने मुकुटपुर में लोधियों से युद्ध करते समय वीरगति प्राप्त की थी। रानी सिंगारो देवी अपने पति के शरीर को लेकर अपने मायके कोरबा (जिला बिलासपूर) जा रही थीं। मुकुटपुर से पहाड़ी क्षेत्र के बीस मील चल चुकने पर सिंगार सत्ती तक पहुँचने पर मृत पति के शरीर के खराब होने के लक्षण दिखे। अतएव उनने शरीर को और आगे ले जाना ठीक नहीं समझा। वे वहीं सती हो गईं। सिंगारो देवी ने अपनी लहुरी को गर्भवती होने के कारण सत्ती होने की आज्ञा नहीं दी। छोटी रानी के गर्भ से जो पुत्र उत्पन्न हुआ उसने इमलई (जिला जबलपुर) का राजवंश स्थापित किया।

सिंगौर गढ़ :—गढ़ा से २८ मील उत्तर दमोह जिले में। देखिये बावन गढ़ों की सूची। सिंगौर शब्द का एक अर्थ और होता है, कुरमी जाति का एक भेद है जिस भेद को सिंगौर या सिंगौरे कहते हैं। महा-

राज दलपतिशाह अधिकतर सिंगौर गढ़ में रहते थे। उनके पिता का स्थापित साम्राज्य इतना विशाल था कि वे चाहे जहाँ रह सकते थे। अर्थात् गढ़ा अब उपराजधानी रह गई थी। आसफ खाँ का पहिला युद्ध सिंगौर गढ़ में हुआ। दूसरा युद्ध गढ़ा में हुआ होगा। तीसरा युद्ध नर्रई नाले में हुआ। चौथा युद्ध चौरागढ़ में हुआ। चौरागढ़ में वीर नारायण को वीरगति मिली और सामूहिक जौहर हुआ।

रायबहादुर हीरालाल ने एपिडाफिया इंडिका, पोथी नौं, पेज पचास के लेख में लिखा है कि, गोडों के महाराज संग्राम साहि द्वारा कब्जे में आने के पहिले सिंगौढ़ के स्वामी चन्देल थे। सिंगौर गढ़ से पच्चीस मील उत्तर मौजा बंभनी के शिलालेख से ज्ञात होता है कि सन् १३०८ में सिंगौर गढ़ का व्याघ्र देव राजा जिला कुम्हारी का शासक था और वह कलिंजगर राजा हमीरवर्म देव का मातहत था।

सिधौली :—किकरझिर से छः मील पश्चिम। हीराखानि की वीर गाथा में एक स्थान 'रैया सिधौला' का नाम आता है। शायद यह सिधौली ही वह स्थान होवे। देखिये मुरतहाई टौरिया।

सिवनी नदी :—मण्डला जिला के आग्नेय में बैगाचक के पास, तिरसूला गाँव के कुण्ड से निकलकर गोरखपुर के पास नर्मदा जी में मिलती है। सिवनी संगम का मेला शिवरात्रि में भरता है। संगम से से दो मील उत्तर केवलारी गाँव के भग्न मन्दिर में कुछ मूर्तियों को वाममार्ग की मूर्ति कहा जाता है। सिवनी शब्द श्रीवन शब्द से बना है। श्री का अर्थ बेलफल भी होता है। सिवनी नदी के किनारे बेल के बहुत झाड़ हैं। बेल के वृक्ष बेलफल के लिये लगवाये जाते हैं। बेल के फल लक्ष्मी प्राप्ति के यज्ञ में बहुत लगते हैं। अतः पहिले बेल का वन लगवाना पड़ता है। ताकि यज्ञ के समय बेल फलों की कमी न पड़े। राजा या राजसी ठाठ-बाट का योगी ही ऐसे बड़े यज्ञ की योजना बनाते थे। तिरसूला गाँव का नाम ही शैवमत का द्योतक है। तिरसूला के कुण्ड का सम्बन्ध अमरकंटक के कुन्ड से है। दोनों कुण्डों का जल एक साथ गंदला, साफ, कम, अधिक होता है। दोनों में तीस-पैंतीस मील की दूरी है। दूरी से कोई फरक नहीं पड़ता। देखिये परिशिष्ट में अमरकण्टक। सिवनी संगम को गोमती संगम भी कहते हैं। गोमती संगम या गोमती मठ का स्थान द्वारिका के शारदा पीठ वाले जगद्गुरु

की सम्पत्ति मानी जाती है। क्योंकि गोमती संगम गोमती मठ या वर्तमान सिवनी संगम में कुछ दिन आदि शंकराचार्य रहे थे। इससे इस स्थान का स्वामित्व उनकी गद्दी में है। प्रसिद्ध सिवनी शहर का उद्भव भी श्रीवन शब्द से है। सिवनी शहर के आसपास लता वाला बेल भी होता है; और सिवनी जिला के 'अरी' नामक स्थान में चंदन के वृक्ष हैं।

सिंगपुर :—बजाग से पाँच मील उत्तर। शुभई और चक्रारि नदियों के संगम पर बहुत सुन्दर नक्काशी वाले पत्थरों के कई ढेर हैं। किसी में अति समृद्ध शहर रहा होगा। अब ढेर पड़े हैं। गिर चुके हैं।

सींगनगढ .—बजाग से ६ मील पूर्व में सींगनपुर गाँव के पास की उच्च सम भूमि को सींगनगढ़ कहते हैं। पुराने जमाने का तालाब है। पुरानी मूर्तियाँ हैं। किले के अवशेष हैं।

सीतार पटन :—मण्डला से आठ मील ईशान में सिद्ध स्थान है। तपोभूमि है। किम्वदन्ती है कि यहीं पर सीता जी ने लव और कुश को जन्म दिया था। एक वृक्ष है जिसका नाम लोग नहीं जानते, अतएव उसे 'अनजान विरवा" कहते हैं।

सुगमगढ़ :—शाहपूर से १५ मील ईशान। घोरवन में नाम असाधारण है। सुखनदास या सुखमदास के नाम से न तो किसी इतिहास में सुखनगढ़ का नाम है, न किसी को पता ही था। सुकमगढ़ के स्वामी पट्टा गोत्र वाले गोंड होते हैं। वहाँ पर पुराने किले के निशान हैं, पुराने कुएँ-बावली हैं, मन्दिरों के भग्नावशेष हैं। काले पत्थर की एक आदमकद मूर्ति पद्मासन में अभयदा मुद्रा में है। न जाने किस काल की है। सुखनदास का वर्णन दादीराय (नं० ४५) के साथ में है। गोंडी बोली में सुकुम शब्द का अर्थ तारा (Star) होता है। रामनगर के शिला लेख में सुकुमशाह या सुकुमदास या सुखनदास नहीं है। शिलालेख से सत्तर वर्ष पहिले के अबुलफजल के लेख से सुखमदास नाम का पता मिला है। देखिये रामनगर के शिलालेख में फुटनोट।

सूर्यकुण्ड :—मण्डला से दो मील पूर्व। मारुति की आदमकद प्रसिद्ध मूर्ति है। कुण्ड न मालूम कहाँ था या नहीं था, पर नहीं। सिद्ध स्थान है। मुकुट में कलचुरि काल की नक्काशी है। कमर में पेशकब्ज है। ऐसा ही पेशकब्ज पुरवा मारुति में और शिवटेकरी (चिंभौली) की

वराह मूर्ति में है। कौरगाँव वाले दावा करते हैं कि यह मूर्ति कौरगाँव से ले जाकर सूर्यकुण्ड में स्थापित की गई। लोग दफीना पास में मानते हैं।

शोभापुर :—गाडासरई से पाँच मील ईशान नर्मदा तट में निंगोगढ़ और निंगुवानी गढ़ के बीचोबीच है। नर्मदा प्रवाह के बीच में प्राकृतिक शिवलिंग है। धारा के प्रवाह में रहते हुए भी न विचलित हुआ न घुला-घिसा। बहुत कड़ी जाति का पत्थर है।

हटा :—प्रसिद्ध तहसील। देखिये बावन गढ़ों की सूची।

हर्राभाट :—अंजनियाँ से तीन मील उत्तर। अबुलफजल ने देव गाँव के साथ सत्तावन परगनों की सूची में हरभट शब्द लिखा है। मूल उर्दू लिपि में है। मैंने अंग्रेजी अनुवाद पढ़ा। लिख रहा हूँ, देव नागरी लिपि में। लिपित्रयी के स्थानान्तरों में पाठान्तर क्षम्य है। खेर-माई में पुरानी टूटी मूर्तियाँ हैं।

हरसिंगरी :—बजाग से आठ मील पश्चिम। हरिसिंग (१६८८-१६९५) के नाम पर।

हाट स्प्रिंग :—मण्डला से १२॥ मील उत्तर जबलपुर रोड पर। प्राकृतिक गरम पानी का झरना है। गन्धक की गन्ध है किसी दूसरे देश में स्वास्थ्य लाभ करने वालों की भीड़ लगी रहती। होटल बन जाते हैं। मोटरें खड़ी रहती हैं। जैसा वाराणसी में गैबी के जल पीने वालों का मेला रहता है।

हिरदेनपुर :—मंडला से चार मील दक्षिण प्रसिद्ध गाँव है। महाराज हिरदेशाह (१६३४—१६७८) के नाम पर गाँव में प्राचीनता के अवशेष हैं। हिरदेनगर से लगा देवगवाँ है। महाराजा हिरदेशाह ने कृषि की बहुत तरक्की की बाहर से लाकर कुरमी और पन्सारी जाति को बसाया। अत्युक्ति है, इनके राज्य में ढाई दिनों तक सोने की वर्षा होती रही। उन्नतिशील राजा के पूरे शासन काल में सोना बरसता है। बाद में भी बरसता रहता है। इनके शासन काल में रामनगर का शिलालेख दिनांक ५।६।१६६७ को टंकित किया गया। हिरदेनगर में बौद्ध काल के, जैन काल के और ब्राह्मण काल के बहुत अवशेष हैं।

(१) खेर माई में राशिलगी है। एक आदमकद सिर सारनाथ सरीखा नक्काशीदार गोल तेज से घिरा है।

(२) मुड़हा मुहल्ला में आस्ती बाबा के स्थान में एक और राशि है।

(३) शिव बाटिका की दीवारों में जैन तीर्थङ्करों की तथा शैव-मत की मूर्तियाँ हैं। अन्दर काले पत्थर की देवी मूर्ति अति प्राचीन है। सूर्य मूर्ति कला रहित है। बहुत मूर्तियों को खण्डित समझ कर मटियारी नदी में डुबा दिया गया।

(४) नदी तट के मन्दिरों में बहुत सी मूर्तियों के सुन्दर सिर हैं।

(५) एक मैदानी स्थान को भोंहरा कहते हैं वहाँ प्राचीन बुनियादें हैं। भूगर्भ में भिक्खुओं के बिहार थे प्राचीन काल के मिट्टी के वर्तनों के टुकड़े मिलते हैं। एक वड़ा सा टुकड़ा जिला संग्रहालय में है।

(६) यहाँ की तीन मूर्तियाँ (जैन और बौद्ध) जिला संग्रहालय में हैं।

(७) चमकीले दाने बहुत मिलते हैं।

(८) श्री घुन्ना लाल पन्सारी अवकाश प्राप्त लिपिक को गाँव वालों ने "मठुलिया वाले" कहना शुरूकर दिया है। उनके घर की सीमा में प्राचीन काल का एक मठ है।

(९) पास के गाँव नारा और वकौरा में भी प्राचीन मूर्तियाँ मिलती हैं।

एक और हिरदैनगर गोसलपुर से दो मील है। तथा एक हिरदैपुर गढ़ा के पास है।

हीरापुर :—नैनपुर से तीन मील उत्तर कलवारों की बस्ती अधिक है। हीरा खानि क्षत्रिय की वीरगाथा में "हीरागढ़" शब्द आता है। कलवार अपने को कलचुरि मानते हैं। हीरापुर पहिले हीरा गढ़ रहा होगा या न रहा हो।

—×—

विशेष बातें

छपने को भेज चुकने के बाद, कुछ और बातें मालूम हुईं तथा विचार में आईं। अतः उनको यहाँ लिखा जा रहा है। पाठकों को पुस्तक के साथ साथ प्राप्त हो जावेंगी। ऊपर शीर्षक में सम्बन्धित पेज नम्बर है।

(३२)

मण्डला के किले की दीवालों में किसी पुराने मन्दिर के पत्थरों का उपयोग किया गया है। जब ये दीवालें बनी थीं तब पुराना मन्दिर गिर चुका रहा होगा। पुरानी मूर्तियों से भी पुराने मन्दिर का अस्तित्व सिद्ध होता है। कई मूर्तियाँ दीवालों में जड़ी हैं।

(२६)

रघुवंश काव्य में पाँचवें सर्ग में जो राजकुमार अज का वन्य गज से सम्पर्क का वर्णन है, उसका स्थान मण्डला और टाटीघाट के बीच का नहीं जँचता। वह स्थान वर्तमान गुवारी घाट रहा होगा। जहाँ नर्मदा और गौर का संगम है जहाँ से नर्मदा पश्चिम को तरफ मुड़ती हैं। 'कालिदास ने जल कणों से आर्द्र वायुमण्डल कह कर भेड़ा घाट का वर्णन किया है और रिक्षवान् पर्वत कह कर रिछाई गाँव का वर्णन किया है। रिछाई गाँव बरेला के पास है। वर्तमान नागा पर्वत को पहिले रिक्षवान् कहते रहे होंगे। इस पहाड़ का विस्तार नर्मदा तक है।

(३२)

मैथिल कवि रूपनाथ झा, ने गणेशनृपवर्णनम् लिखा है। उनका काव्य ग्रन्थ रामविजय काव्य सन् १६३२ में काशी के सरस्वती भवन द्वारा प्रकाशित हो चुका है। टैक्स्ट नंबर ३६। भूमिका लेखक नारायण शास्त्री खिस्ते। आचार्य जी० व्ही० भावे को १६४० में पता नहीं रहा होगा।

(५०) (२५७)

भवरासों—दमोह तहसील के हिरदैपुर के पास एक गाँव भवरासा है। न जाने यह ही अकबर को दिया गया था। या कोई और गढ़ था जो भोपाल के पास रहा होगा।

(७८)

रानी दुर्गावती के नर्रई युद्ध का एक और लोक गीत आचार्य प्रभुदयाल पाठक एम० ए०, एम० एड०, को उनके किसी विद्यार्थी द्वारा मिला है। लोक गीत सैला है। सैला नृत्य के समय सैला गीत गाये जाते हैं। सैला नृत्य युद्ध प्रदर्शन का नृत्य है। देखिये पेज १७४। सैला नृत्य में केवल पुरुष नाचते हैं। गीत में वीर रस के साथ-साथ भगवती दुर्गा की भक्ति भी है। तलवार भाला और घोड़ा का वर्णन है। हाथी तीर कमान बन्दूक और तोप का वर्णन नहीं है और न वीर नारायण का वर्णन है। यह गीत भी भाई वृन्दावन लाल वर्मा झाँसी के पास भेज दिया गया था।

प्रस्तुत लोक गीत में पहिले सरगम है। फिर टेक है और सात पद हैं। प्रत्येक पद में चार लाइने हैं। पहिले और दूसरे पद में रानी के रूप और सेना का वर्णन है। नथुनी और टिकुली के वर्णन को त्रुटि नहीं मानना है। देहाती वर्णन है। देवी की आराधना में वैधव्य का प्रश्न नहीं उठता। तीसरे पद में "आंख से आग और तन से रक्त की धार" शब्दों में ग्रामीण काव्य की ऊँची अभिव्यक्ति है। चौथे और पांचवें पद के श्री० अनवरसिंह के बयान की पुष्टि होती हैं कि रानी ने युद्ध जीता था और आसफ खाँ को तीन बार हारना पड़ा था। बाद में रानी लाचार हो गई। छठें पद में रानी ने भारतीय नारी के आदर्श का वर्णन बहुत थोड़े शब्दों में किया है। मेरा नारी का शरीर है। बचाऊँ गी। इतना ही सत्य है। अर्थात् और सब मिथ्या है। ऐसा कहते-कहते रानी ने गति निर्वाण प्राप्त किया। ऐसे ही भाव रामनगर शिलालेख के श्लोक नम्बर २६ में हैं कि रानी ने सूर्य मण्डला को भेदा। सातवें पद में उद्बोधन भक्ति और त्याग का वीर रस पूर्ण उपदेश है।

लोक गीत की सुन्दरता को और ग्रामीण उच्चारण को कायम रखने के मैंने भरसक प्रयत्न किये हैं। डिंडौरी तहसील के कुछ हिस्सा में छत्तीस गढ़ी का स्पष्ट

प्रभाव है। गीत में एक स्थानीय शब्द रैम है। तीसरे पद में। रैम का अर्थ होता है, एक के पीछे एक, जैसे कि पहाड़ी क्षेत्रों में चलना पड़ता है। जब जाने वालों की लाइन सी लग जाती है तब ही रैम शब्द प्रयुक्त होता है। लोक गीत का मूल पाठ इस प्रकार है।

सरगम ।। तरी नाना मोर नाना रे नाना ।।

टेक—रानी महारानी जो आय। माता दुर्गा जो आय ।।
रन माँ जूझै धरे तलवार। रानी दुर्गा कहाय ।।

पद (१) राजा दलपत के रानी हो, रनचण्डी कहाय।
डगर डगर माँ डोलौं हो, गढ़ मण्डला बचाय।
हाथन माँ सोहै तरवार, भाला चमकत जाय।
सरपट सरपट घोड़े भागैं, दुर्गा भईं असवार।।१।।

पद (२) गरे माँ पहिरे मूंगा मोतिया, कम्मर पोतिया सजाय।
पांवन माँ सोहै पैजनियाँ, लम्बे केस बनाय।
नाकन माँ पहिरे नथुनियाँ, माथे टिकुली सजाय।
दमक दमक रानी गरजै, फौजी देय ललकार ।।२।।

पद (३) गोंड़ी फौजी रैम लगे, छत्री चमकत जांय।
हुकुम रानी के पाय के, सबै बाना खनखनाय।
अँखियन से बरसै अगिया, तन से रकत के धार।
बैरी दुश्मन के खातिर, फौजी सबै तैयार ।।३।।

पद (४) काली को रूप बनाय के, दुर्गा झपटत जाय।
रकत लोहू के नदिया हो, तुरतै दईस है रे बहाय।
जीत के डंका बजाय के, माता मन मुसकाय।
अड़े रहो सब मग में, हो, या सबै ला सिखाय।।४।।

पद (५) नाम आसफ दुसमन के, गईस घरी-घरी हार।
सजधज के आवै तिसरइया, फौजी धरे हथियार।

ताक निसाना महारानी के हो, नहीं कोई उपचार।
जखमी चोट लगिस तन माँ, बहे रकतन के धार ।।५।।
पद (६) जोर फिरंगी माथा माँ, मोरे नहिं आवै आँच।
"नारी के तन आय बचाहूँ", ये ही हवै मोला साँच।
कहत कहत माता गिरगै, पावै गति निर्वान।
अमरित चोला ला करके हो, परलोकै सिधार ।।६।।
पद (७) चलो चली गढ़ा मां, मितवा, करओ तन निसार।
माता दुर्गा रन चण्डी के, लेओ चरन पखार।
हाथ जोर बिनती करैं हो, जय जय होवै तुम्हार।
अमर रहै माता प्रिथवी में, हो, जस रहै, रे, तुम्हार।।७।।
टेक—रानी महारानी जो आय। माता दुर्गा जो आय ।।
रन माँ जूझै धरे तरवार। माता दुर्गा कहाय ।।
सरगम—तरी नाना मोर नाना रे नाना ।।

(१०२)

मण्डला के किले में पश्चिम तरफ की बुर्ज के पास के हिस्सा को बचरी कहते हैं। उसी के पास के विस्तृत खण्डहर को कलंका कहते हैं। ऐसा नाम संभवतः महाराज साहि (नं० ५८) की हत्या से सम्बन्ध रखता हो।

(१२०)

रामनगर का शिलालेख व्याकरण की दृष्टि से पूर्ण शुद्ध है। दो एक स्थानों में टंकन के समय पत्थर को छील कर शुद्ध टंकन किया गया है। यदि मुद्रण में कोई भूल दिखे तो प्रेस की भूल है। या मेरी भूल है।

(१४७)

दिसम्बर १९६० में श्री शेख गुलाब को राष्ट्रीय शिक्षक का पुरस्कार मिला। अब मण्डला जिला में राष्ट्रीय पुरस्कारों की संख्या तीन हो गई। और किसी

जिला में शायद ही इतने अधिक राष्ट्रीय पुरस्कार आये हों। पिछड़ा जिला शिक्षा के क्षेत्र में कमाल कर गया।

(१५१) (१५८) (२०३)

गोड़ों में गोत्र होते हैं। गोंडी बोली में "पाड़ी" शब्द, गोत्र के लिये है। बहुत अधिक गोत्र हैं। सगोत्र विवाह निषिद्ध है। गोत्रों का अध्ययन अभी तो रहस्यमय सा है। सुना है कि किसी ने कुछ गोत्रों के नामों का संग्रह किया है। मुझे वह पुस्तक अभी तक नहीं दिखी। यह भी सुना है कि समनापुर, कोकोमटा तरफ के कोई-कोई पठारी इस विषय के विशेषज्ञ हैं। मैं कुछ दिशा दर्शन कर रहा हूँ। कम्पाइलेशन के तरीका से बहुत सामग्री मिलेगी। संगठित संस्थाएँ अच्छा कम्पाइलेशन कर सकती हैं। हर गोत्र के देवताओं की संख्या तथा गढ़ निश्चित हैं। देवताओं की संख्या से सामाजिक मर्यादा का और गढ़ों के नाम से उनके पुराने क्षेत्र, या मूल ग्राम की जानकारी होती है। कुछ परिचय इस प्रकार है।

उद्दे गोत्र वालों के देवहार गढ़ को "ऊँचा गढ़ देवहार" कहते हैं। पहाड़ी के ऊपर है। वहाँ लौंग के क्षुप रहे होंगे। वहाँ एक स्थान को लौंगी घटिया कहते हैं। लांजी गढ़ वाले कुमरा गोत्र का एक भेद "एटी कुमरा" होता है। एटी मायने बकरा। वे बकरा को नहीं छूते। ऐसी ही मर्यादा कबीर पन्थियों में है। दुर्रियाम गोत्र वाले की देवता संख्या २०।२२ तक पहुँचती है। दूसरा मत है कि देवताओं की संख्या सात से अधिक नहीं हो सकती। अधिक पूजना अपनी इच्छा पर है। धुमकेती गोत्र का मूल रूप धूम्रकेतु होगा। धुर्वे या धुर्वा गोत्र की चार पांच शाखायें मानी जाती हैं। सबसे बड़ी शाखा अुद्दे गोत्र की है। उनको बिछिया गढ़िया भी कहते हैं। बिछिया गढ़ में भगवान बड़ा देव समर्थ का स्थान माना जाता है। अन्य शाखाएँ, (२) पुट्टे, (३) खजरवार, (४) तेंदू गढ़िया। धुर्वा गोत्र वालों के सात देवता हैं और गढ़ है निंगोगढ़। पट्टा गोत्र के छः देवता और सुक्कुम गढ़ है। पर तेनी गोत्र को लोहम् कोट सुन्दर गढ़ है। मरकाम गोत्र के तीन देवता और धमदा गढ़ हैं। मरावी गोत्र के सात देवता और गढ़ा गढ है। कुछ मरावियों का गढ़ चांदा भी है। सरसाम गोत्र के सात देवता और सिरसा गढ़ है। परिशिष्ट में देवहार गढ़, सींगनगढ़ लानजी, निंगोगढ़, सुक्कुमगढ़, और गढ़ा का वर्णन है।

कुछ और गोत्रों के नाम इस प्रकार हैं। अरमो गोत्र सात देवता, इक्का गोत्र, अुइके गोत्र सात देवता, उरकरा गोत्र छः देवता, करचू गोत्र छः देवता

और सींगनगढ़, कुडोपा पाँच देवता, चीचाम छः देवता, टेकाम सात देवता, पन्द्रो सात देवता, सरूता तीन देवता, और सोयाम सात देवता।

इस प्रकार गोत्र गढ़ और देवताओं का विषय बहुत रोचक सिद्ध होगा। साथ में गढ़ों का स्थान निर्णय तथा कुटुम्ब चिन्ह या पूर्वजों के पूज्यों का पता भी चलेगा। एक गोंड़ ने चुभते शब्दों में बतलाया कि आजकल अदालत गोत्र के अन्धेरगढ़ में नित्य प्रति भड़ई लगती है।

(२०८)

आदिवासियों के लिये एक ऐसे कानून की शीघ्र आवश्यकता है, जिसके अनुसार, किसी भी आदिवासी का धर्मपरिवर्तन, बिना जिलाध्यक्ष की आज्ञा के न हो सके। ऐसे कानून के प्रयोग से शासन को और समाज सेवकों को, धर्म-परिवर्तन के कारणों का, विश्वनीय मार्गों से ज्ञान हो जायगा। जैसे प्रलोभन फरेब, पैत्रिक धर्म की खराबियां, ईसाई धर्म की अच्छाइयां, पेट की ज्वाला, सीधापन, अल्पज्ञता अत्याचार आदि। मेरा अनुमान है कि धर्मप्राण ईसाई पादरी इस प्रकार के कानून के प्रयोग से अति प्रसन्न रहेगे। वे अत्याचार, फरेब, प्रलोभन, दबाव आदि निन्दनीय तरीकों से इंकार कर रहे हैं। संविधान ने बहुत पहिले से आदिवासियों की अचल सम्पत्ति और वनसम्पत्ति की रक्षा का भार जिलाध्यक्षों के कंधों पर दे रखा है। ऐसे कानून से सब पक्षों को पूर्ण सन्तोष होकर, मतभेदों के सब मुद्दे समाप्त हो जावेंगे। न किसी कमीशन की आवश्यकता रह जायगी न राष्ट्रसंघ के पास शिकायत की। नहीं तो भविष्य का इतिहासकार हमारी पीढ़ी की जी भरके निन्दा करेगा।

(२१०)

नई दिल्ली के साप्ताहिक हिन्दुस्तान (दिनांक १।१०।६१ पेज ३३) में श्री गोविन्द प्रसाद केजरीवाल का एक लेख "धर्म की आड़ में ईसाई साम्राज्य स्थापना की कुचेष्टाएँ" छपा है। लेखक महोदय ने मध्यप्रदेश शासन द्वारा नियुक्त नियोगी कमीशन के प्रतिवेदन पर भी प्रकाश डाला है। लेख पर सम्पा-दकीय नोट इस प्रकार है।

"हम किसी धर्म के विरोधी नहीं। और हमारी यह दृढ़ मान्यता है कि धर्म के क्षेत्र में व्यक्ति को पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिये। किन्तु किसी धार्मिक संस्था

या उसके व्यक्तिगत प्रतिनिधियों का किसी राष्ट्र के निवासियों को धर्म परिवर्तन के लिये बहकाना निस्सन्देह निन्दनीय है और उसका घोर से घोर विरोध होना चाहिये।"

(२११]

गोंड़ लोग अपने जाति बन्धुओं के धर्म परिवर्तन से दुखी हैं। वे अपनी लाचारी को इस लोकोक्ति से प्रगट करते हैं। "गरीब की लुगाई सबकी भौजाई, जबर की लुगाई सबकी काकी।" उनके इस प्रबल नैराश्य का कारण शासन की धर्म निरपेक्ष नीति का गलत आचरण है।

(२३७)

जुझारी—बुन्देल जुझार सिंह पर से ही मान लेना पूर्ण सत्य नहीं होगा। प्रेमनारायण (नं० ५३) का एक उपनाम जुझारसिंह भी था। प० बासुदेव राव गोलबलकर के श्लोक संग्रह में मिलता है। अतएव इन जुझारसिंह के नाम से भी हो सकता है।

(२४०)

देवहार गढ़ में एक स्थान को लौंगिहाई घटिया कहते हैं। विश्वास है कि वहाँ लौंग का झाड़ था।

(२४१)

धनौली की विष्णु मूर्ति की मुखाकृति के कुछ अंश को हाल में एक पागल ने चुटीली कर दिया है। ऐसी खबर मिली है। वह पागल ईसाई या मुसलमान नहीं था। उस मूर्ति की रक्षा के लिये, उसे किसी संग्रहालय में उठवा लेना उचित होगा।

(२४२)

नर्मदा जी के पृथ्वी पर प्रगट होने की तिथि, माघ शुक्ल सप्तमी, रविवार, अश्विनी नक्षत्र, मकर का सूर्य मध्यान्ह काल मानी जाती है।

(२५६)

मधुपुरी में मण्डला पुलिस को तीस सेर प्राचीन सिक्के सन् ६१ की वर्षा ऋतु में मिले। इन सिक्कों का अध्ययन अभी नहीं हो पाया है।

(२६३)

मुकास—एक मत ऐसा है कि राय बहादुर हीरा लाल के रोने का प्रसंग सन् १६१६ में दमोह जिला के सिलापरी गांव में हुआ था। मुकास में नहीं। राय बहादुर ने उन राजवशियों की पेन्शन बढ़वा दी थी।

(२६५)

रावन कुण्ड—एक और धनवान् गोंड़ का नाम रखन भोई, झुलपुर के थे। अब उनका पुत्र दादूलाल है।

(२७१)

सिंधौली—में एक शेर ने बीस पच्चीस मनुष्यों को खा लिया था। शासन की तरफ से दो सौ रुपयों का पुरस्कार घोषित किया गया। बड़े-बड़े शिकारी असफल रहें। एक दिन मार्च ६१ में उसी गाँव के, एक बैगा (चमरा बल्द मुंसी) और एक गोंड़ (दोसी बल्द मदराजी) जंगल में बक्कल लेने गये थे। उसी शेर से मुठभेड़ हो गई। चमरा ने कुल्हाड़ी जमीन पर रख दी। कमान से विषैला तीर चलाया। दोसी गोंड़ ने भाला मारा। शेर मर गया। नर भक्षी का उपद्रव शान्त हो गया। चमरा बैगा शासकीय पुरस्कार का अधिकारी हो गया। सुना है कि ज़िलाध्यक्ष की इच्छा है कि चमरा बैगा का नागरिक सन्मान सिंधौली में जिलाध्यक्ष स्वयम् करना चाहते हैं।

———

शुद्धि-पत्र

पेज	लाइन	अशुद्ध	शुद्ध
१	१२	सवनाश	सर्वनाश
१	१७	भवना	भवनों
२	१६	उपयोगी से	उपयोगी कार्य से
३	३	१५०४	१५६४
४	११	बखारने	बघारने
१७	२५	सारूगढ़	मारूगढ़
१६	१३	झा का मेमो	झा की मेमो
१६	३१	पुण्य दन्त का चार्य	पुष्पदन्तकाचार्य
२२	१७	मण्डला शब्द, मण्डला	मण्डला शब्द, मण्डल
२५	१६	मलानुयादी	मतानुयायी
२५	१६	बालपीर	बालापीर
२८	२	ब्रहोलिन	बघेलिन
२८	२७	लाँगी	लान् जी
२६	११	फिर पार	फिरयमुना पार
२६	१२	बिलाभारी	बिलारी
३१	१७	गूड़ामणि	चूड़ामणि
३२	२१	गोरा जी	मोरा जी
३४	१८	सुतनि सिंह	सुर्तान सिंह
४१	५	कर्णावेस	कर्णवेल
५०	२४	कांकेट	कांकेर
६२	६	शिकारी	भिकारी
६५	२६	कूर	पूर
६६	६	युद्ध सैनिक	शुद्ध सैनिक
६७	१५	शिकारी	भिकारी
७५	२०	चढ़ने	चढ़ाने
७५	२४	कत्ता	कुत्ता

पेज	लाइन	अशुद्ध	शुद्ध
७६	अंतिम	परिखें	पीर खें
७६	अंतिम	परिखें	पीर खें
७७	२६	छयलवा	घयलवा
८२	११	पेग	पेज
८२	१३	पेग	पेज
८३	२६	औपद्र गढ़	औपद गढ़
८३	३६	इमान	इनाम
८७	२४	दुर्ग भवन	दुर्गम बन
८८	२५	प्रजापामक	प्रजा पालक
८६	२१	आस कोई	आज कोई
६१	४	अनवर	अकबर
६१	६	१६३४	१६३४
६१	७	१६३४	१६१४
६२	२८	बछोल	बघेल
६४	२	वेजर	बंजर
६४	१६	चौथा मांगा	चौथ मांगा
६५	८	आ गया	आयगा
६५	२६	धुपरी	धुघरी
६७	१	तीन वष	तीन वर्ष
६८	२६	मीर मानुल्ला	मीर मनी उल्ला
६६	१७	विद्रोह थे	विद्रोही थे
६६	२४	बरना बुलन्द	बख्त बुलन्द
६६	२८	बखन बुलन्द	बख्त बुलन्द
१०३	१	क क्या	का क्या
१०३	२४	अ्रु भव ाकया	अनुभव किया
१०४	२८	पुस्तस्थ	पुस्तकस्थ
१०४	२६	पुस्तस्थ	पुस्तकस्थ
१०४	३१	पुस्तस्थ	पुस्तकस्थ
१०५	१६	एक ले (	एक लेख (

पेज	लाइन	अशुद्ध	शुद्ध
१०६	६	thule &	thule of
१०६	२५	खीलाधर झा	लीलाधर झा
१०६	२८	हंकार	इंकार
१०८	४	पायावान	पासवान
१११	अंतिम	उन्मादक	उन्माद के
११२	२	उन्मादन के	उन्माद के
११३	१०	१६१ में	१६१७ में
११४	१०	नागण्य	नगण्य
११४	१७	रत्न होन	रतन सेन
११६	७	शरर	शरीर
११६	३०	छरिया	छिरिया
११६	३१	लकुट	लकुटी
१२०	१	कुटिया	कुठिया
१२०	६	"शिक्षा"	"भिक्षा"
१२२	१५	माराठा	मराठा
१२३	२२	एशिया कि	एशियाटिक
१२५	५२	दिल्ली शरोवा	दिल्ली श्वरो वा
१४०	२०	था; पर	थी; पर
१४१	२२	सुहागापुर	सुहागपुर
१४२	२४	नेगदसइर	नेग दस्तूर
१४७	४	प्रान्तीय ने	प्रान्तीय शासन ने
१४४	६	स्वण	स्वर्ण
१४४	३१	सफसता	सफलता
१४६	१७	नामवंशी	नागवंशी
१५०	२१	बिचारों को	बेचारों को
१५०	२२	शम	शर्म
१५१	२८	लाड़ूराज	लाड़ू काज
१५२	१४	पासी बिरवा	पाली बिरवा
१५३	१६	रूप ने	रूप में

पेज	लाइन	अशुद्ध	शुद्ध
१५३	१८	छाछा	घाघा
१५३	१८	साल्हेंठन्डा	साल्हेंडन्डा
१५४	१०	छूर वाड़ा	घूरवाड़ा
१५४	३०	रामगढ़	रायगढ़
१५६	१६	को वर्धा का	को कवर्धा का
१५८	२६	धनु भूमि	धन भूमि
१५६	४	जातिषों	जातियों
१६०	६	कलावना	कलावन्त
१६१	२३	बाद	बन्द
१६२	३१	की तनाईं	बनाईं
१६३	२६	हजाजत	इजाजत
१६४	१	हजाजत	इजाजत
१६४	१८	जुझौलिया	जुझौतिया
१६६	२८	चालू स्त्री	चालू
१७१	३	खर ही	खरही
१७१	२१	अन्त	अन्न
१७२	२५	लाक सांप	ताक सांप
१७३	१८	Earth warm	Earthworm
१७४	६	नृत्य रानी	नृत्य रीना
१७४	७	चरी	चर्रा
१७४	१६	ढोलके से	ढोलक के स्वर से
१७६	३	मड़ई की	मवई की
१७६	५	वैगर	बैगा
१७६	१८	सिपुनी	सिवनी
१७६	२८	भरी जमीन	भर्रा जमीन
१८०	१५	बगान	बजाग
१८०	२२	डिन्डोटी	डिन्डौरी
१८१	१६	दिंदौरी	डिन्डौरी
१८१	२२	(Erosim)	(Erosion)

पेज	लाइन	अशुद्ध	शुद्ध
१८३	अंतिम	शैनी	बौनी
१८४	६	नहीं मानी	नहीं मारी
१८४	१०	भाई	भोई
१८४	११	भाई भोपाल	भोई भोपाल
१८४	११	भाई शब्द	भोई शब्द
१८५	४	बाजा घर पर	बाजा पर
१८५	२६	आ जा रे	आजा रे
१८५	२६	आ जी मोरे	आजी मोरे
१८५	२८	सांजी गढ़	लांजी गढ़
१८५	२८	अपद् गाने	अपढ़ गाने
१८६	१८	या उड़ाते	या गड़ाते
१८६	२६	नान	दान
१८८	३५	बैगर	बैगा
१८६	२०	बैगर	बैगा
१८६	२५	पिछड़ी जावें	पिछड़ी हो जावें
१८६	३१	एक पहले	एक पहलु
१६१	१७	गरीबों	गरीब
१६२	१८	में न पड़े।	में पड़े।
१६१	अंतिम	के शत्र	के शत्रु
१६३	२६	के ब्रिडा	के बिड़ी
१६५	२१	और वोल	और कोल
१६७	३	श्रमोत्पादन	श्रमोत्पादन
१६७	११	अधिकारी	आबकारी
१६६	७	मृदुल	मृदूनि
१६६	२५	बैगर	बैगा
१६६	२६	द्दाष्ट काण पश	दृष्टिकोण पेश
२०१	१६	हो,	से,
२०२	२७	पनत्रा	पनका
२०३	२४	होली मना में	होली मनाने में

पेज	लाइन	अशुद्ध	शुद्ध
२०६	१६	भ्रष्टाचार आने	भ्रष्टाचार नहीं आने
२१०	२०	तुमको हानि	तुमको हीन
२११	६	वे कम समझते हैं	वे केवल समझते हैं
२११	८	धोबा—'जिसने	धोबा-नहीं मिलेगा-जिसने
२११	८	मैत्रिक	पैत्रिक
२११	२४	मड़क्टा	मड़फा
२१३	२४	कसवार	कलवार
२१६	८	टत्तों से	रत्नों से
२१७	अंतिम	मुफहिसल	मुफस्सिल
२२१	५	Bhats	Bhars
२२२	४	शहडोल भी	शहडोल की
२२३	१२	कार्क	मार्क
२२३	१७	वहाँ	वही
२२३	२७	कि बनवाया हरी	××
२२३	२८	उसके सब	उसके हर्रा के सब
२२३	२८	कुण्ड सका	कुण्ड बनवा सका
२२५	पेज संख्या	१२५	२२५
२२६	,,	१२६	२२६
२२७	,,	१२७	२२७
२२८	,,	१२८	२२८
२२९	,,	१२९	२२९
२३०	,,	१३०	२३०
२३१	,,	१३१	२३१
२३२	,,	१३२	२३२
२३३	,,	१३३	२३३
२३४	,,	१३४	२३४
२३५	,,	१३५	२३५
२३६	,,	१३६	२३६
२३७	,,	१३७	२३७

पेज	लाइन	अशुद्ध	शुद्ध
२३८	,,	१३८	२३८
२३६	,,	१३६	२३६
२४०	,,	१४०	२४०
२३१	२१	सिम्पैक्टा	सिम्प्लैक्स
२३४	१६	बाजार	बजाग
२३४	२१	रक्षित है	रक्षित वन है
२३५	२	hends	beads
२३७	२२	डिरडौरी	डिठौरी
२३८	२३	माहष्मिती	माहिष्मती
२३२	२८	शोल की मठ	गोल की मठ
२४१	२	छिन	घुन
२४१	२	छिने	घुने
२४१	३	छिनाश्रा	घुना हुआ
२४२	१६	पञ्च गोंडों	पञ्च गौड़ों
२४२	२७	मोर टम्का	मोर टक्का
२४३	६	शूलयाणि	शूलपाणि
२४३	१६	मंडला (वृत्त)	मण्डल (वृत्त)
२४५	१६	मासति	मारुति
२५१	२४	सूर्ची	सूची
२५३	२७	चैन में	चैत में
२५४	५	त्वरी	बारी
२५४	२६	और राड	और कई
२५५	६	"छुलछुल	"घुलघुल
२५६	२७	लोंजी	लांजी
२५६	७	तरवाबी	तरवानी
२६१	२५	बलाई	बालई
२६२	३	नामा	नाका
२६३	१५	किकरी भूर	किकरभिर
२६४	७	राणा का	राजा का

पेज	लाइन	अशुद्ध	शुद्ध
२६५	२४	रामगढ़	रायगढ़
२७०	२	वाहन	लाइन
२७०	११	शांहगढ़	शाहगढ़
२७०	१३	शाहनपुर	शाहपुर
२७०	२६	सिंजौर गढ़	सिंगौर गढ़
२७१	५/६	अशुद्ध—चौरागढ़ में वीर नारायण को वीर गति मिली और सामूहिक जौहर हुआ।	शुद्ध—चौरागढ़ युद्ध के पहिले नरई में वीर नारायण को वीर गति मिल चुकी थी। चौरागढ़ में सामूहिक जौहर हुआ।
२७२	१७	सुगम गढ़	सुक्कुम गढ़
२७३	१८	बन जाते हैं।	बन जाते
२७३	१६	रहती हैं।	रहतीं।
२७३	२१	हिरदेन पुर	हिरदे नगर
२७४	१५	श्री घुन्नालाल	श्री छुन्नालाल
नकशा		स्केल एक इंच; पचीस मील	स्केल एक इंच = बत्तीस मील
नक्शा		आर	उत्तर

———

"गढ़ा-मण्डला के गोंड़राजा"

श्री राम भरोस अग्रवाल ने "गढ़ा-मण्डला के गोंड़ राजा" पुस्तक बहुत परिश्रम के साथ लिखी है। यह पुस्तक इतिहास है और गजोटियर भी। श्री अग्रवाल ने विविध प्रकार की इखरी-बिखरी सामग्री का ध्यान और विचार के साथ उपयोग किया है। वह अपने अञ्चल के बड़े प्रेमी हैं। इसी कारण बहुत से स्थानों पर इतिहास शोधक की तटस्थता के वृत्त को, उनका उत्साह लाँघ गया है। कुछ ऐतिहासिक निष्कर्षों से मतभेद हो सकता है, जैसे दुर्गावती का विवाह संग्रामसिंह के राज्यकाल में उनके पुत्र दलपतिसिंह के साथ। कुछ इतिहासकारों का मत है कि दलपतिसिंह का उक्त विवाह, उसके पिता संग्रामसिंह के देहान्त के उपरान्त हुआ। और भी निष्कर्ष हैं जिनसे मतभेद होगा, परन्तु यह सब होते हुए भी, पुस्तक की उपादेयता में कमी नहीं आती। गोंड़ जीवन पर जितना प्रकाश श्री अग्रवाल ने अपनी इस पुस्तक में डाला है उतना एक ही स्थान पर अन्यत्र दुर्लभ है। कहीं-कहीं तो उनका वर्णन इतना हृदयग्राही है कि काव्य रस का आनन्द अवगत होता है। इतिहास, परम्परा, और स्वदेशाभिमान को श्री अग्रवाल ने ओज[illegible] के साथ सँजोया है। मुझे विश्वास है कि पुस्तक [illegible] होगी। श्री अग्रवाल को मेरी हार्दिक बधाई।

झांसी
१७।११।१९६१